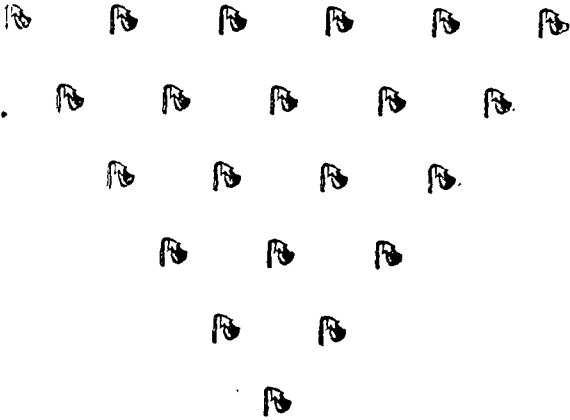


प्रकाशक—

नाथूराम प्रेमी,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव बम्बई ।



मुद्रक—

संगेश नारायण कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस,
नं० ४३४; ठाकुरद्वार, बम्बई।

ग्रन्थ-परिचय ।



इस संग्रहमें चार ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते हैं—१ प्राकृत भावसंग्रह, २ संस्कृत भावसंग्रह, ३ भाव-त्रिभङ्गी और ४ आस्रव-त्रिभङ्गी । इन चारोंके सम्बन्धमें हम जो कुछ बातें जान सके हैं, वे संक्षेपमें नीचे दी जाती हैं:—

१-भाव-संग्रह ।

इसके कर्ता श्रीविमलसेन गणधर (गणी) के शिष्य आचार्य देवसेन हैं और वे संभवतः नयचक्र और दर्शनसार आदिके कर्तासे अभिन्न हैं । नयचक्रकी भूमिकामें हम इनके विषयमें विस्तारपूर्वक लिख चुके हैं । विक्रम संवत् ९९० में उन्होंने दर्शनसारकी रचना की थी, अतएव ये विक्रमकी दसवीं शताब्दिके विद्वान् हैं । अब तक इनके बनाये हुए दर्शनसार, तत्त्वसार, आराधनासार, नयचक्र और यह भावसंग्रह इस तरह पाँच ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं* । ये पाँचों प्राकृतमें हैं । ज्ञानसार और धर्मसंग्रह आदि और भी कई ग्रन्थ आपके बनाये हुए सुने जाते हैं; परन्तु अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं । इनकी खोज होनी चाहिए ।

दो हस्तलिखित प्रतियोंके आधारसे इस ग्रन्थका संशोधन कराया गया है । इनमेंसे पहली क्लसंज्ञक प्रति जयपुरस्थ पाटोदी-मन्दिरके सरस्वती-भंडारसे पं० इन्द्रलालजी शास्त्रीद्वारा प्राप्त हुई और दूसरी खसंज्ञक प्रति पूनेके ' भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट 'से+ । पहली प्रति ' ज्येष्ठ शुदी १२ शुक्र संवत् १५५८ ' की लिखी हुई है और बहुत ही शुद्ध है । दूसरी प्रति ग्रन्थ लिखानेवालेकी एक विस्तृत प्रशस्तिसे युक्त है और बहुत ही अशुद्ध है । प्रशस्तिसे मालूम होता है कि यह प्रति वि० संवत् १६२७ में खण्डे-लवाल जातिके एक गोधागोत्रवाले कुटुम्बकी ओरसे ' अष्टाहिकव्रतके उद्याप-

* इनमेंसे ' आराधनासार ' माणिकचन्द-ग्रन्थमालाका छठा और ' नयचक्र ' सोलहवाँ ग्रन्थ है । तत्त्वसार तेरहवें ' तत्त्वानुशासनादि-संग्रह ' के अन्तर्गत है । ' दर्शनसार ' जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ है ।

+ नं० १४६३, सन् १८८६-९२ ।

नार्थ' लिखवाई जाकर सोम नामक ब्रह्मचारीको दान की गई थी। जयपुर राज्यके मोजावाद नामक स्थानमें यह ग्रथ लिखा गया था। यशस्तिकी नकल दी जाती है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इसकी संस्कृत बहुत ही अशुद्ध है:—

“इति भावसंग्रहः समाप्तः। श्लोकसंख्या ९६०। सम्पूर्णं। संवत् १६२७ वर्षे फाल्गुन वदि ५ स्वातिनक्षत्रे बुधवारं श्री आदि-जिनचैत्यालये मोजावादिस्थाने राजश्रीमानसिखकुछाहराज्ये श्री-मूलसंघे नंद्यामनाये वलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुंदकुंद आचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनंदिदेवा तत्पट्टे भट्टारकश्रीशुभचंद्र-देवा तत्पट्टे भट्टारकश्रीजिनचंद्रदेवा तत्पट्टे भट्टारकश्रीप्रभाचंद्र-देवा तत्सिख मंडलाचार्यश्रीधर्मचंद्रदेवा तत्सिख मंडलाचार्यश्री-ललतकीर्ति तत्सिखमंडलाचार्य चंद्रकीर्तिदेवा तदामनाये पंडेल-वालान्वये गोधागोत्रे सा. ठाकुर तत्भार्या लाछी तत्पुत्र चत्वारि प्रथ. तेजा दु. केलहा ति. पैराज चु. रेपा। तेजाभार्या चागुल दु. लक्ष्मी पु. हट्टु। केलहा केलवदे पुत्र नरयण दु. नरवद त्रि. गोपाल चु. सारग। पैराज पैसरि पु. हेमा। सा. वोहिथ भार्या वहरगदे तत् पुत्र देवसी पतेपां इदं साखं भावसंगहं लिपायतं धनायी अष्टाहकव्रत उद्यपनार्थं व्र. सोमाय दत्तं।”

यह प्रति पहली प्रतिकी अपेक्षा विलक्षण है। इसके प्रारंभिक अंशमें अन्य ग्रन्थोंके उद्धरणोंकी भरमार है। पहले हमारा खयाल था कि मूलग्रन्थकर्ताने ही ये उद्धरण संग्रह किये होंगे; परन्तु विचार करनेसे मालूम हुआ कि नहीं, ग्रन्थ-कर्ताके बहुत वाद, किसी विद्वान लिपिकारने ही यह परिश्रम किया है। क्योंकि इसमें पं० वामदेवकृत संस्कृत भावसंग्रह तकके कई श्लोक * उद्धृत किये गये हैं और पं० वामदेव जैसा कि आगे बतलाया जायगा—विक्रमकी १६ वीं शता-ब्दिके विद्वान् हैं। इसी तरह यशस्तिलक चम्पूके भी अनेक पद्य 'उक्तंच' रूपमें दिये गये हैं और यशस्तिलक वि० सं० १०१६ में समाप्त हुआ है।

* देखिए प्राकृत भावसंग्रहके पृष्ठ २४ की टिप्पणी और संस्कृत भावसंग्रहके १६९-७०-७१ नम्बरके श्लोक।

२-भाव-संग्रह (संस्कृत) ।

इसके कर्ता पं० वामदेव हैं । ग्रन्थप्रशस्तिसे मालूम होता है कि ये मूलसंघी आचार्य लक्ष्मीचन्द्रके शिष्य थे और नैगम नामक कुलमें उत्पन्न हुए थे । निगम कायस्थ जातिका एक मेद है । आश्चर्य नहीं जो पं० वामदेवजी कायस्थ ही हों । दिगम्बरसम्प्रदायमें महाकवि हरिचन्द्र, दयासुन्दर, आदि और भी अनेक विद्वान् कायस्थजातीय हो चुके हैं ।

लक्ष्मीचन्द्र नामके अनेक भाचार्य हो चुके हैं । उनमेंसे पं० वामदेवके गुरु त्रैलोक्यकीर्तिके शिष्य और विनयचन्द्रके प्रशिष्य थे । ग्रन्थमें उसकी रचनाका समय नहीं लिखा है, इस लिए पं० वामदेवका निश्चित समय तो नहीं बतलाया जा सकता है; परन्तु अनुमानतः वे विक्रमकी पन्द्रहवीं या सोलहवीं शताब्दिके विद्वान् जान पड़ते हैं । उन्होंने एक जगह (पृ० १९६ में) ' उक्तञ्च जिनसंहितायां ' लिख कर एक श्लोकार्थ उद्धृत किया है । मालूम नहीं, यह कौनसी जिनसंहिता है । यदि भट्टारक एकसन्धिकी जिनसंहिता है—जिसका रचनाकाल विक्रमकी चौदहवीं शताब्दि है—तो यह स्पष्ट है कि भावसंग्रह इसके पीछे किसी समय बना है ।

स्व० बाबा टुलीचन्द्रजीकी संस्कृत-ग्रन्थसूचीमें पं० वामदेवजीके बनाये हुए प्रतिष्ठासूक्तसंग्रह, तत्त्वार्थसार, त्रिलोकदीपिका, श्रुतज्ञानोद्यापन, त्रिलोकसारपूजा और मन्दिरसंस्कारपूजा नामक छः ग्रन्थोंके नाम दिये हैं । यदि इन ग्रन्थोंमेंसे एक दो ग्रन्थ ही मिल जावेंगे तो ग्रन्थकर्ताका समय बहुत कुछ निर्णत हो जायगा ।

यह भावसंग्रह प्रायः प्राकृत भावसंग्रहका ही संस्कृत अनुवाद है । दोनों ग्रन्थोंकी आमने सामने रखकर पढ़नेसे यह बात अच्छी तरह समझमें आ जाती है । यद्यपि पं० वामदेवजीने इसमें जगह जगह अनेक परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधन आदि किये हैं; फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह स्वतंत्र ग्रन्थ है । शिष्टताकी दृष्टिसे अच्छा होता, यदि पं० वामदेवजीने अपने ग्रन्थमें यह बात स्वीकार कर ली होती ।

इस ग्रन्थका संशोधन दो प्रतियोंके अधारसे किया गया है, जिनमेंसे एक तो चोपाटीके स्वर्गीय सेठ माणिकचन्द्रजीके सरस्वतीभण्डारमें है—जो

कमसे कम ३०० वर्ष पहलेकी लिखी हुई होगी* और दूसरी पं० उदयलालजी काशलीवालके पास है और जिसे पं० अमोलकचन्द्रजी उड़ेसरीयने वि० सं० १९६४में महासभाके सरस्वतीभंडारकी किसी प्राचीन प्रतिपरसे लिखा था। इसमेंसे पहली प्रति प्रायः शुद्ध है।

३-भाव-त्रिभङ्गी और ४-आस्रव-त्रिभङ्गी ।

इन दोनों ही ग्रन्थोंके कर्ता एक आचार्य हैं और उनका नाम श्रुतमुनि है। पिछले ग्रन्थकी अन्तिम गाथामें ग्रन्थकारने कामदेवके प्रभावको नष्ट करनेवाले और शिष्यजनोंद्वारा पूजित बालचन्द्र मुनिका 'जयकार' किया है। इससे मालूम होता है कि बालचन्द्र उनके पूज्य पुरुषोंमें थे। परन्तु वे कौन थे, इसका निश्चय इन मुद्रित ग्रन्थोंसे नहीं हो सकता। तलाश करनेसे मुहूर्तर बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तारसे मालूम हुआ कि आराके जैनसिद्धान्तभवनमें भावत्रिभङ्गीकी एक ताड़पत्रपर लिखी हुई प्राचीन प्रति है और उसमें आगे लिखी हुई सात गाथायें इस मुद्रित प्रतिसे अधिक हैं।† इन गाथाओंसे यह तो निश्चित हो ही जाता है कि पूर्वोक्त बालचन्द्र मुनि श्रुतमुनिके अणुव्रतदीक्षागुरु थे, साथ ही और भी कई विद्वानोंका इनमें उल्लेख है जिनसे ग्रन्थकर्ताके समय-निर्णयमें बहुत कुछ सहायता मिलती है। वे गाथायें ये हैं:—

“अणुवदगुरुवालेंदु महव्वदे अभयचंदसिद्धंति ।

सत्थेऽभयसूरि पहाचंदा खलु सुयमुणिस्स गुरु ॥ ११७ ॥

* इस प्रतिके अन्तमें लिखा है—“आ०श्रीललीतचंद्र तत सीस्य व्र० की० का ॥ छ ॥ व्र० शिवदास तत्सिस्य पं० वीरभाणपठनार्थ ।” ऊपर जो प्राकृत भावसंग्रहकी लेखक-प्रशस्ति दी है वह सं० १६२७ की लिखी हुई है और उस समय ललितचन्द्रके शिष्य चन्द्रकीर्ति वर्तमान थे। अर्थात् पूर्वोक्त प्रतिसे २५-३० वर्ष बाद यह प्रति लिखी गई होगी और इसी लिए हम इसे लगभग ३०० वर्ष पहलेकी समझते हैं।

† चौपाटीके स्वर्गायसेठ माणिकचन्द्रजीके सरस्वतीभण्डारके 'प्रशस्तिसंग्रह' नामक राजिस्टरमें 'भावत्रिभङ्गी' की दो प्रतियोंके नोट लिये हुए हैं, परन्तु उनमें भी इन प्रशस्तिकी गाथाओंका अभाव है। लेखकोंकी कृपासे सैकड़ों ग्रन्थोंकी प्रशस्तियाँ इसी तरह लुप्तप्राय हो चुकी हैं।

सिरिमूलसंघदेशिय पुत्थयगच्छ कौडकुंदमुणिणाहं (?)
 परमण्ण इंगलेत्तर्धलम्मि जादमुणिपहद (हाण) स्स ॥ ११८ ॥
 सिद्धन्ताहयचंदस्स य सिस्सो वालचंदमुणिपवरो ।
 सो भवियकुवलयाणं आणंदकरो सया जयऊ ॥ ११९ ॥
 सद्दागम-परमागम-तक्कागम-निरवसेलवेदी हु ।
 विजिदसयलण्णवादी जयउ चिरं अभयसूरिसिद्धन्ति ॥ १२० ॥
 णयणिकखेवपमाणं जाणित्ता विजिदसयलपरसमओ ।
 वरणिवइणिवहवंदियपयपम्मो चारुकित्तिमुणी ॥ १२१ ॥
 णादणिखिलत्थसत्थो सयलणरिंदेहिं पूजिओ विमलो ।
 जिणमग्गमणसूरो जयउ चिरं चारुकित्तिमुणी ॥ १२२ ॥
 वरसारत्तयणिउणो सुहं परओ विरहियपरभाओ ।
 भवियाणं पडिवोहणपरो पहाचंद णाम मुणी ॥ १२३ ॥

इति भावसंग्रहः समाप्तः ।”

इन गाथाओंसे नीचे लिखे हुए आचार्योंका पता लगता है:—

१—वालचन्द्रमुनि । इन्होंने श्रुतमुनिको श्रावककी दीक्षा दी थी । आ-
 सवत्रिभंगीमें भी श्रुतमुनिने इनका स्मरण किया है ।

२—अभयचन्द्र । ये मूलसंघ, देशीय गण, पुस्तकगच्छ और कुन्दकुन्दा-
 म्नायके आचार्य थे और इंगलेश नामक स्थानके मुनियोंमें प्रधान थे । ये व्या-
 करण, धर्मशास्त्र और न्यायशास्त्र आदि अशेष विषयोंके ज्ञाता थे और सारे
 अन्य वादियोंको इन्होंने जीता था । वालचन्द्र मुनि इनके शिष्य थे । श्रुतमुनिने
 इनसे मुनिदीक्षा ली थी और शास्त्राध्ययन भी किया था ।

३—प्रभाचन्द्र । ये सारत्रय अर्थात् समयसार, पंचास्तिकाय और प्रवच-
 नसारके ज्ञाता थे, परभावोंसे रहित थे और भव्य जनोंको प्रतिबोधित करनेवाले

१ कर्नाटक प्रान्तमें जनोंका यह कोई बहुत ही प्रसिद्ध स्थान है । यहाँपर
 अनेक आचार्य और विद्वान् हो गये हैं, अनेक आचार्योंकी निपटायें बनी हुई
 हैं, भट्टारकोंकी एक गद्दी रही है और संभवतः बाहुवलिकी भी कोई मूर्ति है ।
 श्रवणवेलगोलके १०८ वें लेखमें लिखा है:—

नन्दिसंघे स देशीयगणे गच्छेच्छपुस्तके ।

इइंगुलेशवलि जीयान्मंगलीकृतभूतलः ॥ २२ ॥

थे । श्रुतमुनिके ये भी विद्यागुरु थे, अर्थात् इनसे भी उन्होंने शास्त्राध्ययन किया था ।

४—चारुकीर्ति । ये नय, निक्षेप और प्रमाणके ज्ञाता, सारे परधर्मोंको जीतनेवाले, बड़े बड़े राजाओंद्वारा पूजित, सारे शास्त्रोंके जाननेवाले और जिन-मार्गपर वीरतासे चलनेवाले थे ।

कर्नाटककविचरितके कर्ताने श्रुतमुनिके गुरु वालचन्द्रका समय वि० सं० १३३० के लगभग बतलाया है । उनका कथन है कि वालचन्द्र मुनिने शक संवत् ११९५ (वि० सं० १३३०) में द्रव्यसंग्रहकी एक टीका लिखी है और उसमें उन्होंने अपने गुरुका नाम अभयचन्द्र लिखा है । इससे सिद्ध हुआ कि श्रुतमुनि विक्रमकी चौदहवीं शताब्दिके विद्वान् हैं और वि० सं० १३३० के लगभग उनका अस्तित्व था ।

‘चारुकीर्ति’ यह श्रवणवेलगोलके भट्टारकोंका स्थायी नाम है । अर्थात् वहाँके पट्ट पर जितने आचार्य होते हैं वे सब चारुकीर्ति पण्डिताचार्य कहे जाते हैं । कर्नाटककविचरितके कर्ताके मतसे श्रवणवेलगोलके जैनगुरुओंने यह नाम वि० सं० ११७४ के बाद धारण किया है । तब पूर्वोक्त प्रशस्तिकी गाथाओंमें जिन चारुकीर्तिकी प्रशंसा की है वे दूसरे या तीसरे चारुकीर्ति होंगे ।

आचार्य प्रभाचन्द्रको ‘सारत्रयनिपुण’ विशेषण दिया गया है और हमारी संग्रहकी हुई ग्रन्थसूचीमें नाटकसमयसार आदि तीनों ग्रन्थोंकी प्रभाचन्द्रकृत टीकाओंके नाम लिखे हुए हैं । अतः ये सारत्रयनिपुण और उक्त टीकाकार एक ही होंगे ।

श्रवणवेलगोलमें श्रुतमुनिकी निषद्यापर मंगराज कविका ७५ पद्योंका एक विशाल संस्कृत शिलालेख है । शकसंवत् १३५५ (वि० सं० १४९०) में उक्त निषद्या प्रतिष्ठित हुई है । उसमें प्रधानतः श्रुतकीर्ति, चारुकीर्ति, योगिराट्ट पण्डिताचार्य और श्रुतमुनिकी महिमा वर्णन की गई है । कविने श्रुतमुनिकी प्रशंसाके तो पुल बाँध दिये हैं । वे बड़े भारी विद्वान् थे और उन्होंने समाधिपूर्वक स्वर्ग-वास किया था । यदि निषद्याकी प्रतिष्ठाका समय ही उनके स्वर्गवासका समय है, तब तो कहना होगा कि ये श्रुतमुनि भावत्रिभंगीके कर्तासे कोई जुदा ही हैं और उनसे पीछे हुए हैं; परन्तु यदि स्वर्गवासके १००-१२५ वर्ष बाद निषद्यापर

उक्त शिलालेख लिखवाया गया है, तो वह निषद्या और प्रशंसा इन्हींकी हो सकती है ।

भाव-त्रिभंगीका दूसरा नाम 'भावसंग्रह' भी है । अनेक प्रतियोंमें 'भाव-संग्रह' नाम ही लिखा है । भाव-त्रिभंगी और आस्रव-त्रिभंगी ये दोनों ग्रन्थ बम्बईके तेरहपंथी मन्दिरकी एक जीर्ण प्रति परसे—जिसमें लिखनेके संवत् आदिका अभाव है—छपाये गये हैं । प्रति प्रायः शुद्ध है ।

इस संग्रहके तीनों प्राकृतग्रन्थोंकी संस्कृतच्छाया पं० पन्नालालजी सोनीने की है । मूल प्रतियोंमें छायाका अभाव था ।

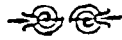
जिन जिन पुस्तकालयों या सरस्वतीभण्डारोंकी प्रतियोंसे इन ग्रन्थोंके प्रकाशित करनेमें सहायता मिली है, उनके अधिकारियोंके प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करते हैं और आशा करते हैं कि उनसे आगे भी हमें इसी प्रकार सहायता मिलती रहेगी ।

बम्बई,
आदिवन सुदी १५
वि० सं० १९७८ वि० ।

निवेदक—
नाथूराम प्रेमी ।



ग्रन्थ-सूची ।



				पृष्ठांकाः
प्राकृत-भावसंग्रह	१
संस्कृत-भावसंग्रह	१४९
भाव-त्रिभङ्गी	२२९
आस्रव-त्रिभङ्गी	२६५

माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमालायां प्रकाशितग्रन्थानां

सूची ।



१ लघीयस्त्रयादिसंग्रहः (लघीयस्त्रयतात्पर्यवृत्तिः, स्वरूपसम्बोधनं, लघुसर्वज्ञसिद्धिः, बृहत्सर्वज्ञसिद्धिः)	1=)
२ सागारधर्मामृतं सटीकं	1=)
३ विक्रान्तकौरवं नाटकं	1=)
४ श्रीपार्श्वनाथचरितं	11)
५ मैथिलीकल्याणं नाटकं	1)
६ आराधनासारः सटीकः	1)11
७ जिनदत्त-चरितं	111)
८ प्रद्युम्नचरितं	11)
९ चारित्रसारः	1=)
१० प्रमाणनिर्णयः	1-)
११ आचारसारः	1=)
१२ त्रैलोक्यसारः सटीकः	१111)
१३ तत्त्वानुशासनादिसंग्रहः (तत्त्वानुशासनं, इष्टोपदेशः सटीकः, नीतिसारः, मोक्षपंचाशिका, श्रुतावतारः, अध्यात्मतरंगिणी, पात्रकेसरिस्तोत्रं सटीकं, अध्यात्माष्टकं, द्वात्रिंशतिका, वैराग्यमणिमाला, तत्त्वसारः, श्रुतस्कन्धः, ढाढसीगाथा, ज्ञानसारः)	111=)
१४ अनगारधर्मामृतं सटीकं	३11)
१५ युक्त्यनुशासनं सटीकं	111-)
१६ नयचक्रसंग्रहः (लघुनयचक्रं, द्रव्यस्वभावप्रकाशक-नयचक्रं, आलापपद्धतिः)	111=)

- १७ पद्मप्राभृतादिसंग्रहः (पद्मप्राभृतं सटीकं, लिंगप्राभृतं, शीलप्राभृतं, रयणसारः, द्वादशानुप्रेक्षा) ३)
- १८ प्रायश्चित्तसंग्रहः (छेद-पिंडं, छेद-शास्त्रं, प्रायश्चित्त-चूलिका, प्रायश्चित्त-ग्रन्थः १=)
- १९ मूलाचारः सटीकः (सप्ताध्यायपर्यन्तः) २॥)
- २० भावसंग्रहादिः (प्राकृतभावसंग्रहः, संस्कृतभावसंग्रहः, भाव-त्रिभंगी, धासव-त्रिभंगी)

नीतिवाक्यामृत सटीक, सिद्धान्तसारादिसंग्रह और रत्नकरण्डटीका ये तीन ग्रन्थ छप रहे हैं ।





नमः सिद्धेभ्यः ।

भावसंग्रहादिः ।

श्रीदेवसेनस्वरिविरचितो

भावसंग्रहः ।

पणविय सुरसेणण्यं मुणिगणहरवंदियं महावीरं ।
वोच्छामि भावसंग्रहमिणमो भव्वप्पवोहट्ठं ॥ १ ॥

प्रणम्य सुरसननुतं मुनिगणधरवन्दितं महावीरम् ।
वक्ष्ये भावसंग्रहमेतं भव्यप्रवोधनार्थम् ॥

जीवस्स होंति भावा जीवा पुण दुविहभेयसंजुत्ता ।
मुत्ता पुण संसारी मुत्ता सिद्धा णिरवलेवा ॥ २ ॥

जीवस्य भवन्ति भावा जीवाः पुनर्द्विविधभेदसंयुक्ताः ।
मुक्ताः पुनः संसारिणो मुक्ताः सिद्धा निरवलेपाः ॥

लोगगसिहरवासी केवलणाणेण मुणियतइलोया ।
असरीरा गइरहिया मुणिच्चला सुद्धभावट्ठा ॥ ३ ॥

लोकप्रशिखरवासिनः केवलज्ञानेन मुनितत्रिलोकाः ।

अशरीरा गतिरहिताः मुनिश्चलाः शुद्धभावस्थाः ॥

जे संसारी जीवा चउगइपज्जायपरिणया णिच्चं ।

ते परिणामे गिण्हहि सुहासुहे कम्मसंगहणे ॥ ४ ॥

ये संसारिणो जीवाश्चतुर्गतिपर्यायपरिणता नित्यम् ।

ते परिणामान् गृह्णन्ति शुभाशुभान् कर्मसंग्रहणे ॥

भावेण कुणइ पावं पुण्णं भावेण तह य मुँक्खं वा ।

इयमंतर णाऊणं जं सेयं तं समायरहं ॥ ५ ॥

भावेन करोति पापं पुण्यं भावेन तथा च मोक्षं वा ।

इत्यन्तरं ज्ञात्वा यच्छ्रेयस्तं समाश्रय ॥

सेतुं सुद्धो भावो तस्सुवलंभो य होइ गुणठाणे ।

पणदहपमायरहिए सयल वि चारित्तजुत्तस्स ॥ ६ ॥

सेव्यः शुद्धो भावः तस्योपलम्भश्च भवति गुणस्थाने ।

पंचदशपमादरहिते सकलस्यापि चारित्रयुक्तस्य ॥

सेसा जे वे भाँवा सुहासुहा पुण्णपावसंजणया ।

ते पंचभावमिस्सा होंति गुणट्ठाणमासेज्ज ॥ ७ ॥

शेषौ यौ द्वौ भावौ शुभाशुभौ पुण्यपापसंजनकौ ।

तौ पंचभावमिश्रौ भवतो गुणस्थानमाश्रित्य ॥

१ मं. ख । २ हं. ख । ३ पुत्रं ख । ४ मो. ख । ५ अस्मादग्रे उक्तं

चेति दत्त्वा ख—पुस्तके गाथेयं वर्तते—

जीववहअलियचोरियमेहुणपरिग्गहेहिं रहिओ वि ।

परिणामपरिग्गहिओ तंदुलमच्छो गओ नरयं ॥ १ ॥

जीववधालीकचोरीमैथुनपरिग्रहै रहितोऽपि

परिणामपरिगृहीतः तन्दुलमत्स्यो गतो नरकं ॥

६ सेवो. ख । ७ भावे क ।

अउदइउ परिणामिउ खयउवसमिउ तहा उवसमो खइओ ।

एए पंच पहाणा भावा जीवाण होंति जियलोए ॥ ८ ॥

औदयिकः पारिणामिकः क्षायोपशमिकस्तथौपशमिकः क्षायिकः ।

एते पंच प्रधाना भावा जीवानां भवन्ति जीवलोके ॥

ते चिर्यं पज्जायगया चउदहगुणठाणणामथा भणिया ।

लहिऊण उदय उवसम खयउवसम खउं हु कम्मस्स ॥९॥

ते एव पर्यायगताश्चतुर्दशगुणस्थाननामका भणिताः ।

लब्ध्वा उदयमुपशमं क्षयोपशमं क्षयं हि कर्मणः ॥

मिच्छा सासण मिस्सो अविरियसम्मो य देसविरदो य ।

विरओ पमत्त इयरो अपुव्व अणियट्ठि सुहमो य ॥ १० ॥

मिध्यात्वं सासादनं मिश्रं अविरतसम्यक्त्वं च देशविरतं च ।

विरतं प्रमत्तं इतरदपूर्वमनिवृत्ति सूक्ष्मं च ।

उवसंतखीणमोहे सजोइकेवल्लिजिणो अजोगी यं ।

ए चउदस गुणठाणा कमेण सिद्धां य णायव्वां ॥ ११ ॥

१ णइ चेअ चिअ च एवार्थे । २ य. ख । ३ अजोईओ. ख । ४ सिद्धा मुणे-
यव्वा ख । ५ अस्मादग्रे व्याख्येयं गाथासूत्रद्वयस्य ख-पुस्तके—

अस्य चतुर्दशगुणस्थानस्य विवरणा क्रियते, मिच्छा-मिध्यात्वगुणस्थानं १ ।
सासण-सासादनगुणस्थानं २ । मिस्सो-मिश्रगुणस्थानं ३ । अविरियसम्मो-
अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानं, तत्कथं ? सम्यक्त्वमस्ति व्रतं नास्ति ४ । देसविरओ
य-विरताविरत इत्यर्थः, तत्कथं ? स्थावरप्रवृत्तिस्त्रसनिवृत्तिरित्यर्थः, एकदेशविरत-
श्रावकगुणस्थानं ५ । विरया पमत्त इति कोऽर्थः यत्तित्वे सत्यपि आ समन्तात्
पंचदशप्रमादसहित इत्यर्थ इति गुणस्थानं पठं ६ । इयरो-अप्रमत्तः पंचदशप्रमाद-
रहितो महान् यत्तिरित्यर्थ इति सप्तगुणस्थानं ७ । अपुव्व-अपूर्वकरणनामगुण-
स्थानं ८ । अणियट्ठि-अनिवृत्तिनामगुणस्थानं तस्मिन् गुणस्थाने व्यार्णवनाऽस्ति

उपशान्तक्षीणमोहे सयोगकेवलिजिनोऽयोगी च ।

एतानि चतुर्दशगुणस्थानानि क्रमेण सिद्धाश्च ज्ञातव्याः ॥

मिच्छत्तस्सुदण्ण य जीवे संभवइ उदइओ भावो ।

तेण य मिच्छादिट्ठीठाणं पावेइ सो तइया ॥ १२ ॥

मिथ्यात्वस्योदयेन च जीवे संभवति औदयिको भावः ।

तेन च मिथ्यादृष्टिस्थानं प्राप्नोति स तत्र ॥

मिच्छत्तरसपउत्तो जीवो विवरीयदंसणो होइ ।

ण मुणइ हियं^१ च अहियं पित्तज्जुरं^२जुओ जहा पुरिसो ॥ १३ ॥

मिथ्यात्वरसप्रयुक्तो जीवो विपरीतदर्शनो भवति ।

न जानाति हितं चाहितं पित्तज्वरयुक्तो यथा पुरुषः ॥

कडुवं^३ मण्णइं महुरं महुरं पि य तं भणेइ अइकडुयं ।

तह मिच्छत्तपउत्तो उत्तमधम्मं ण रोचेइ ॥ १४ ॥

कटुकं मन्यते मधुरं मधुरमपि च तद्भणति कटुकं ।

तथा मिथ्यात्वप्रवृत्तः उत्तमधर्मं न रोचते ॥

जह कणयं^४मज्जकोद्वमहुं^५रामोहेण मोहिओ संतो ।

ण मुणइ कज्जाकज्जं मिच्छादिट्ठी तहा जीवो ॥ १५ ॥

इत्यर्थः ९ । सुहमो य—सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानं १० । उवसंत—उपशान्तनाम-
गुणस्थानं ११ । खीणमोहो—क्षीणकषायनामगुणस्थानं १२ । सयोगकेवलिजिनो
—समवशरणादिविभूतिसहितसयोगिकेवलनामगुणस्थानं १३ । अयोगी य—समव-
शरणादिविभूतिरहितायोगिकेवलनामगुणस्थानं १४ । इति चतुर्दशगुणस्थानानि ।

१ हेयाहेयं ख । २ पित्तजुरसंजुओ ख । ३ यं. ख । ४ यं. ख । ५ धत्तुरकं ।

यथा कनकमद्यकोद्रवमधुरमोहेन मोहितः सन् ।

न जानाति कार्याकार्यं मिथ्यादृष्टिस्तथा जीवः ॥

तं पि हु पंचपयारं वियरो एयंतविणयसंजुत्तं ।

संसयअण्णाणगयं विवरीओ होइ पुण वंभो' ॥ १६ ॥

तदपि हि पंचप्रकारं विपरीतं एकान्तविनयसंयुक्तं ।

संशयाज्ञानगतं विपरीतो भवति पुनः ब्राह्मणः ॥

एवं वदते ब्राह्मणः—

मण्णइ जलेण सुद्धिं तिच्चिं मंसेण पियरवग्गस्स ।

पसुकैयवहेण सग्गं धम्मं गोजोणिफासेण ॥ १७ ॥

१ अस्या अधः पाठोऽयं वर्तते प्रथमपुस्तके—

सप्त मिथ्यात्वाः । विपरीतमिथ्यादृष्टिब्राह्मणाः १ । एकान्तवौद्धः २ । वैनयिकस्तापसः ३ । संशयश्वेताम्बरः ४ । अज्ञानतुरुष्कः ५ । जीव-अभावचार्वाकः ६ । जीवोऽस्ति पुनर्जीविन कृतं यत्पुण्यपापादिकं तत्फलं जीवो न भुंक्ते, परन्तु प्रकृतिस्तद्भुंक्ते नान्यत् सांख्यः । द्वितीयपुस्तके तु उभयस्थानेऽयं पाठः—

तं पुण सत्तपयारं विवरीयं एयंत विणयसंजुत्तं ।

संसयअण्णाणगयं चच्चक्कं तहेव संखं च ॥ १ ॥

तत्पुनः सप्तप्रकारं विपरीतं एकान्तविनयसंयुक्तं ।

संशयाज्ञानगतं चार्वाकं तथैव सांख्यं च ॥

विवरीओ होइ पुण वंभो । सप्तधा मिथ्यात्वं, तत्कथं? विपरीतमिथ्यादृष्टिब्राह्मणः, एकान्तमिथ्यादृष्टिवौद्धः, विनयादेव मोक्ष इति वैनयिकमिथ्यादृष्टिस्तापसः, संशयमिथ्यादृष्टिः श्वेताम्बरः, अज्ञानादेव मोक्ष इति अज्ञानमिथ्यादृष्टितुरुष्कः, जीवाभावमिथ्यादृष्टिचार्वाकः । जीवोऽस्ति जीवेन कृतं यत्पुण्यपापादिकं तत्फलं जीवो न भुंक्ते परं तु प्रकृतितत्त्वं तु भुंक्ते नान्यत् एवं मिथ्यादृष्टिवादी सांख्यः इति सप्त मिथ्यात्वं । तत्र तावद्विपरीतमिथ्यादृष्टिब्राह्मणः कथ्यते, तत्कथं?—

२ वग्गाणं ख । ३ पशूनां वधेनेत्यर्थः ।

मन्यते जलेन शुद्धिं तृप्तिं मांसेन पितृवर्गस्य ।

पशुकृतवधेन स्वर्गं धर्मं गोयोनिस्पर्शनेन ॥

जइ जलप्राणपउत्ता जीवा मुचेइ पिययपावेण ।

तो तत्थ वसिय जलयरा सव्वे पावंति दिवलोयं ॥१८॥

यदि जलस्नानप्रवृत्ता जीवा मुच्यन्ते निजपापेन ।

तर्हि तत्र वसन्तो जलचराः सर्वे प्राप्नुवन्ति दिवलोकं ॥

जं कम्मं दिढवद्धं जीवपएसेहि तिविहजोएण ।

तं जलफासणिमित्ते कह फट्टइ तित्थण्हाणेण ॥ १९ ॥

यत्कर्म दृढवद्धं जीवप्रदेशैस्त्रिविधयोगेन ।

तज्जलस्पर्शनिमित्ते कथं स्फुटति तीर्थस्नानेन ॥

उक्तं च गीतायां—

अत्यन्तमलिनो देहो देही चात्यन्तनिर्मलः ।

उभयोरन्तरं दृष्ट्वा कस्य शौचं विधीयते ॥ १ ॥

मलिणो देहो णिच्चं देही पुण णिम्मलो सयारूवी ।

को इह जलेण सुज्झइ तम्हा ण्हाणे ण हु सुद्धी ॥ २० ॥

मलिनो देहो नित्यं देही पुनः निर्मलः सदारूपी ।

क इह जलेन शुद्ध्यति तस्मात्स्नाने न हि शुद्धिः ॥

उक्तं च—

आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्यावहा शीलतटा दयोर्मिः ।

तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र ! न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मे ॥१॥

१ ओ ख । २ उक्तं च गीतायां मध्ये ख । ३ अस्मादग्रे इमे श्लोकाः

समुपलभ्यन्ते—ख पुस्तके ।

चित्तमन्तगतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति ।

शतशोऽपि जलैर्घातं मद्यभाण्डमिवाशुचि ॥ १ ॥

अरण्ये निर्जले देशेऽशुचित्वाद्ब्राह्मणो मृतः ।
 वेदवेदाङ्गतत्वज्ञः कां गतिं स गमिष्यति ॥ २ ॥
 यद्यसौ नरकं याति वेदाः सर्वे निरर्थकाः ।
 अथ स्वर्गमवाप्नोति जलशौचं निरर्थकं ॥ ३ ॥

सुज्झइ जीवो तवसा इन्द्रियखलणिग्गहेण परमेण ।
 रयणत्तयसंजुत्तो जह कणयं अग्गिजोएण ॥ २१ ॥

शुद्ध्यति जीवस्तपसा इन्द्रियखलनिग्रहेन परमेण ।
 रत्नत्रयसंयुक्तो यथा कनकं अग्नियोगेन ॥

पहाणाओ चिय सुद्धिं जीवा इच्छंति जे जडत्तेण ।
 भमिहिंति ते वराया चउरासीजोणिलक्खाइं ॥ २२ ॥

स्नानादेव शुद्धिं जीवा इच्छन्ति ये जडत्वेन ।
 भ्रमिष्यन्ति ते वराकाश्चतुरशीतियोनिलक्षाणि ॥

जे तियरमणासत्ता विसयपमत्ता कसायरसविसिया ।
 णंता वि ते ण सुद्धा गिहवावारेसु वटंता ॥ २३ ॥

कामरागमदोन्मत्ताः स्त्रीणां ये वशवर्तिनः ।

न ते जलेन शुद्ध्यन्ति स्नात्वा तीर्थशतैरपि ॥ २ ॥

गंगातोयेन सर्वेण मृद्धारैः पर्वतोपमैः ।

आम्लैरप्यचरन् शौचं भावदुष्टे न शुद्ध्यति ॥ ३ ॥

मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं वाचां यमश्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।

एतानि तीर्थानि शरीरजानि मोक्षस्य मार्गं प्रतिदर्शयन्ति ॥ ४ ॥

इति गीतायां श्लोकाः ।

ये स्त्रीरमणासक्ता विषयप्रमत्ता कपायरसवशिताः ।

स्नान्त अपि ते न शुद्धा गृहव्यापारेषु वर्तमानाः ॥

सर्वस्सेण ण तित्ता मायापउरा य जायणासीला ।

किं कुणइ तेसु ण्हाणं अब्भंतरगहियपावाणं ॥ २४ ॥

सर्ववस्तुना न तृप्ता मायाप्रचुराश्च याचनाशीलाः ।

किं करोति तेषां स्नानमभ्यन्तरगृहीतपापानां ॥

वयणियमसीलजुत्ता णिहयकसाया दयावरा जइणो ।

ण्हाणरहिया वि पुरिसा वंभंचारी सया सुद्धा ॥ २५ ॥

व्रतनियमशीलयुक्ता निहतकपाया दयापरा यतयः ।

स्नानरहिता अपि पुरुषा ब्रह्मचारिणः सदा शुद्धाः ॥

स्नानदूषणम् ।

मांसेण पियरवग्गो पीणिज्जइ एरिसी सुई जेसिं ।

तेहिमसेसं गोत्तं हणिऊण य भक्खियं णियमा ॥ २६ ॥

मांसेन पितृवर्गः तृप्यते ईदृशी श्रुतिर्येषां ।

तैरशेषं गोत्रं हत्वा च भक्षितं नियमात् ॥

जे कयकम्मपउत्ता सुयणा हिंडंति चउगईघोरे ।

संसारे गिण्हंता संवंधा सयलजीवेहिं ॥ २७ ॥

ये कृतकर्मप्रयुक्ताः स्वजना हिण्डन्ते चतुर्गतिघोरे ।

संसारे गृह्णन्तः सम्बन्धान् सकलजीवैः ॥

तिरियगई उववण्णा संपत्ता मच्छयाइ जे जम्मं ।
हणिऊण अवरुपक्खे तेसिं मंसेहिं विविहेहिं ॥ २८ ॥

तिर्यग्गतावुत्पन्नाः सम्प्राप्ता मत्स्यादि ये जन्म ।

हत्वा अपरपक्षे तेषां मांसैर्विविधैः ॥

कुणइ सराहं कोई पियरे संसारतारणत्थेण ।
सो तेसिं मंसाणि य तेसिं णामेण खावेइ ॥ २९ ॥

करोति श्राद्धं कश्चित्पितुः संसारतारणार्थेन ।

स तेषां मांसानि च तेषां नाम्ना खादयति ॥

वक्केण जह सत्ताओ हरिणो हणिऊण तण्णिमित्तेण ।
पइऊण सोत्तियाणं दिण्णो खद्धो सयं चेव ॥ ३० ॥

वक्त्रेण यथा स्वतातो हरिणो हत्वा तन्निमित्तेन ।

प्रीणयित्वा श्रोत्रियेभ्यो दत्तः भक्षितः स्वयं चैव ॥

मंसासिणो ण पत्तं मंसं ण हु होइ उत्तमं दाणं ।
कह सो तिप्पइ पियरो परमुहगसियाइं भुंजंतो ॥ ३१ ॥

मांसाशिनो न पात्रं मांसं न हि भवति उत्तमं दानं ।

कथं स तृप्यति पिता परमुखग्रसितानि भुंजानः ॥

अण्णम्मि भुंजमाणे अण्णो जइ धाइ एत्थ पच्चक्खं ।
तो सग्गम्मि वसंता पियरा तित्तिं खु पावंति ॥ ३२ ॥

अन्यस्मिन् भुञ्जानेऽन्यो यदि तृप्यत्यत्र प्रत्यक्षं ।

ततः स्वर्गे वसन्तः पितरस्तृप्तिं खलु प्राप्नुवन्ति ॥

जइ पुत्तदिण्णदाणे पियरा तिप्पंति चउमइ गया वि ।
तो जण्णहोमण्हाणं जवतववेयाइं अकियत्था ॥ ३३ ॥

यदि पुत्रदत्तदानेन पितरः तृप्यन्ति चतुर्गतिं गता अपि ।
तर्हि यज्ञहोमस्नानं जपतप्रोवेदादयः अकृतार्थाः ॥

कयपावो णरय गओ णिज्जइ पुत्तेण पियरु सग्गम्मिं ।
पिंडं दाऊण फुडं ण्हाइं य तित्थाइं भणिऊण ॥ ३४ ॥

कृतपापो नरके गतो नीयते पुत्रेण पिता स्वर्गे ।
पिंडं दत्त्वा स्फुटं स्नाति च तीर्थानि भणित्वा ॥

जइ एवं तो पियरो सग्गं पत्तो वि जाइ णिरयम्मि ।
पुत्तेण कए दोसे वंभहच्चाइगरुएण ॥ ३५ ॥

यद्येवं तर्हि पिता स्वर्गं प्राप्तोऽपि जायते नरके ।
पुत्रेण कृतेन दोषेण ब्रह्महत्यादिगुरुकेन ॥

अण्णकंए गुणदोसे अण्णो जइ जाइ सग्गणरयम्मि ।
जो कुणइ पुण्णपावं तस्स फलं सो ण वेएइ ॥ ३६ ॥

अन्यकृताभ्यां गुणदोषाभ्यामन्यो यदि याति स्वर्गनरके ।
यः करोति पुण्यपापं तस्य फलं स न वेदयति ॥

ण हु वेयइ तस्स फलं कत्ता पुरिसो हु पुण्णपावस्स ।
जइ तो कह ते सिद्धा भूयंग्गामा हु चत्तारि ॥ ३७ ॥

न हि वेदयति तस्य फलं कर्ता पुरुषः हि पुण्यपापस्य ।
यदि तर्हि कथं ते सिद्धा भूतग्रामा हि चत्वारः ॥

जो कुण्डं पुण्यपात्रं सो चिय भुंजेत् गतिं संदेहो ।
सगं वा णरयं वा अप्पाणो णेत् अप्पाणं ॥ ३८ ॥

यः करोति पुण्यपात्रं स एव मुक्तिं नास्ति सन्देहः ।
स्वर्गं वा नरकं वा आत्मना नयति आत्मानं ॥

एवं भणन्ति केचिद् जलथलगिरिसिहरअग्गिकुहरेसु ।
चउविहभूयग्गामे वसइ हरी गतिं संदेहो ॥ ३९ ॥

एवं भणन्ति केचिज्जलस्थलगिरिशिखराग्गिकुहरेषु ।
चतुर्विधभूतग्रामे वसति हरिर्नास्ति सन्देहः ॥

उक्तं च—

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके ।
ज्वालमालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥ १ ॥

सच्चगओ जइ विण्हू णिवसइ देहम्मिह सच्चदेहीणं ।
तो रुक्खाइहएण सो णिहओ होइ णियमेण ॥ ४० ॥

सर्वगतो यदि विष्णुः निवसति देहे सर्वदेहिनां ।
तर्हि वृक्षादिहतेन स निहतो भवति नियमेन ॥

उक्तं च—

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश ॥ १ ॥
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च विष्णुः सम्पूज्य भक्तितः ।
मत्स्यादीनां कथं मांसं भक्षितुं कल्प्यते बुधैः ॥ २ ॥

किडिकुम्ममच्छरुवं पडिमं काऊण विण्हु भणिऊण ।

अचेयणम्मि पुज्जइ गंधक्खयध्रुवदीवेहिं ॥ ४१ ॥

किटिकूर्ममत्स्यरूपां प्रतिमां कृत्वा विष्णुं भणित्वा ।

अचेतने पूजयति गन्धाक्षतधूपदीपैः ॥

जो पुण चेयणवंतो विण्हू पच्चक्ख मच्छकिडिरुवो ।

सो हणिऊण य खद्धो दिण्णो पियराण पावेहिं ॥ ४२ ॥

यः पुनः चैतन्यवान् विष्णुः प्रत्यक्षं मत्स्यकिटिरूपः ।

स हत्वा च भक्षितो दत्तः पितृभ्यः पापैः ॥

जइ देवो हणिऊणं मांसं गसिऊण गम्मए सग्गं ।

तो णरयं गंतव्वं अवरेणिह केण पावेणं ॥ ४३ ॥

यदि देवं हत्वा मांसं ग्रसित्वा गच्छति स्वर्गं ।

तर्हि नरकं गन्तव्यं अपरेणेह केन पापेन ॥

हणिऊण पोढछेलं गम्मइ सग्गंस्स एस वेयत्थो ।

तो सूणोरा सव्वे सग्गं णियमेण गच्छंति ॥ ४४ ॥

अल्पायुपो दरिद्राश्च नीचकर्मोपजीविनः ।

दुष्कुलेषु प्रसयन्ते ये नरा मांसभोजिनः ॥ १ ॥

योत्ति मनुष्यो मांसं निर्दयचेताः स्वदेहपुष्टयर्थम् ।

याति स नरकं सततं हिंसाप्रवृत्तचित्तत्वात् ॥ २ ॥

१ खाऊण ख । २ अस्मादग्ने, मांसेन पितृवर्गदूषणमिति. ख-पुस्तके पाठः ।

समाप्तमित्यर्थः । ३ हंतूण ख । ४ अत्र हि द्वितीयास्थाने पष्ठी “कच्चिदसादेः” इत्यनेन, स्वर्गायेति वा छाया । ५ जीववधकाः चांडालादयः । ६ इतोऽग्ने-त्रय इमे श्लोकाः वर्तन्ते ख-पुस्तके—

हत्वा प्रौढच्छागं गच्छति स्वर्गं एष वेदार्थः ।

तर्हि सूनकाराः सर्वे स्वर्गं नियमेन गच्छन्ति ॥

सव्वगओ जइ विण्हू छागसरीरम्मिः किं ण सो अत्थि ।

जं णित्ताणो वहिओ चडप्फडंतो णिरुस्सासो ॥ ४५ ॥

सर्वगतो यदि विष्णुः छागादिशरीरे किं न सोऽस्ति ।

यद् निस्त्राणः हतः तल्प्यमानो निःश्वासः ॥

अण्णं इयं णिसुणिज्जइ सत्थे हरिवंभरुद्भत्ताण ।

सव्वेसु जीवरासिसु अंगे देवा हु णिवसंति ॥ ४६ ॥

अन्यदिति निश्चयते शास्त्रे हरिव्रह्मरुद्रभक्तानां ।

सर्वेषां जीवराशिनां अंगे देवा हि निवसन्ति ॥

उक्तं च—

नाभिस्थाने वसेद्ब्रह्मा विष्णुः कण्ठे समाश्रितः ।

तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटे च महेश्वरः ॥ १ ॥

नासाग्रे च शिवं विद्यात्तस्यांते च परोपरः ।

परात्परतरं नास्ति इति शास्त्रस्य निश्चयः ॥ २ ॥

अन्ये चैवं वदन्त्येके यज्ञार्थं यो निहन्यते ।

तस्य मांसाशिनः सोऽपि सर्वे यान्ति सुरालयं ॥ १ ॥

तर्किं न क्रियते यज्ञः शास्त्रज्ञैस्तस्य निश्चयात् ।

पुत्रवध्वादिभिः सर्वे प्रगच्छन्ति दिवं यथा ॥ २ ॥

नाहं स्वर्गफलोपभोगतृपितो नाभ्यर्थितस्त्वं मया

सन्तुष्टस्तृणभक्षणेन सततं हंतु न युक्तं तव ।

स्वर्गं यान्ति यदि त्वया विनिहता यज्ञे ध्रुवं प्राणिनो

यज्ञं किं न करोपि मातृपितृभिः पुत्रैस्तथा वान्धवैः ॥ ३ ॥

पूर्वं द्वे पद्ये संस्कृतभावसंग्रहस्य । अन्त्यं चैकं यदास्तिलकचम्पवाः ।

१ ह ख । २ सव्वे ख ।

सर्वांसु जीवरासिसु एए णिवसन्ति पंचठाणेषु ।

जइ तो किं पसुवहणे ण मारिया हांति ते सव्वे ॥ ४७ ॥

सर्वासु जीवराशिषु एते निवसन्ति पंचस्थानेषु ।

यदि तर्हि किं पशुवधेन न मारिता भवन्ति ते सर्वे ॥

देवे वहिऊण गुणाऽलव्भहि जइ इत्थ उत्तमा केई ।

तु रुक्कवंदणया अवरं पारद्विया सव्वे ॥ ४८ ॥

देवान् वदध्वा गुणान् लभन्ते यद्यत्रोत्तमाः केचित् ।

तर्हि वृक्षवन्दनया? अपरे पारधिकाः सर्वे ॥

उक्तं च—

न हि हिंसाकृते धर्मः सारम्भे नास्ति मोक्षता ।

स्त्रीसम्पर्के कुतः शौचं मांसभक्षे कुतो दया ॥ १ ॥

तिलसर्षपमात्रं वा यो मांसं भक्षयेद्द्विजः ।

स नरकान्न निवर्तेत यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ २ ॥

आकाशगामिनो विप्राः पतिता मांसभक्षणात् ।

विप्राणां पतनं दृष्ट्वा तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ॥ ३ ॥

आगोपालादि यत्सिद्धं धान्यं मांसं पृथक् पृथक् ॥

मांसमानय इत्युक्ते न कश्चिद्धान्यमानयेत् ॥ ४ ॥

स्थावरा जंगमाश्चैव द्विधा ज्वाः प्रकीर्तिताः ।

जंगमेषु भवेन्मांसं फलं तु स्थावरेषु च ॥ ५ ॥

मांसं तु इंद्रियं पूर्णं सप्तधातुसमन्वितं ।

यो नरो भक्षते मांसं स भ्रमेत्सागरान्तकम् ॥ ६ ॥

मांसदूषणं ।

वंदइ गोजोणि सया तुंडं परिहरइ भणिवि अपवित्तं ।

विवरीयाभिणिवेसो एसो फुडु होइ मिच्छो वि ॥ ४९ ॥

वन्दते गोयोनिं सदा तुंडं परिहरति भणित्वाऽपवित्रं ।
 विपरीताभिनिवेश एप्र स्फुटं भवति मिथ्यात्वमपि ॥
 पावेण तिरियजम्भे उववण्णा तिणयरी पसू गावी ।
 अविवेया विट्टासी सा कह देवत्तणं पत्ता ॥ ५० ॥
 पापेन तिर्यग्जन्मनि उत्पन्ना तृणचारिणी पशुः गौः ।
 अविवेकिनी विट्टाशिनी सा कथं देवत्वं प्राप्ता ॥
 अहवा एसो धम्मो विट्टं भक्खंतया वि णमणीया ।
 तो किं वज्झइ दुज्झइ ताडिज्जइ दीहदंडेण ॥ ५१ ॥

उक्तं च—

न हि हिंसाकृते धर्मः सारम्भे नास्ति मोक्षता ।
 स्त्रीसम्पर्के कृतः शौचं मांसभक्षे कुतो दया ॥ १ ॥
 संस्कर्ता चोपहर्ता च पा (खा) दकश्चैव घातकः ।
 उपदेष्टाऽनुमंता च पढेते समभागिनः ॥ २ ॥
 मांसाशनातिशक्ते क्रूरनरे नैव तिष्ठते सुदया ।
 निर्दयमनसि न धर्मो धर्माविहीने च नैव सुखिता स्यात् ॥ ३ ॥
 तिलसर्पपमात्रं तु यो मांसं भक्षयेद्द्विजः ।
 स नरकान्न निवर्तेत यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ४ ॥
 आकाशनामिनो विप्राः पतिता मांसभक्षणात् ।
 विप्राणां पतनं दृष्ट्वा तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ॥ ५ ॥
 न कर्दमे भवेन्मांसं न काष्ठेषु तृणेषु च ।
 जीवशरीराद्भवेन्मांसं तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ॥ ६ ॥
 सर्वं शुक्रं भवेद्ब्रह्मा विष्णुर्मांसं प्रवर्तते ।
 ईश्वरोऽप्यस्ति संघाते तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ॥ ७ ॥

अथ वाक्यमाह—

यद्यन्मांसं तत्तत्सर्वं जीवशरीरमेव स्यात् । एवमश्वो निर्द्वारणार्थः । यद्यजी-
 वशरीरं तत्सर्वं मांसं भवतीति नियमाभावः, कुतः वृक्षादौ व्यभिचारात् । वृक्षा-
 दीनां जीवशरीरत्वे सत्यपि मांसाभावात् ।

अथवैप धर्मो विष्टां भक्षयन्त्यपि नमनीया ।
तर्हि किं बध्यते दुह्यते ताड्यते दीर्घदण्डेन ॥

अन्यच्च—

मांसं जीवशरीरं जीवशरीरं भवेन्न वा मांसं ।
यद्वन्निस्रयो वृक्षो वृक्षस्तु भवेन्न वा निस्रः ॥ ८ ॥

आम्नादौ व्यभिचारात् ।

कश्चिदाहेति यत्सर्वं धान्यपुष्पफलादिकं ।
मांसात्मकं न तर्कि स्याज्जीवाङ्गत्वप्रसंगतः ॥ ९ ॥

तदयुक्तमित्याह—

जीवत्वेन हि तुल्या वै यद्यप्येते भवन्तु ते ।
स्त्रीत्वे सति यथा माता अभक्षं यंगमं तथा ? ॥ १० ॥
यद्वद्गुरुडः पक्षी पक्षी न तु एव सर्वगरुडोऽस्ति ।
रामैव चास्ति माता माता न तु सार्विका रामा ॥ ११ ॥
शुद्धं दुग्धं न गोमांसं वस्तुवैचित्र्यमीदृशं ।
विपन्नं रत्नमाहेयं विपं च विपदे मतः ॥ १२ ॥
हेयं पलं पयः पेयं समे सत्यपि कारणे ।
विपद्रोरायुपे पत्रं मूलं तु मृतये स्मृतं ॥ १३ ॥
पंचगव्यं तु तैरिष्टं गोमांसे सपयः कृतः ।
तत्पित्तजाऽप्युपादेया प्रतिष्ठादिषु रोचना ॥ १४ ॥
इति हेतोर्न वक्तव्यं सादृश्यं मांसधान्ययोः ।
मांसं निन्द्यं न ध्यानं स्यात् प्रसिद्धेयं श्रुतिर्जनैः ॥ १५ ॥
आगोपालादि यत्सिद्धं धान्यं मांसं पृथक् पृथक् ।
धान्यमानयमित्युक्ते न कश्चिन्मांसमानयेत् ॥ १६ ॥
ब्राह्मणादिभिः धान्यमांसं एकं जड् भणियं—(?)
स्थावरा जंगमाश्चैव द्विधा जीवाः प्रकीर्तिताः ।
जंगमेषु भवेन्मांसं फलं तु स्थावरेषु च ॥ १७ ॥
मांसमिन्द्रियसम्पूर्णं सप्तधातुसमाश्रितं ।
यो नरो भक्षयेन्मांसं स भ्रमेत्सागरान्तकम् ॥ १८ ॥

सुरही लोयस्सग्गे वक्खाणइ एस देवि पच्चक्खा ।
सव्वे देवा अंगे इमिँए णिवसंति णियमेण ॥ ५२ ॥

सुरभिः लोकस्याग्रे कथ्यते एषा देवी प्रत्यक्षा ।

सर्वे देवा अंगे अस्या निवसन्ति नियमेन ॥

पुणरवि गोसवजण्णे मंसं भक्खंति सा वि मारित्ता ।
तस्सेव वहेणँ फुडं ण मारिया होंति ते देवा ॥ ५३ ॥

पुनरपि गवोत्सवयज्ञे मांसं भक्षयन्ति तामपि मारयित्वा ।

तस्या एव वधेन स्फुटं न मारिता भवन्ति ते देवाः ॥

सोत्तिय गव्वुवुढा मंसं भक्खंति रमहि महिलाओ ।
अपवित्ताइं असुद्धा देहच्छिद्दाइं वंदंति ॥ ५४ ॥

श्रोत्रिया गर्वोत्कटा मांसं भक्षयन्ति रमन्ते महिलाः ।

अपवित्राणि अशुद्धानि देहच्छिद्राणि वन्दन्ते ॥

सो सोत्तिओ भणिज्जइ णारीकडिँसोत्त वज्जिओ जेण ।
जो तु रमणासत्तो ण सोत्तियो सो जडो होई ॥ ५५ ॥

स श्रोत्रियो भण्यते नारीकटिस्रोतो वर्जितं येन ।

यस्तु रमणासक्तो न श्रोत्रियः स जडो भवति ॥

अहवा पसिद्धवयणं सोत्तं णारीण सेवए जेण ।
मुत्तप्पवहणदारं सोत्तियओ तेण सो उत्तो ॥ ५६ ॥

अथवा प्रसिद्धवचनं स्रोतो नारीणां सेव्यते येन ।

मूत्रप्रवाहद्वारं श्रोत्रियः तेन स उक्तः ॥

इय विवरीयं उत्तं मिच्छत्तं पावकारणं विसमं ।
तेण पउत्तो जीवो णरयगई जाइ णियमेण ॥ ५७ ॥

१ इमाइ ख । सप्तम्यामुभयमेव साधु । २ वहणेण ख, वहणेण क । ३ रमंति । ४ गोयोनीः । ५ सोतु ख, सुतु. क । कटिस्रोतः-योनिच्छिद्रं ।

इति विपरीतं उक्तं मिथ्यात्वं पापकारणं विपमं ।

तेन प्रयुक्तो जीवो नरकगतिं याति नियमेन ॥

अवि सहइ तत्थ दुक्खं सक्करपहपमुहणरयविवरेसु ।

कह सो सग्गं पावइ णिहय पस्सु खद्धपलगासो ॥ ५८ ॥

अपि सहते तत्र दुःखं शर्कराप्रमुखनरकविवरेषु ।

कथं स स्वर्गं प्राप्नोति निहत्य पशून् खादितपलप्रासः ॥

जइ कहव्वं तत्थ णिग्गइ उप्पज्जइ पुणु वि तिरियजोणीसु ।

मारियइ सोत्तिएहिं णित्ताणो पुण वि जण्णम्मि ॥ ५९ ॥

यदि कथमपि ततो निर्गच्छति उत्पद्यते पुनरपि तिर्यग्योनिषु ।

मार्यते श्रोत्रियैः निस्त्राणः पुनरपि यज्ञे ॥

णियभासाए जंपइ मेमंतो कहइ आसि मे रइयं ।

एवं वेयविहाणं संपत्तो दुग्गई तेण ॥ ६० ॥

निजभाषायां जल्पति मे मे कथयति आसीत् मया रचितं ।

एवं वेदविधानेन संप्राप्ता दुर्गतिः तेन ॥

इय विलवंतो हम्मइ गलयं मुहनासरंध रुंधित्ता ।

भक्खियइ सोत्तियेहिं विहिणा बहुवेयवंतेहिं ॥ ६१ ॥

१ प्रमुखशब्देन रत्नप्रभावालुकाप्रभादयो गृह्यन्ते । २ क-ख-पुस्तकद्वयेऽपि इति पाठः । ३ रक्षारहितः । ४ न ख । ५ छागादीनां भाषा । ६ “मि मइ ममाइ मए मे डिटा इत्यनेन अस्मच्छब्दस्य स्थाने टावचनेन सह मे इत्यादेशः । ७ अस्मादग्रे ईदृक्पाठो निश्छायः ख-पुस्तके । विवरीयमिच्छतसम्मत्तं । अय दर्शनसारादाथा-युग्मं—

सुच्चयतिथे उव्वो खीरकदंबुत्ति सुद्धसम्मत्तो ।

सीसो तस्स य दुट्ठो पुत्तो वि य पव्वओ वक्को ॥ १ ॥

विवरीयमयं किच्चा विणासियं सव्वसंजमं लोए ।

तत्तो पत्ता सव्वे सत्तमणरयं महाघोरं ॥ २ ॥

इति विलपन् हन्यते गलन्मुखनासिकारन्ध्रं रुद्ध्वा ।

भक्ष्यते श्रोत्रियैः त्रिधिना बहुवेदवाद्भिः ॥

इयं विवरीयं कहियं मिच्छत्तं पावकारणं विसमं ।

जो परिहरइ मणुस्सो सो पावइ उत्तमं ठाणं ॥ ६२ ॥

इति विपरीतं कथितं मिथ्यात्वं पापकारणं विषमं ।

यः परिहरति मनुष्यः स प्राप्नोति उत्तमं स्थानं ॥

इति विपरीतमिथ्यात्वं प्रथमं ।

एयंतमिच्छदिट्ठी बुद्धो एयंतणयसमालंबी ।

एयंतं खणियत्तं मण्णइ जं लोयमज्झम्मि ॥ ६३ ॥

एकान्तमिथ्याद्यष्टिर्वुद्ध एकान्तनयसमालम्बी ।

एकान्तेन क्षणिकत्वं मन्यते यल्लोकमध्ये ॥

जइ खणियत्तो जीवो तरिहि भवे कस्स कम्मसंबंधो ।

संबंध विणा ण घडइ देहग्गहणं पुणो तस्स ॥ ६४ ॥

यदि क्षणिको जीवस्तीर्हि भवेत् कस्य कर्मसम्बन्धः ।

सम्बन्धं विना न घटते देहग्रहणं पुनः तस्य ॥

तवयरणं वयधरणं चीवरगहणं च सीसमुंडणयं ।

सत्तहंडियासु भिक्खा खणियत्ते णेव संभवइ ॥ ६५ ॥

सुव्रततीर्थे जातः क्षीरकदम्ब इति शुद्धसम्यक्त्वः ।

शिष्यस्तस्य च दुष्टः पुत्रोऽपि च पर्वतो वक्रः ॥

विपरीतमतं कृत्वा विनाशितं सर्वसंयमं लोके ।

ततः प्राप्ताः सर्वे सप्तमनरकं महाघोरं ॥

१ अस्य स्थाने विवरीयमिच्छत्तं इति ख-पुस्तके, विवरीयमिच्छत्तं सम्मतं इति
क-पुस्तके-पाठः । २ सत्तहण्डियासु ख ।

तपश्चरणं व्रतधारणं चीवरग्रहणं च शिरोमुण्डनं ।

सप्तहटिकासु भिक्षा क्षणिकत्वे नैवसम्भवति ॥

णाणं जइ खणभंसी कह सो बालत्तववसियं मुणइ ।

तह बाहिरगओ संतो कह आवइ पुण वि णियगेहं ॥ ६६ ॥

ज्ञानं यदि क्षणध्वंसि कथं तत् बालत्वव्यवसितं जानाति ।

तथा बहिर्गतः सन् कथमागच्छति पुनरपि निजगृहं ॥

जइ चेयणा अणिच्चा तो किं चिरजायवाहि संभरइ ।

वइराइ वि मित्ताइ वि कह जाणइ दिट्ठमित्ताइं ॥ ६७ ॥

यदि चेतना अनित्या तर्हि कथं चिरजातव्याधिं स्मरति ।

वैरिणः अपि मित्राण्यपि कथं जानाति दृष्टमात्रेण ॥

पत्तंपडियं ण दूसइ खाइ पलं पियइ मज्जु णिल्लज्जो ।

इच्छइ सग्गगमणं मोक्खग्गमणं च पावेण ॥ ६८ ॥

पात्रपतितं न दूषयति खादयति पलं पिवति मद्यं निर्लज्जः ।

इच्छति स्वर्गगमनं मोक्षगमनं च पापेन ॥

अंसिऊण मंसगासं मज्जं पविऊण गम्मए सग्गं ।

जई एवं तो सुंडय पारद्विय चेव गच्छंति ॥ ६९ ॥

अशित्वा मांसग्रासं मद्यं पीत्वा गम्यते स्वर्गं ।

यद्येवं तर्हि शौण्डाः पारद्विकाश्चैव गच्छन्ति ॥

इय एयंतविणडीओ बुद्धो ण मुणेइ वत्थुसव्भावं ।

अण्णाणी कयपावो सो दुग्गइ जाइ णियमेण ॥ ७० ॥

इति एकान्तविनष्टितो बुद्धो न मनुते वस्तुस्वभावं ।

अज्ञानी कृतपापः स दुर्गतिं याति नियमेन ॥

णिच्चाणिच्चं द्रव्यं सव्वं इह अत्थि लोयमज्झम्मि ।
पज्जाएण अणिच्चं णिच्चं फुड्डु होइ दव्वेण ॥ ७१ ॥

नित्यमनित्यं द्रव्यं सर्वमिहास्ति लोकमध्ये ।

पर्यायेणानित्यं नित्यं स्फुटं भवति द्रव्येण ॥

इय एयंतं कहियं मिच्छत्तं गरुयपावसंजणयं ।
एत्तो उइठं वोच्छं वेणइयं णाम मिच्छत्तं ॥ ७२ ॥

इति एकान्तं कथितं मिथ्यात्वं गुरुकपापसंजनकं ।

इत ऊर्ध्वं वक्ष्ये नैनयिकं नाम मिथ्यात्वं ॥

इत्येकान्तमिथ्यात्वं द्वितीयं ।

१७४स्मादग्रे एवंविधः पाठो निश्चायः ख-पुस्तके । अथ-दर्शनसाराद्वाथा-पंचकं-

स्तिरिपासणाहत्तित्थे सरयूतीरे पलासनयरत्थे ।

पिहियासवस्स सीसो महासुभो बुद्धकित्तिमुणी ॥ १ ॥

तिमिपूरणासणेण हि अगहियपव्वज्जभो परिव्वभट्टो ।

रत्तंवरं धरित्ता पव्वड्डियं तेण एयंतं ॥ २ ॥

मंसस्स णत्थि जीवो जह फले दुद्धदहियसकरए ।

त्तम्हा तं वंछित्तो तं भक्खंतो ण पाविट्टो ॥ ३ ॥

मज्जं ण वज्जणिज्जं दव्वदव्वं जह जलं तथा एदं ।

इय लोए घोसित्ता पव्वट्टियं सव्वसावज्जं ॥ ४ ॥

अण्णो करेइ कम्मं अण्णो तं भुंजईह सिद्धंतं ।

परिकप्पिज्जण ण्णं वसिकिच्चा णिरयमुववण्णो ॥ ५ ॥

श्रीपार्श्वनाथतीर्थे सरयूतीरे पलाशनगरस्थे ।

पिहितासवस्य शिष्यो महाश्रुतो बुद्धकीर्तिमुनिः ।

तिमिपूरणाशनेन हि अगृहीतप्रव्रज्यः परिभ्रष्टः ।

रक्ताम्बरं धृत्वा प्रवर्धितं तेनैकान्तं ।

मांसस्य नास्ति जीवो यथा फले दुग्धदधिशर्करासु ।

तस्मात्तद्वाञ्छिन् तद्भक्षयन् न पापिष्टः

वेणइयमिच्छदिद्वी हवइ फुडं तावसो हु अण्णाणी ।
णिग्गुणजणम्मि विणओ पउंजमाणो हु गयविवेओ ॥७३॥

वैनयिकमिध्यादृष्टिः भवति स्फुटं तापसो ह्यज्ञानी ।

निर्गुणजने विनयं प्रयुञ्जमानो हि गतविवेकः ॥

विणयादो ईह मोक्खं किज्जइ पुणु तेणं गद्दहार्इणं ।
अमुणियगुणागुणेण य विणयं मिच्छत्तणडियेण ॥ ७४ ॥

विनयत इह मोक्षः क्रियते पुनस्तेन गर्दभादीनां ।

अमुनितगुणागुणेन च विनयः मिध्यात्वतटेन ॥

जक्खयणायाईणं दुग्गाखंधाइअण्णदेवाणं ।
जो णवइ धम्महेउं जो वि य हेउं च सो मिच्छो ॥ ७५ ॥

यक्षनागादीन् दुर्गास्कन्धाद्यन्यदेवान् ।

यो नमति धर्महेतोः योऽपि च हेतुश्च स मिध्यात्वं ॥

पुत्तत्थमाउसत्थं कुणइ जणो देविचंडियाविणयं ।
मारइ छेलयसत्थं पुज्जइ कुलाइं मज्जेण ॥ ७६ ॥

मद्यं न वर्जनीयं द्रवद्रव्यं यथा जलं तथैतत् ।

इति लोके घोषयित्वा प्रवर्तितं सर्वसावद्यं

अन्यः करोति कर्म अन्यः भुनक्तीति सिद्धान्तं ।

परिकल्प्य नूनं वशीकृत्य नरकमुपपन्नः

२ एयंत्तमिच्छतं पुस्तके पाठः ।

१ होइ ख । २ मूढेन । ३ योग्यायोग्यक्रमादृते इत्यर्थः । ४ पुज्जइ कउलाइ
मज्जेण ख । पूज्यते कौलानि मद्येन । कौलानि कुलदेवानित्यर्थः ।

पुत्रार्थमायुष्यार्थं करोति जनो देवीचण्डिकाधिनयं ।

मारयति छागसार्थं पूज्यते कुलानि मघेन ॥

ण वि होइ तत्थ पुण्णं किज्जंति^१ णिंकिट्ठरुद्दस्वभावा ।

ण य पुत्ताइं दाउं सक्का ते सत्तिहीणा जे^२ ॥ ७७ ॥

नापि भवति तत्र पुण्यं कुर्वन्ति निक्कट्ठरुद्दस्वभावान् ।

न च पुत्रादि दातुं शक्यास्ते शक्तिहीना ये ॥

जइ ते होंति समत्था कत्थ गया पंडवाइया पुरिसा ।

कत्थ गया चक्केसा हलहरणारयणा कत्थ ॥ ७८ ॥

यदि ते भवन्ति समर्थाः कुत्र गताः पाण्डवाद्याः पुरुषाः ।

कुत्र गताश्चक्रेशा हलधरनारायणाः कुत्र ॥

जइ देवय देइ सुयं तो किं रुदेण^३ सेविया गउरी ।

दिच्चं वरिससहस्सं पुत्तत्थं तारयभएण ॥ ७९ ॥

यदि देवो ददाति सुतं तर्हि किं रुद्रेण सेविता गौरी ।

दिव्यं वर्षसहस्रं पुत्रार्थं तारकभयेन ॥

तह्मा सयमेव सुओ हवेइ मिहुणाण रइपउत्ताणं ।

अण्णाण मूढलोओ वाहिज्जइ धूत्तमणुएहिं ॥ ८० ॥

तस्मात्स्वयमेव सुतो भवेत् मिथुनानां रतिप्रवृत्तानां ।

अज्ञानो मूढलोको बाध्यते धूर्तमनुष्यैः ॥

संते आउसि जीवइ मरणं गलियम्मि णत्थि संदेहो ।

ण व रक्खइ को वि तर्हि संतं^४ सोसेइ ण हु कोई ॥ ८१ ॥

सति आयुपि जीवति मरणं गलिते नास्ति सन्देहः ।

न च रक्षति कोऽपि तस्मात् सत् शोषयति न हि कश्चित् ॥

जइ सव्वदेवयाओ मणुयं रक्खंति पुज्जियाओ य ।
तो किं सो दहवयणो ण रक्खिओ विज्जसहस्सेण^{३-४} ॥ ८२ ॥

यदि सर्वदेवता मनुजं रक्षयन्ति पूजिताश्च ।

तर्हि किं स दशवदनो न रक्षितो विद्यासहस्रेण ॥

इय णाउं परमप्पा अट्टारसदोसवज्जिओ देवो ।

पणविज्जइ भत्तीए जह लब्भइ इच्छियं वत्थुं ॥ ८३ ॥

इति ज्ञात्वा परमात्मानं अष्टादशदोषवर्जितो देवः ।

प्रणम्यते भक्त्या येन लभ्यते इच्छितं वस्तु ॥

वेणइयं मिच्छत्तं कहियं भव्वाण वज्जणट्टं तु ।

एत्तो उइट्टं वोच्छं मिच्छत्तं संसय णाम ॥ ८४ ॥

वैनायिकं मिध्यात्वं कथितं भव्यानां वर्जनार्थं तु ।

इत ऊर्ध्वं वक्ष्ये मिध्यात्वं संशयं नाम ॥

इति वैनायिकमिध्यात्वं तृतीयं ।

१ आओ ख । २ मणुयं ख । ३ हिं ख । ४ अस्मादग्नेऽयं निश्छायः पाठः
ख-पुस्तके । दर्शनसारगाथाः—

सन्वेसु य तित्थेसु य वेणइयाणं समुट्ठभवो अत्थि ।

सजडा मुंडियसीसा सिहिणो णग्गा य केइं य ॥ १ ॥

दुट्ठे गुणवंते वि य समया भत्ती य सव्वदेवाणं ।

णमणं दंडुव्व जणे परिकलियं तेहिं मूढेहिं ॥ २ ॥

सर्वेषु च तीर्थेषु च वैनायिकानां समुद्भवोऽस्ति ।

सजटा मुण्डितशीर्षाः शिखिनो नग्नाः केचित् ॥

दुष्टे गुणवति अपि च समयो भक्तिः सर्वदेवानां ।

नमनं दण्डवत् जने परिकलितं तैर्मूढैः ॥

अत्रैव “ तथा ग्रन्थान्तरे श्लोकत्रयं मतान्तरमाह ” इति लिखित्वा श्लोकत्रयं
लिखितमस्ति, ते च अग्रतनग्रन्थे १६९-१७०-१७१ वर्तन्ते अतो न लिखिता
अत्र । तत्रैव विलोकनीयाः । ज्ञायते, खलु क्षेपकरूपा एते श्लोकाः ।

संसयमिच्छादिद्वी गियमा सो होइ जत्थ संग्गंथो ।
गिग्गंथो वा सिज्झइ कंत्रलगहणेण सेवडओ ॥ ८५ ॥

संशयमिध्यादृष्टिनियमात् स भवति यत्र सग्रन्थः ।

निर्ग्रन्थो वा सिद्धयति कंत्रलप्रहणेन श्वेतपटः ॥

दंडं दुद्धिय चेलं अण्णं सव्वं पि धम्मउवयरणं ।
मण्णइ मोक्खणिमित्तं गंथे लुद्धो समायरइ ॥ ८६ ॥

दण्डं दुग्धिकं चेलं अन्यत्सर्वमपि धर्मोपकरणं ।

मन्यते मोक्षनिमित्तं ग्रन्थे लुब्धः समाचरति ॥

इत्थीगिहत्थवग्गे तस्मि भवे चेव अत्थि णिव्वाणं ।
कवलाहारं च जिणे णिदा तण्हा य संसइओ ॥ ८७ ॥

स्त्रीगृहस्थवर्गे तस्मिन् भवे चैव अस्ति निर्वाणं ।

कवलाहारं च जिने निद्रा तृष्णा च संशयितः ॥

जइ संग्गंथो मुक्खं तित्थयरो किं मुणइ गियरज्जं ।
रयणणिहाणेहि समं किं णिवसइ णिज्जणे रण्णे ॥ ८८ ॥

यदि सग्रन्थो मोक्षः, तीर्थकरः किं मुंचति निजराज्यं ।

रत्ननिधानैः समं, किं निवसति निर्जनेऽरण्ये ॥

रयणणिहाणं छंडइ सो किं गिण्हेइ कंत्रली खंडं ।
दुद्धिय दंडं च पटं गिहत्थजोग्गं पि जं किं पि ॥ ८९ ॥

रत्ननिधानं त्यजति स किं गृह्णाति कंत्रलखण्डं ।

दुग्धिकं दण्डं च पटं गृहस्थयोग्यमपि यत् किमपि ॥

गेहे गेहे भिक्खं पत्तं गहिउण जाइए किं सो ।
किं तस्स रयणविद्वी घरे घरे णिवडिया तत्थ ॥ ९० ॥

गृहे गृहे भिक्षां पात्रं गृहीत्वा याचते किं सः ।

किं तस्य रत्नवृष्टिः गृहे गृहे निपतिता तत्र ॥

ण हु एवं जं उक्तं संशयमिच्छत्तरसियचित्तेण ।

णिगंथमोक्खमग्गो किंचणत्रहिरंतणचएण ॥ ९१ ॥

न हि एवं यदुक्तं संशयमिथ्यात्वरसिकचित्तेन ।

निर्ग्रन्थमोक्षमार्गः किंचनवाह्यान्तस्त्यक्तेन ॥

जइ तँप्पइ उग्गतवं मासे मासे च पारणं कुणइ ।

तह वि ण सिद्धइ इत्थी कुच्छियलिंगस्स दोसेण ॥ ९२ ॥

यदि तप्यते उप्रतपः मासे मासे च पारणं करोति ।

तथापि न सिद्धयति स्त्री कुत्सितलिंगस्य दोषेण ॥

मायापमायपउरा पडिमासं तेसु होइ पक्खलणं ।

णिच्चं जोणिस्साओ दारुणं णत्थि चित्तस्स ॥ ९३ ॥

मायाप्रमादप्रचुराः प्रतिमासं तासु भवति प्रखलनं ।

नित्यं योनिस्त्रावः दाढर्ये ? नास्ति चित्तस्य ॥

सुहमापज्जत्ताणं मणुआणं जोणिणाहिकक्खेसु ।

उप्पत्ती होइ सया अण्णेषु य तणुपएसेसु ॥ ९४ ॥

सूक्ष्मापर्याप्तानां मनुष्याणां योनिनाभिकक्षेपु ।

उत्पत्तिर्भवति सदा अन्येषु च तनुप्रदेशेषु ॥

१ तवेप्पइ क । २ अस्मादग्रे अयं पाठः ख-पुस्तके । उक्तं च पंचसंग्रहटी-
कायां गतिमार्गणायां अपर्याप्ता नराः कदाचिद्भवन्ति कदाचित्तेऽपर्याप्ता नराश्च
संस्मूर्च्छिनस्ते मनुष्या गृह्यन्ते नेतरं, ते च चक्रवर्तिवलदेववासुदेवादीनां स्त्रीणां
कक्षोपस्थान्तरादिदेशेषूत्पद्यन्ते । उक्तं च—

ण हु अत्थि तेण तेसिं इत्थीणं दुविहसंजमोद्धरणं ।
संजमधरणेण विणा ण हु मोक्खो तेण जम्मेण ॥ ९५ ॥

न ह्यस्ति तेन तासां स्त्रीणां द्विविधसंयमधारणं ।
संयमधारणेन विना न हि मोक्षस्तेन जन्मना ॥

अहवा एयं वयणं तेसिं जीवो ण होइ किं जीवो ।
किं णत्थि णाणदंसण उवओगो चेयणा तस्स ॥ ९६ ॥

अथवा एतद्वचनं तासां जीवो न भवति किं जीवः ।
किं नास्ति ज्ञानदर्शनं उपयोगः चेतना तस्य ॥

जइ एवं तो इत्थि धीवरिकल्लालिवेसआईणं ।
सव्वेसिमत्थि जीवो सयलाओ तरिहि सिज्झंति ॥ ९७ ॥

यद्येवं तर्हि स्त्री धीवरीकल्लारिकावेश्यादीनां ।
सर्वासामस्ति जीवो सकलास्तर्हि सिद्धयन्ति ॥

तम्हा इत्थीपज्जय पडुच्च जीवस्स पयडिदोसेण ।
जाओ अभव्वकालो तम्हा तेसिं ण णिव्वाणं ॥ ९८ ॥

तस्मात्स्त्रीपर्यायं प्रतीत्य जीवस्य प्रकृतिदोषेण ।
जातः अभव्यकालः तस्मात्तासां न निर्वाणं ॥

अइउत्तमसंहणणो उत्तमपुरिसो कुलग्गओ संतो ।
मोक्खस्स होइ जुग्गो णिग्गंथो धरियजिणलिंगो ॥ ९९ ॥

चक्री (क्रि) सुहलभृत्कृष्णप्रभृत्युत्कटभूभृता ।

स्कन्धावारसमूहेषु प्रस्रयोच्चारभूमिषु ॥ १ ॥

शुक्रसंघाणकश्लेष्मकर्णदन्तमलेषु च ।

अत्यन्ताशुचिदेहेषु सद्यः सम्मूर्च्छयन्ति ये ॥ २ ॥

भूत्वा घनाङ्गुलासंख्याभागमात्रशरीरकाः ।

आशु नश्यंत्यपर्याप्तास्ते स्युः सम्मूर्च्छिमा नराः ॥ ३ ॥

१ पञ्चायं ख । २ णेण ख । ३ जो ख ।

अत्युत्तमसंहनन उत्तमपुरुषः कुलगतः सन् ।

मोक्षस्य भवति योग्यो निर्ग्रन्थो ऋतजिनलिंगः ॥

गिहलिंगे वटंतो गिहत्यवाचारगहियतियजोओ ।

अट्टरउदारूढो मोक्खं ण लहेइ कुलजो वि ॥ १०० ॥

गृहस्थलिंगे वर्तमानः गृहस्थव्यापारगृहीतत्रियोगः ।

आर्तरौद्रारूढः मोक्षं न लभते कुलजोऽपि ॥

वज्ज्वभंतरगंथे वटंतो इंदियत्थपरिकलिओ ।

जइ वि हु दंसणवंतो तथा वि ण सिज्जेइ तम्मि भवे ॥ १०१ ॥

वाह्याभ्यन्तरग्रन्थे वर्तमानः इन्द्रियार्थपरिकल्पितः ।

यद्यपि हि दर्शनवान् तथापि न सिद्धयति तस्मिन् भवे ॥

जइ गिहवंतो सिज्जेइ अगहियणिगंथलिंगसगंथो ।

तो किं सो तित्थयरो णिस्संगो तवइ एगागी ॥ १०२ ॥

यदि गृहवान् सिद्धयति अगृहीतनिर्ग्रन्थलिंगसग्रन्थः ।

तर्हि किं स तीर्थकरो निःसंगस्तपति एकाकी ॥

केवलभुक्ती अरुहे कहिया जा सेवडेण तर्हि तेण ।

सा णत्थि तस्स पूणं णिहयमणोपरमजोईणं ॥ १०३ ॥

कवलभुक्तिः अर्हति कथिता या श्वेतपटेन तस्मिन् तेन ।

सा नास्ति तस्य नूनं निहतमनःपरमयोगिनः ॥

गुत्तित्तयजुत्तस्स य इंदियवावाररहियचित्तस्स ।

भाविंदियमुक्खस्स य जीवस्स य णिचलं झाणं ॥ १०४ ॥

गुतित्रययुक्तस्य च इन्द्रियव्यापाररहितचित्तस्य ।

भावेन्द्रियमुख्यस्य च जीवस्य निश्चलं ध्यानं ॥

ज्ञाणेण तेण तस्स हु जीवमणस्साणसमरसीयरणं ।
समरसभावेण पुणो संवित्ती होइ गियमेण ॥ १०५ ॥

ध्यानेन तेन तस्य हि जीवमनआणसमरसीकरणं ।

समरसभावेन पुन संवित्तिः भवति नियमेन ॥

संवित्तीए वि तहा तण्हा णिद्दा य छुहा य तस्स णस्संति ।
णट्टेसु तेसु पुरिसो खवयस्सेणिं समारुहइ ॥ १०६ ॥

संवित्तावपि तथा तृष्णा निद्रा क्षुधा च तस्य नश्यन्ति ।

नष्टेषु तेषु पुरुषः क्षपकश्रेणिं समारोहति ॥

खवएसु य आरूढो णिदाईकारणं तु जो मोहो ।
जाइ खयं णिस्सेसो तक्खीणे केवलं णाणं ॥ १०७ ॥

क्षपकेषु च आरूढो निद्रादिकारणं तु यो मोहः ।

याति क्षयं निःशेषं तत्क्षये केवलं ज्ञानं ॥

तं पुण केवलणाणं दसट्टदोसाण हवइ णासम्मि ।
ते दोसा पुण तस्स हु छुहाइया णत्थि केवलिणो ॥१०८॥

तत्पुनः केवलज्ञानं दशाष्टदोषाणां भवति नाशे ।

ते दोषाः पुनस्तस्य हि क्षुधादिका न सन्ति केवलिनः ॥

जइ संति तस्स दोसा केत्तियमित्ता छुहाई जे भणिया ।
ण हवइ सो परमप्पा अणंतविरिओ हु सो अहवा ॥ १०९॥

यदि सन्ति तस्य दोषाः कियन्मात्राः क्षुधादिका ये भणिताः ।

न भवति स परमात्मा अनन्तवीर्यो हि सोऽथवा ॥

णोकम्मकम्महारो कवलाहारो य लेप्पहारो य ।
उज्ज मणो वि य कमसो आहारो छुव्विहो णेओ ॥११०॥

नोर्कर्मकर्माहारौ कवलाहारश्च लेपाहारश्च ।

ओजो मनोऽपि च क्रमशः आहारः पट्टिधो ज्ञेयः ॥

णोकम्मकम्महारो जीवाणं होइ चउगइगयाणं ।

कवलाहारो णरपसु रुक्खेसु य लेप्पमाहारो ॥ १११ ॥

नोर्कर्मकर्माहारौ जीवानां भवतः चतुर्गतिगतानां ।

कवलाहारो नरपशूनां वृक्षेषु च लेपाहारः ॥

पक्खीणुज्जाहारो अंडयमज्जेसु वट्टमाणाणं ।

देवेषु मणाहारो चउच्चिहो णत्थि केवल्लिणो ॥ ११२ ॥

पक्षिणामोज-आहारः अण्डमध्येषु वर्तमानानां ।

देवेषु मन-आहारः चतुर्विधो नास्ति केवल्लिनः ॥

णोकम्मकम्महारो उवयारेण तस्स आयमे भणिओ ।

ण हु णिच्छएण सो वि हु स वीयराओ परो जम्हा ॥ ११३ ॥

नोर्कर्मकर्माहारौ उपचारेण तस्यागमे भणितौ ।

न हि निश्चयेन सो पि हि स वीतरागः परो यस्मात् ॥

जो जेमइ सो सोवइ सुत्तो अण्णे वि विसयमणुहवइ ।

विसए अणुहवमाणो स वीयराओ कहं णाणी ॥ ११४ ॥

यो जेमति स स्वपिति सुत्तो अन्यानपि विषयाननुभवति ।

विषयाननुभवमानः स वीतरागः कथं ज्ञानी ॥

तम्हा कवलाहारो केवल्लिणो णत्थि दोहिं वि णएहिं ।

मण्णंति य आहारं जे ते मिच्छायअणाणी ॥ ११५ ॥

तस्मात्कवलाहारः केवल्लिनो नास्ति द्वाभ्यामपि नयाभ्यां ।

मन्यन्ते चाहारं ये ते मिथ्याज्ञानिनः ॥

अण्णं जं इय उत्तं संसयमिच्छत्तकलियभावेण ।

अम्हंचि थविरकप्पो कंवलगहणेण ण हु दोसो ॥ ११६ ॥

अन्यद्यदित्युक्तं संशयमिध्यात्वकलितभावेन ।

अस्माकं स्थविरकल्पः कम्बलप्रहणेन न हि दोषः ॥

कंवल्लि वत्थं दुद्धिय दंडं कणयं च रयणभंडाइं ।

सग्गग्गमणणिमित्तं मोक्खस्स य होइ णिब्भंतं ॥ ११७ ॥

कम्बलं वस्त्रं दुग्धिकं दण्डं कनकं च रत्नभाण्डादीनि ।

स्वर्गगमननिमित्तं मोक्षस्य च भवति निर्भ्रान्तं ।

ण उं होइ थविरकप्पो गिहत्थकप्पो हवेइ फुडु एसो ।

इय सो^१ धुत्तेहिं कओ थविरकप्पस्स भग्गेहिं ॥ ११८ ॥

न ऊ भवति स्थविरकल्पो गृहस्थकल्पो भवति स्फुटमेषः ।

इति धूर्तेः कृतः स्थविरकल्पस्य भग्नैः ॥

दुविहो जिणेहिं कहिओ जिणकप्पो तह य थविरकप्पो य ।

सो जिणकप्पो उत्तो उत्तमसंहणणधारिस्स ॥ ११९ ॥

द्विविधो जिनैः कथितो जिनकल्पस्तथा च स्थविरकल्पश्च ।

स जिनकल्प उक्त उत्तमसंहननधारिणः ॥

जत्थ ण कंटयभग्गो पाए णयणम्मि रयपविट्टम्मि ।

फेडंति सयं मुणिणो परापहारे य तुण्हक्का ॥ १२० ॥

यत्र न कंटकलग्नं पादे नयनयो रजःप्रविष्टे ।

स्फेटयन्ति स्वयं मुनयः परापहारे च तूष्णीकाः ॥

१ ऊ गर्हाविस्मयसूचनाक्षेपे इत्यनेन आक्षेपे गम्यते । २ सोक्खयरेहि ख
३ कहिओ ख ।

जलवरिसणवा याई गमणे भग्गे य जम्म छम्मासं ।
अच्छंति गिराहारा काओसग्गेण छम्मासं ॥ १२१ ॥

जलवर्षायां जातायां गमने भग्ने च यावत् पण्मासं ।
तिष्ठन्ति निराहाराः कायोत्सर्गेण पण्मासं ॥

एयारसंगधारी एआई धम्मसुकझाणी य ।
चत्तासेसकसाया मोणवई कंदरावासी ॥ १२२ ॥

एकादशांगधारिणः एते धर्म्यशुक्लध्यानिनश्च ।
त्यक्ताशेषकप्रायाः मौनव्रताः कन्दरावासिनः ॥

ब्रह्मिन्तरंगंथचुवा णिण्णेहा णिप्पिहा य जइवइणो ।
जिण इव विहरंति सया ते जिणकप्पे ठिया सवणा ॥ १२३ ॥

ब्राह्मिन्तरग्रन्थच्युता निःस्नेहा निस्पृहाश्च यतिपतयः ।
जिना इव विहरन्ति सदा ते जिनकल्पे स्थिताः श्रमणाः ॥

थविरकप्पो वि कहिओ अणयाराणं जिणेण सो एसो ।
पंचचेलच्चाओ अकिंचणत्तं च पडिलिहणं ॥ १२४ ॥

स्थविरकल्पोऽपि कथितः अनगाराणां जिनेन स एषः ॥
पंचचेलत्यागोऽकिंचनत्वं च प्रतिलेखनं ॥

पंचमहव्वयधरणं ठिदिभोयण एयभत्त करपत्तो ।
भत्तिभरेण य दत्तं काले य अजायणे भिक्खं ॥ १२५ ॥

१ समिया. ख । २ अस्मादग्नेऽयं पाठः ख-पुस्तके ।

अडजवुंडजरोमजचर्मजवल्कजपंचचेलानि ।

परिहृत्य तृणजचेलं यो गृहीयान्न भवेत् स यतिः ॥ १ ॥

रजसेदाणमगहणं मद्दव सुकुमालदा लहुत्तं च ।

जत्थेदे पंचगुणा तं पडिलिहणं पसंसंति ॥ २ ॥

पंचमहाव्रतधारणं स्थितिभोजनं एकभक्तं करपात्रम् ।
 भक्तिभरेण च दत्तं काले च अयाचना भिक्षा ॥
 दुविहतवे उज्जमणं छुविहथावासएहिं अणवरयं ।
 खिदिसयणं सिरलोओ जिणवरपडिरूवपडिगहणं ॥१२६॥
 द्विविधतपसि उद्यमनं षड्धिधावश्यकैः अनवरतं ।
 क्षितिशयनं शिरोल्लेचः जिनवरप्रतिरूपप्रतिग्रहणं ॥
 संहणणस्स गुणेण य दुस्समकालस्स तवपहावेण ।
 पुरणयरगामवासी थविरे कप्पे ठिया जाया ॥ १२७ ॥
 संहननस्य गुणेन च दुःपमाकालस्य तपःप्रभावेन ।
 पुरनगरग्रामवासिनः स्थविरे कल्पे स्थिता जाताः ॥
 उवयरणं तं गहियं जेण ण भंगो हवेइ चरियस्स ।
 गहियं पुत्थयदाणं जोगं जस्स तं तेण ॥ १२८ ॥
 उपकरणं तद्गृहीतं येन न भंगो भवति चर्यायाः ।
 गृहीतं पुस्तकदानं योग्यं यस्य तत्तेन ॥
 समुदाएण विहारो धम्मस्स पहावणं ससत्तीए ।
 भवियाण धम्मसवणं सिस्साण य पालणं गहणं ॥ १२९ ॥
 समुदायेन विहारो धर्मस्य प्रभावनं स्वशक्त्या ।
 भव्यानां धर्मश्रवणं शिष्यानां च पालनं ग्रहणं ॥
 संहणणं अइणिच्चं कालो सो दुस्समो मणो चवलो ।
 तह वि हु धीरा पुरिसा महव्वयभरधरणउच्छहिया ॥१३०॥
 सहननमतिनीचं कालः स दुःपमो मनश्चपलं ।
 तथापि हि धीराः पुरुषा महाव्रतभारधारणोत्साहाः ॥
 वरिससहस्सेण पुरा जं कम्मं हणइ तेण काएण ।
 तं संपइ वरिसेण हु णिज्जरयइ हीणसंहणणे ॥ १३१ ॥

वर्षसहस्रेण पुरा यत्कर्म हन्यते तेन कायेन ।

तत्संप्रति वर्षेण हि निर्जरयति हीनसंहननेन ॥

एवं दुविहो कप्पो परमजिणं देहिं अक्खिओ णूणं ।

अण्णो पासंडिकओ गिहकप्पो गंथपरिकल्लिओ ॥ १३२ ॥

एवं द्विविधः कल्पः परमजिनैः कथितो नूनं ।

अन्यः पाषण्डिकृतो गृहस्थकल्पो ग्रन्थपरिकलितः ॥

दुद्धरतवस्स भग्गा परिसहविसएहिं पीडिया जे^१ य ।

जो गिहकप्पो लोए स थविकरकप्पो कओ तेहिं ॥ १३३ ॥

दुर्धरतपसः भग्नाः परीषहविषयैः पीडिता ये च ।

यो गृहकल्पो लोके स स्थविरकल्पः कृतः तैः ॥

णिग्गंथो जिणवसहो णिग्गंथं पवयणं कयं तेण ।

तस्साणुमगगलग्गा सव्वे णिग्गंथमहरिसिणो ॥ १३४ ॥

निर्ग्रन्थो जिनवृषभो निर्ग्रन्थं प्रवचनं कृतं तेन ।

तस्यानुमार्गलग्नाः सर्वे निर्ग्रन्थमहर्षयः ॥

जे पुण भूसियगंथा दूसियणिग्गंथलिंगवयभट्टा ।

तेहिं संगंथं लिंगं पौयडियं तित्थणाहस्स ॥ १३५ ॥

ये पुनर्भूपितग्रन्थाः दूषितनिर्ग्रन्थलिंगव्रतभ्रष्टाः ।

तैः सग्रन्थं लिंगं प्रकटितं तीर्थनाथस्य ॥

जं जं सैयमायरियं तं तं णिरुआयमेण अलिएण ।

लोए वक्खाणित्ता अण्णाणी वंचिआ तेहिं^{५-६} ॥ १३६ ॥

१ जेहिं ख । २ प ख । ३ समय क । ४ ओ क । ५ ण ख । ६ अस्मादग्रे इदं गाथासूत्रमुपलभ्यते—

णिग्गंथं दूसित्ता निंदित्ता अप्पणं पसंसित्ता ।

जीवेइ मूढलोए कयमायं गहियवहुदब्बेहिं ॥ १ ॥

तत्तु अस्मिन् ग्रन्थे १५४ गाथासूत्रादग्रेऽस्ति, ख-पुस्तके तु पुनरपि ।

यत् यत् स्वयमाचरितं तत्तत् निरागमेनालीकेन ।

लोके व्याख्याय अज्ञानिनो वंचितास्तै ॥

छत्तीसे वरिससए विक्रमरायस्स मरणपत्तस्स ।

सौरट्टे उप्पण्णो सेवडसंघो हु वलहीए ॥ १३७ ॥

पट्त्रिंशति वर्षशते विक्रमराजस्य मरणप्राप्तस्य ।

सौराष्ट्रे उत्पन्नः श्वेतपटसंघो हि बलुभीके ॥

आसि उज्जेणिणयरे आयरिओ भद्रवाहु णामेण ।

जाणिय सुणिमित्तधरो भणिओ संघो णिओ तेण ॥ १३८ ॥

आसीदुज्जयिनीनगरे आचार्यः भद्रवाहुः नाम्ना ।

ज्ञात्वा सुनिमित्तधरः भणितः संघो निजस्तेन ॥

होहइ इह दुब्भिक्खं वारहवरसाणि जाम पुण्णाणि ।

देसंतराइं गच्छह णियणियसंघेण संजुत्ता ॥ १३९ ॥

भविष्यतीह दुर्भिक्षं द्वादशवर्षाणि यावत्पूर्णाणि ।

देशान्तराणि गच्छत निजनिजसंघेन संयुक्ताः ॥

सोऊण इमं वयणं णाणादेसेहिं गणहरा सव्वे ।

णियणियसंघपउत्ता विहरीआ जत्थ सुब्भिक्खं ॥ १४० ॥

श्रुत्वेदं वचनं नानादेशे गणधराः सर्वे ।

निजनिजसंघप्रयुक्ता विहता यत्र सुभिक्षं ॥

एक्कं पुण संतिणामो संपत्तो वलहिणामणयरीए ।

बहुसीससंपउत्तो विसए सौरट्टए रम्मे ॥ १४१ ॥

एकः पुनः शान्तिनामा संप्रातः बलुभीनामनगर्याम् ।

बहुशिष्यसंप्रयुक्तः विषये सौराष्ट्रे रम्ये ॥

देशावधिः परमावधिः सर्वावधिः अवधिः भवति त्रिभेदः ।

भवगुणकारणभूतः ज्ञातव्यो भवति नियमेन ॥

मणपज्जवं च दुविहं रिउविउलमई तहेव णायव्वं ।

केवलणाणं एकं सव्वत्थ पयासयं णिच्चं ॥ २९३ ॥

मनःपर्ययश्च द्विविधः ऋजुविपुलमती तथैव ज्ञातव्यः ।

केवलज्ञानं एकं सर्वत्र प्रकाशकं नित्यं ॥

एसो अट्टपयारो णाणुवओगो हु होइ सायारो ।

चक्खु अचक्खू ओही केवलसहिओ अणायारो ॥ २९४ ॥

एषोऽष्टप्रकारो ज्ञानोपयोगो हि भवति साकारः ।

चक्षुरचक्षुरवधिः केवलसहितोऽनाकारः ॥

जम्मि भवे जं देहं तम्मि भवे तप्पमाणओ अप्पा ।

संहारवित्थरगुणो केवलणाणीहि उद्धिट्ठो ॥ २९५ ॥

यस्मिन् भवे यो देहः तस्मिन् भवे तत्प्रमाण आत्मा ।

संहारविस्तारगुणः केवलज्ञानिभिः उद्धितः ॥

जो कत्ता सो भुत्ता व्यवहारगुणेण होइ कम्मस्स ।

ण हु णिच्छएण भणिओ कत्ता भोत्ता य कम्माणं ॥ २९६ ॥

यः कर्ता स भोक्ता व्यवहारगुणेन भवति कर्मणः ।

न तु निश्चयेन भणितः कर्ता भोक्ता च कर्मणां ॥

कम्ममलच्छाडो वि य ण मुयइ सो चेयणगुणं किं पि ।

जोणीलक्खवगओ वि य जट्ट कणयं कदमे मितं ॥ २९७ ॥

कर्ममलच्छादितोऽपि च न जानाति चेतनगुणं किमपि ।

योनिच्छन्नतोऽपि च यथा कनकं कर्दमे क्षिप्यं ॥

सुहृमो अमृत्तिवंतो वर्णरंगंधाङ्गान्यपरिहीणो ।

पुगलमज्झिगओ वि य ण य मिल्लइ णिययसव्भावं ॥२९८॥

सूक्ष्मोऽमूर्तिमान् वर्णगन्धादिस्पर्शपरिहीनः ।

पुद्गलमध्यगतोऽपि च न च मुञ्चति निजकस्वभावं ॥

सव्भावेणुट्टुगई विदिसं परिहरिय गइउक्केण ।

गच्छेइ कम्मजुत्तो सुट्ठो पुण रिजुगई जाई ॥ २९९ ॥

स्वभावेनोर्ध्वगतिः विदिशां परिहृत्य गतिचतुष्केन ।

गच्छति कर्मयुक्तः शुद्धः पुनः ऋजुगतिं याति ॥

पाणिविमुक्ता लंगलि वंकरई होइ तह य पुण तइया ।

कम्मइयकायजुत्तो दो तिण्णि य कुणइ वंकाइं ॥ ३०० ॥

पाणिविमुक्ता लंगलिका वक्रगतिः भवति तथा च पुनः तृतीया ।

कार्मणकाययुक्तः द्वित्रीणि करोति वक्राणि ॥

तइए समाए गिण्हइ चिरकयकम्मोदएण नो देहं ।

सुरणरणारइयाणं तिरियाणं चैव लेम्मवमो ॥ ३०१ ॥

तृतीये समये गृह्णाति चिरकृतकर्मोदयेन न देहं ।

सुरनरनारकाणां तिरिधां चैव लेम्मवमोः ॥

सुहृदुवसं भुंजंतो हिंइ जीणीसु मयमहम्मेषु ।

एइंदियवियलिंदियमयलिंदियपज्जपज्जत्तो ॥ ३०२ ॥

१ सुहृदिवपसाई ख. । २ म. ख. । ३ सव्भावेणुट्टुगई ख. । स्वभावभवे
नोर्ध्वगतिः । ४ लिखो ख. ।

तत्थ वि गयस्स जायं दुब्भक्खं दारुणं महाघोरं ।
जत्थ वियारिय उयरं खद्धो रंकेहि कूरुंत्ति ॥ १४२ ॥

तत्रापि गतस्य जातं दुर्भिक्षं दारुणं महाघोरं ।

यत्र त्रिदार्योदरं भक्षितः रंकैः क्रूर इति ॥

तं लहिऊण णिमित्तं गहियं सव्वेहि कंवली दंडं ।

दुद्धियपत्तं च तहा पावरणं सेयवत्थं च ॥ १४३ ॥

तल्लब्ध्वा निमित्तं गृहीतं सर्वैः कम्बलं दण्डं ।

दुग्धिकपात्रं च तथा प्रावरणं श्वेतवस्त्रं च ॥

चत्तं रिसिआयरणं गहिया भिक्खा य दीणवित्तीए ।

उवविसिय जाइऊणं भुत्तं वसहीसु इच्छाए ॥ १४४ ॥

त्यक्तं ऋष्याचरणं गृहीता भिक्षा च दीनवृत्या ।

उपविश्य याचयित्वा भुक्तं वसतिष्विच्छया ॥

एवं वट्टंताणं कित्तियकालम्मि चावि परियल्लिए ।

संजायं सुब्भक्खं जंपइ ता संतिआइरिओ ॥ १४५ ॥

एवं वर्तमानानां कियत्काले चापि परिचलिते ।

संजातं सुभिक्षं जल्पति तान् शान्त्याचार्यः ॥

आवाहिऊण संघं भणियं छंडेह कुत्थियायरणं ।

णिंदिय गरहिय गिण्हह पुणरवि चरियं मुणिंदाणं ॥ १४६ ॥

आहूय संघं भणितं त्यजत कुत्सिताचरणं ।

निंदत गर्हत गृह्णत पुनरपि चारित्रं मुनीन्द्राणां ॥

तं वयणं सोऊणं उत्तं सीसेण तत्थ पढंमेण ।

को सक्कइ धारेउं एयं अइदुद्धरायरणं ॥ १४७ ॥

तद्वचनं श्रुत्वा उक्तं शिष्येन तत्र प्रथमेन ।

कः शक्नोति धर्तुं एतदतिदुर्धराचरणं ॥

उपवासो य अलाभे अण्णे दुसहाइं अंतरायाइं ।

एककटाणमचेलं अज्जायण वंभचेरं च ॥ १४८ ॥

उपवासं चालाभे अन्यानि दुःसहानि अन्तरायाणि ।

एकस्थानमचेलं अयाचनं ब्रह्मचर्यं च ॥

भूमीसयणं लोचो वेवेमासेहिं असहणिज्जो हु ।

वावीसपरीसयाइं असहणिज्जाइं णिच्चं पि ॥ १४९ ॥

भूमिशयनं लोचो द्विद्विमासेन असहनीयो हि ।

द्वाविंशतिपरीषहा असहनीया, नित्यमपि ॥

जं पुण संपद्द गहियं एयं अम्हेहि किं पि आयरणं ।

इह लोए सुक्खयरं ण छंडिमो हु दुस्समे काले ॥ १५० ॥

यत्पुनः सम्प्रति गृहीतं एतत् अस्माभिः किमप्याचरणं ।

इह लोके सुखकरं न त्यजामो हि दुःपमे काले ॥

ता संतिणा पउत्तं चरियपभट्टेहिं जीवियं लोए ।

एयं ण हु सुंदरयं दूसणयं जइणमग्गस्स ॥ १५१ ॥

तावत् शान्तिना प्रोक्तं चारित्रभ्रष्टानां जीवितं लोके ।

एतन्न हि सुन्दरं दूषणकं जैनमार्गस्य ॥

णिग्गंथं पच्चयणं जिणवरणाहेण अक्खियं परमं ।

तं छंडिउण अण्णं पवत्तमाणेण मिच्छत्तं ॥ १५२ ॥

निर्ग्रन्थं प्रवचनं जिनवरनाथेन कथितं परमं ।

तत् त्यक्त्वा अन्यत्प्रवर्तमानेन निध्यात्वं ॥

ता रूसिऊण पहओ सीसे सीसेण दीहदंडेण ।

थविरो घाएण मुओ जाओ सो वितरो देवो ॥ १५३ ॥

तावत् रुषित्वा प्रहतः शिरसि शिष्येण दीर्घदण्डेन ।

स्थविरो घातेन मृतः जातः स व्यन्तरो देवः ॥

इयरो संघाहिवई पयडिय पासंड सेवडो जाओ ।

अक्खइ लोए धम्मं सग्गंथे अत्थि णिव्वाणं ॥ १५४ ॥

इतरः संघाधिपतिः प्रकथ्य पाषंडं श्वेतपटो जातः ।

कथयति लोके धर्मं सग्रन्थेऽस्ति निर्वाणं ॥

सत्थाइं विरइयाइं णियणियपासंडगहियसरिसाइं ।

वक्खाणिऊण लोए पवित्तिओ तारिसायरणो ॥ १५५ ॥

शास्त्राणि विरचितानि निजनिजपापण्डगृहीतसदृशानि ।

व्याख्याय लोके प्रवर्तितं तादृशाचरणं ॥

णिग्गंथं दूसित्ता णिंदित्ता अप्पणं पसंसित्ता ।

जीवेइ मूढलोए कयमायं गहिय बहुदव्वं^१ ॥ १५६ ॥

निर्ग्रन्थं दूषयित्वा निन्दित्वा आत्मानं प्रशस्य ।

जीवति मूढलोके कृतमायं गृहीत्वा बहुद्रव्यं ॥

१ गहियं बहुं दव्वं. क । २ अस्मादग्रेऽयं पाठः । दर्शनसाराद्वाक्यैका—

अण्णं च एवमाई आयमदुट्ठाइं मिच्छसत्थाइं ।

विरइत्ता अप्पाणं परिठवियं पढमए णरए ॥ १ ॥

अन्यच्च एवमादीनि आगमदुष्टानि मिथ्याशास्त्राणि ।

विरच्यात्मानं प्रस्थापितं प्रथमे नरके ॥

इयरो वितरदेवो संती लग्गो उवद्दवं काउं ।

जंपइ मा मिच्छत्तं गच्छहं लहिऊण जिणधम्मं ॥ १५७ ॥

इतरो व्यन्तरदेवः शान्तिः लग्नः उपद्रवं कर्तुं ।

जल्पति मा मिथ्यात्वं गच्छत लब्ध्वा जिनधर्मं ॥

भीएहिं तस्स पुआ अट्टविहा सयलद्व्वसंपुंणा ।

जा जिणचंदे रइया सा अज्ज वि दिण्णिया तस्स ॥१५८॥

भीतेन तस्य पूजा अष्टविधा सकलद्रव्यसम्पूर्णा ।

या जिनचंद्रेण रचिता सा अद्यापि दीयते तस्मै ॥

अज्ज वि सा वलिपूया पढमयरं दिंति तस्स णामेण ।

सो कुलदेवो उत्तो सेवडसंघस्स पुज्जो सी ॥ १५९ ॥

अद्यापि सा वलिपूजा प्रथमतरं दीयते तस्य नाम्ना ।

स कुलदेव उक्तः श्वेतपटसंघस्य पूज्यः सः ॥

इय उप्पत्ती कहिया सेवडयाणं च मग्गभट्टाणं ।

एत्तो उडुं वोच्छं णिसुणह अण्णाणमिच्छत्तं ॥ १६० ॥

एषा उत्पत्तिः कथिता श्वेतपटानां च मार्गभ्रष्टानां ।

इत ऊर्ध्वं वक्ष्ये निःशृणुत अज्ञानमिथ्यात्वं ॥

इति संशयमिथ्यात्वं चतुर्थं ।

१ हं क । २ प ख । ३ अस्माद्भाषासूत्रादग्रेऽयं पाठः ।

णग्गो हरु अरहंतो रत्तो बुद्धो पियंदरो कण्हो ।

कच्छोटियाण वंभो को देवो कंवल्लवरणो ॥ १ ॥

रूपेण येन शिवमङ्गिणः प्रयाति

तद्रूपमेव मनुजैः परिपूज्यतेऽत्र ।

सिद्धिर्यदि प्रभवतीह नितश्चिनीनां

तद्रूपिणः कथममी न जिना भवन्ति ॥ २ ॥

मसयरपूरणरिसिणो उप्पणो पासणाहत्तित्थम्मि ।

सिरिवीरसमवसरणे अगहियञ्जुणिणा गियत्तेण ॥ १६१ ॥

मस्करिपूरणक्कपिरुत्पन्नः पार्श्वनाथर्तार्थे ।

श्रीवीरसमवसरणे अगृहीतध्वनिना निर्वृत्तेन ॥

वहिणिग्गएण उत्तं मज्झं एयारसंगधारिस्स ।

णिग्गइ ङुणी ण अरुहो विणिग्गैया सा ससीसस्स ॥ १६२ ॥

वहिर्निर्गतेन उक्तं मह्यं एकादशांगधारिणे ।

निर्गच्छति ध्वनिं न अर्हन् विनिर्गता सा स्वशिष्याय ॥

ण मुणइ जिणकहियसुयं संपइ दिक्खा य गहिय गीयमओ ।

विप्पो वेयव्भासी तम्हा मोक्खं ण णाणाओ ॥ १६३ ॥

न जानाति जिनकथितं श्रुतं संप्रति दीक्षां च गृहीतः गौतमः ।

विप्रो वेदभाषी तस्मान्मोक्षो न ज्ञानतः ॥

अण्णाणाओ मोक्खं एवं लोयाण पयडमाणो हु ।

देवो ण अत्थि कोई सुणं झाएहं इच्छाए ॥ १६४ ॥

अज्ञानतो मोक्ष एवं लोकान् प्रकटमानो हि ।

देवो नास्ति कश्चिच्छून्यं ध्यायत इच्छया ॥

एवं पंचवैयारं मिच्छत्तं सुग्गईणिवारणयं ।

दुक्खसहस्सावासं परिहरियव्वं पयत्तेण ॥ १६५ ॥

एवं पंचप्रकारं मिथ्यात्वं सुगतिनिवारणकं ।

दुःखसहस्रावासं परिहर्तव्यं प्रयत्नेन ॥

मिच्छत्तेणाच्छणो अणाइकालं चउग्गईभुवणे ।

भमिओ दुक्खकंतो जीवो देहाइं गिण्हंतो ॥ १६६ ॥

मिथ्यात्वेनाच्छन्नोऽनादिकालं चतुर्गतिभुवने ।

भ्रमितो दुःखाक्रान्तो जीवो देहान् गृह्णन् ॥

एइंदियाइंपहुइ जावय पंचक्खविविहजोणीसु ।

भमिहइ भविस्सयाले पुणरवि मिच्छत्तपच्छइओ ॥१६७॥

एकेन्द्रियप्रभृतिषु यावत्पंचाक्षविविधयोनिषु ।

भ्रमिष्यति भविष्यत्काले पुनरपि मिथ्यात्वप्रच्छादितः ॥

अट्टरउद्दारूढो विसमे काऊण विविहपावाइं ।

अवियाणंतो धम्मं उप्पज्जइ तिरियणरएसु ॥ १६८ ॥

आर्तिरौद्रारूढो विषमानि कृत्वा विवधपापानि ।

अजानानः धर्मं उत्पद्यते तिर्यङ्करकेषु ॥

अहवा जह कहव पुणो पावइ मणुयत्तणं च संसारे ।

जुअंसमिला संजोए लहइ णःदेसो कुलं आऊ ॥ १६९ ॥

अथवा यथा कथमपि पुनः प्राप्नोति मनुष्यत्वं च संसारे ।

.....संयोगे लभते न देशं कुलं आयुः ॥

पउरं आरोयत्तं इंदियपुण्णत्तणं च जोव्वणियं ।

सुंदररूवं लच्छी अच्छइ दुक्खेण तप्पंतो ॥ १७०॥

प्रचुरमारोग्यत्वं इन्द्रियपूर्णत्वं च यौवनं ।

सुन्दररूपं लक्ष्मीं अर्धयते दुःखेन तप्यमानः ॥

जइ कह वि हु एयाइं पावइ सव्वाइं तो ण पावेई ।

धम्मं जिणेण कहियं कुच्छियगुरुमगलग्गाओ ॥ १७१ ॥

यदि कथमपि हि एतानि प्राप्नोति सर्वाणि तर्हि न प्राप्नोति ।

धर्मं जिनेन कथितं कुत्सितगुरुमार्गलग्नः ॥

इत्यज्ञानमिथ्यात्वं पंचमम् ।

कउलायरिओ अक्खइ अत्थि ण जीवो हु कस्स तं पावं ।
पुण्णं वा कस्स भवे को गच्छइ णरयसग्गं वा ॥ १७२ ॥

कौलाचार्यः कथयति अस्ति न जीवो हि कस्य तत्पापं ।
पुण्यं वा कस्य भवेत् को गच्छति नरकस्वर्गं वा ॥

जह गुडधादइजोए पिठरे जाएइ मज्जिरासत्ती ।
तह पंचभूयजोए चैयणसत्ती समुब्भवइ ॥ १७३ ॥

यथा गुडधातकीयोगे पिठरे जायते मदिराशक्तिः ।
तथा पंचभूतयोगे चेतनाशक्तिः समुद्भवति ॥

गब्भाईमरणंतं जीवो अत्थित्ति तं पुणो मरणं ।
पंचभूयाणणासे पच्छा जीवत्तणं णत्थि ॥ १७४ ॥

गर्भादिमरणान्तं जीवोऽस्तीति तस्य पुनः मरणं ।
पंचभूतानां नाशे पश्चाज्जीवत्वं नास्ति ॥

उक्तं च—

देहात्मिका देहकार्या देहस्य च गुणो मतिः ।
मतत्रयमिहाश्रित्य जीवाभावो विधीयते ॥ १ ॥

तम्हा इंदियसुक्खं भुंजिज्जइ अप्पणाइं इच्छाए ।
ख्खइ पिज्जइ मज्जं मांसं सेविज्जइ परमहिलाए ॥ १७५ ॥

तस्मादिन्द्रियसौख्यं भुज्यतां आत्मन इच्छया ।
खाद्यतां पीयतां मद्यं मांसं सेव्यतां परमहिदाः ॥

जो इंदियाइं दंडइ विसया परिहरइ खवइ गियदेहं ।
सो अप्पाणं वंचइ गहिओ भूएहिं दुब्बुद्धी ॥ १७६ ॥

१ अस्मादग्नेऽयं पाठोऽपि ख-पुस्तके । अथ वाक्यं—कालान्तरे भवान्तरे
खरशकादव्वेसराणां शून्याभावस्तथा जीवो नास्ति तस्मादुप्यपापाभावः ।

य इन्द्रियाणि दण्डयति विषयान् परिहरति क्षपयति निजदेहं ।
स आत्मानं वञ्चयति गृहीतो भूतैः दुर्बुद्धिः ॥

उक्तं च—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेद्दुःखं कृत्वा घृतं पिवेत् ।
भस्मीभूतस्य कायस्य पुनरागमनं कुतः ॥ १ ॥

इति चार्वाकमिथ्यात्वम् ।

संखो पुणु मणइ इयं जीवो अत्थित्ति किरियपरिहीणो ।
देहम्मि णिवसमाणो ण लिप्पए पुण्णपावेहिं ॥ १७७ ॥

सांख्यः पुनः भणति एवं जीवोऽस्तीति क्रियापरिहीनः ।

देहे निवसमानो न लिप्यते पुण्यपापैः ॥

छिज्जइ भिज्जइ पयडी पयडी परिभमइ दीहसंसारे ।
पयडी करेइ कम्मं पयडी भुंजेइ सुहदुक्खं ॥ १७८ ॥

छिद्यते भिद्यते प्रकृतिः प्रकृतिः परिभ्रमति दीर्घसंसारे ।

प्रकृतिः करोति कर्म प्रकृतिः भुनक्ति सुखदुःखं ॥

जीवो सया अकत्ता भुत्ता ण हु होइ पुण्णपावस्स ।
इय पयडिऊण लोए गहिया वहिणी सधूया वि ॥ १७९ ॥

जीवः सदा अकर्ता, भोक्ता न हि भवति पुण्यपापस्य ।

इति प्रकृत्य लोके गृहीता भगिनी स्वमुतापि ॥

एए विसयासत्ता कग्गुम्मत्तां य जीवदयरहिया ।
परतियधणहरणरया अगहियधम्मा दुरायारा ॥ १८० ॥

एते विपयासक्ताः कडुमत्ताश्च जीवदयारहिताः ।

परत्रियधनहरणरता अगृहीतधर्मा दुराचाराः ॥

ण मुणंति सयं धम्मं अमुणियतच्चत्थयारपब्भट्ठा ।

पउरकसाया माई कह अण्णेसिं फुडं विंति ॥ १८१ ॥

न जानन्ति स्वयं धर्मं अमुनिततत्वार्थाचारप्रभृष्टाः

प्रचुरकषाया मायाविनः कथं अन्यान् स्फुटं ब्रुवन्ति ॥

रंडा मुंडा थंडी सुंडी दिक्खिदा धम्मदारा

सीसे कंता कामासत्ता कामिया सा वियारो ।

मज्जं मंसं मिट्ठं भक्खं भक्खियं जीवसोक्खं च ।

कउले धम्मे विसये रम्मे तं जि हो सग्गमोक्खं ॥१८२॥

रंडा मुण्डा स्थण्डी शौंडी दीक्षिता धर्मदाराः

शिष्या कान्ता कामासक्ता कामिता सा विकारा ।

मयं मासं मिट्ठं भक्ष्यं भक्षितं जीवसुखं च ।

कपिले धर्मे विपये रम्ये तेनैव भवतः ? स्वर्गमोक्षौ ॥

रत्तामत्ता कंतासत्ता दूसियाधम्ममग्गा

दुट्ठा कट्ठा धिट्ठा झुट्ठा णिदिजोमोक्खमग्गा ।

अक्खे सुक्खे अग्गे दुक्खे णिब्भरं दिण्णचित्ता

णेरइयाणं दुक्खट्ठाणं तस्स मिस्सा पउत्ता ॥ १८३ ॥

रक्तमत्ताः कान्तासक्ता दूषितधर्ममार्गाः

दुष्टा कष्टा धृष्टा अनृतवादिनः निन्दितमोक्षमार्गाः ।

१ चंडी ख । २ वियरो. क । ३ जीहसुखं. ख । ४ जिहो मोक्षमोक्षं.
ख । ५ कामा ख । ६ ट्ट क । ७ या ख ।

आक्षे सुखे अग्रे दुःखे निर्भ्रान्तं दत्तचित्ताः

नारकाणां दुःखस्थानं तस्य शिष्याः प्रोक्ताः ॥

मज्जे धम्मो मंसे धम्मो जीवहिंसाइं धम्मो ।

राई देवो दोसी देवो माया सुण्णं पि देवो

रत्तामत्ता कंतासत्ता जे गुरु ते वि य पुज्जा

हाहा कटं णट्टो लोओ अट्टमट्टं कुणंतो ॥ १८४ ॥

मध्ये धर्मो मांसे धर्मो जीवहिंसायां धर्मः ।

रागी देवो दोषी देवो माया शून्यमपि देवः ।

रक्तमत्ताः कान्तासक्ता ये गुरवस्तेऽपि च पूज्याः

हाहा कटं नष्टो लोकः अट्टमट्टं कुर्वन् ॥

धूयमायरिवहिणि अण्णावि पुत्तत्थिणि ।

आयति य वासवयणुपयडे वि विप्पें ।

जह रगियकामाउरेण वेयगव्वे उप्पण्णदप्पें ॥

वंभणि-छिंपिणि-डोंवि-नडिय-वरुडि-रज्जइ-चम्मारि ।

कवले समइ समागंमइ तह भुत्ति य परणारि ॥ १८५ ॥

दुहितामातृभगिन्य अन्या अपि पुत्रार्थिनी ।

आयाति च व्यासवचनं प्रकटयति विप्रेण ।

यथा रमिता कामातुरेण वेदगर्वेणोत्पन्नदर्पेण ॥

ब्राह्मणी-डोम्भी-नटी-वरुटी-रजकी-चर्मकारी ।

कपिले समये समागच्छन्ती तथा भुक्ता च परनारी ॥

१ रो. ख । २ पु. ख । ३ ला. क । ४ ण्ण. क । ५ समागइ य । ६ य.
क । ७ अस्मादाग्रेऽयं श्लोको वर्तते ।

स्वयमेवागतां नारीं यो न कामयते नरः ।

ब्रह्महत्या भवेत्तस्य पूर्वब्रह्माग्रवीद्विदम् ॥ ६ ॥

अण्णाणधम्मलम्भो जीवो दुक्खाण पूरिओ होइ ।
 चउगइ गईहिं णिवडइ संसारे भमिहि हिंडंतो ॥ १८६ ॥
 अज्ञानधर्मलम्भो जीवो दुःखानां पूरितो भवति ।
 चतुर्गतौ गतिभिः निपतति संसारे भ्रमति हिण्डन् ॥
 जह पाहाणतरंडे लम्भो पुरिसो हु तीरणीतोए ।
 बुडुइ विगयाधारो णिवडेइ महण्णवावत्ते ॥ १८७ ॥
 यथा पापाणतरण्डे लग्नः पुरुषो हि तीरणीतोये ।
 ब्रुडति विगताधारः निपतति महार्णवावर्ते ॥
 कुच्छियगुरुकयसेवा विविहावइपउरदुक्खआवत्ते ।
 तह य णिमज्जइ पुरिसो संसारमहोवही भीमे ॥ १८८ ॥
 कुत्सितगुरुकृतसेवा विविधातिप्रचुरदुःखावर्ते ।
 तथा च निमज्जति पुरुषः संसारमहोदधौ भीमे ॥
 वयभटकुंठरुद्देहिं णिट्टुरणिक्किट्टदुट्टचिट्टेहिं ।
 अप्पाणं णासित्ता अण्णो वि य णासिओ लोगो ॥ १८९ ॥
 व्रतभ्रष्टकुंठरुद्रैः निष्ठुरनिकृष्टदुष्टचेष्टैः ।
 आत्मानं नाशयित्वा अन्योऽपि च नाशितो लोकः ॥
 इय अण्णाणी पुरिसा कुच्छियगुरुकहियमग्गसंलग्गा ।
 पावंति णरयतिरयं णाणादुहसंकडं भीमं ॥ १९० ॥
 इति अज्ञानिनः पुरुषाः कुत्सितगुरुकथितमार्गसंलग्नाः ।
 प्राप्नुवति नरकतिर्यंचं नानादुःखसंकटं भीमं ॥
 एवं णाऊण फुडं सेविज्जइ उत्तमो गुरू कोई ।
 वहिरंतरंगंश्चुओ तिरियणवंतो सुणाणी य ॥ १९१ ॥

एवं ज्ञात्वा स्फुटं सेव्यते उत्तमो गुरुः कश्चित् ।

वाद्यान्तर्ग्रन्थच्युतः तरणवान् सुज्ञानी च ॥

जहजायलिंगधारी विसयविरक्तो य णिहयसकसाओ ।

पालियदिढवंभवओ सो पावइ उत्तमं सोक्खं ॥ १९२ ॥

यथाजातलिंगधारी विषयविरक्तश्च निहतस्वक्रपायः ।

पालितदृढब्रह्मव्रतः स प्राप्नोति उत्तमं सौख्यं ॥

तं कहियधम्मि लग्गा पुरिसा डहिउण सकयपावाइं ।

पावंति मोक्खसोक्खं केई विलसंति सग्गेसु ॥ १९३ ॥

तेन कथितधर्मे लग्नाः पुरुषा दग्ध्वा स्वकृतपापानि ।

प्राप्नुवन्ति मोक्षसौख्यं केचित् विलसन्ति स्वर्गेषु ॥

एवं मिच्छादिद्वीठाणं कहियं मया समासेण ।

एत्तो उडुं वोच्छं विदियं पुण सासनं णामं ॥ १९४ ॥

एवं मिथ्यादृष्टिस्थानं कथितं मया समासेन ।

इत् ऊर्ध्वं वक्ष्ये द्वितीयं पुनः सासादनं नाम ॥

मिच्छतं—इति मिथ्यात्वगुणस्थानम् ।

एयदरस्स उदए अणंतवंधिस्स संपरायस्स ।

समयाइच्छावलित्ति य एसो कालो समुद्धिट्ठो ॥ १९५ ॥

एकतरस्योदयेऽनन्तानुबन्धिनः सान्परायस्य ।

समयादिप्रज्ञावलीति च एषः कालः समुद्धिष्टः ॥

एयंम्मि गुणट्टाणे कालो णत्थित्ति तित्तिओ जम्हा ।

तम्हा वित्थारो ण हि संखेओ तेण म्मो उत्तो ॥ १९६ ॥

१ नायं पाठः उभय पुस्तके । २ एयदरस्सु उदएणव-ख. । ३ ख-पुस्तके १९६ गाथाया स्थाने १९७ गाथा, अस्याः स्थाने १९६ गा. । ४ इह ख ।

एतस्मिन् गुणस्थाने कालो नास्ति तावन्मात्रः यस्मात् ।

तस्माद्विस्तारो न हि संक्षेपेण तेन स उक्तः ॥

परिणामियभावगयं विदियं सासायणं गुणट्टाणं ।

सम्मत्तसिहरपडियं अपत्तमिच्छत्तभूमितलं ॥ १९७ ॥

पारिणामिकभावगतं द्वितीयं सासादनं गुणस्थानं ।

सम्यक्त्वशिखरपतितं अप्राप्तमिथ्यात्वभूमितलं ॥

सासायणसम्मत्तं—इति सासादनसम्यक्त्वम् ।

सम्मामिच्छद्दण्णं य सम्मिस्रां णाम होइ गुणटाणं ।

सयउत्तममभावगयं अंतरजाइ समुद्धिं ॥ १९८ ॥

सम्यक्त्वमिथ्यात्वोदयेन च संमिश्रं नाम भवति गुणस्थानं ।

अप्युत्तमभावगतं अन्तरजाति समुद्धिः ॥

वडवाण उप्पण्णो स्वरेण जह हवइ इत्थ वेमग्गो ।

तह तं सम्मिस्रगुणं अपट्टियगिट्ठमयलसंजमणं ॥ १९९ ॥

वडवायां उत्पन्नः स्वरेण यथा भवति अत्र वेमरः ।

तथा न तन्मिश्रगुणः अगृहीतगृहीतकल्पयणः ॥

तत्थ ण वंधइ आउं कुणइ ण कालो हु तेण भावेण ।

सम्मं वा मिच्छं वा पडियज्जिय मरइ णियमेण ॥ २०० ॥

तत्र न वधति आयुः करोति न कार्यं हि तेन भावेन ।

सम्यक्त्वं वा मिथ्यात्वं वा प्रतिपद्य भिद्यते नियमेन ॥

अट्टरउदं ज्ञायइ देवा सत्त्वे त्ति हंति णमणीया ।

धम्मता सत्त्वे पवण गुणागुणं किं वि ण विणिगइ ॥ २०१ ॥

आर्तं रौद्रं ध्यायति देवाः सर्वेऽपि भवन्ति नमनीयाः ।

धर्माः सर्वे प्रवरा गुणागुणौ किमपि न विजानाति ॥

अत्थि जिणायमि कहियं वेए कहियं च हरिपुराणे वा ।

सइवागमेण कहियं तच्चं कविलेण कहियं च ॥ २०२ ॥

अस्ति जिनागमे कथितं वेदे कथितं च हरिपुराणे वा ।

शैवागमेन कथितं तत्त्वं कपिलेन कथितं च ॥

वंभो करेइ तिजयं किण्हो पालेइ उयरि छुहिऊणं ।

ख्दो संहरइ पुणो पलयं काऊण णिस्सेसं ॥ २०३ ॥

ब्रह्मा करोति त्रिजगत् कृष्णः पालयति उपरि स्पृशित्वा । ?

रुद्रः संहरति पुनः प्रलयं कृत्वा निःशेषं ॥

जइ वंभो कुणइ जयं तो किं सग्गिदरज्जकज्जेण ।

चइऊण वंभलोयं उग्गतवं तवइ णरलोए ॥ २०४ ॥

यदि ब्रह्मा करोति जगत्तर्हि किं स्वर्गेन्द्रराज्यकार्येण ।

च्युत्वा ब्रह्मशोकं उप्रतपः तप्यते नरलोके ॥

जरउंद्दसेयअंडय सव्वे एयाइं भूयगामाइं ।

णारयणरतिरियसुरा णिवंदियं वणिमुद्दपहुईया ॥ २०५ ॥

जरायुजोद्विस्त्वेदाण्डजान् सर्वान् एतान् भूतग्रामान् ।

नारकनरतिर्यक्सुरान् वंदिनः (?) वणिक्छूद्रप्रभृतीन् ॥

चंडालडूवधीवरवरुडाकट्टालछिंप्पिया चैव ।

हयगयगोमहिसिखरा वग्गकिडीसीहहरिणाइं ॥ २०६ ॥

चाण्डालडोम्बधीवरवरुडकालवारछिंपकांश्चैव ।

हयगजगोनहिर्पाखगन् व्याघ्रकिटिनिहृदरिगान् ॥

गाणाकुलाइं जाई गाणाजोणी य आउविह्वाइं ।

गाणादेहगयाइं वण्णा रूवाइं विविहाइं ॥ २०७ ॥

नानाकुल्यानि जार्ताः नानायोनीश्च आयुविभवादीनि ।

नानादेहगतान् वर्णान् रूपाणि विविधानि ॥

गिरिसरिसायरदीवो गामारामाइं धरणि आयासं ।

जो कुणइ खणद्वेणं चितियमित्तेण सव्वाइं ॥ २०८ ॥

गिरिसरित्सागरद्वीपान् ग्रामारामान् धरणीमाकाशं ।

यः करोति क्षणार्धेन चिन्तितमात्रेण सर्वान् ॥

किं सो रज्जणिमित्तं तवसा तावेइं णिच्च णियदेहं ।

तिहुवणकरणसमत्थो किं ण कुणइ अप्पणो रज्जं ॥ २०९ ॥

किं स राज्ञ्यनिमित्तं तपसा तापयति नित्यं निजदेहं ।

त्रिभुवनकरणसमर्थः किं न करोति आत्मनो राज्ञ्यं ॥

अच्छरतिलोत्तमाए णट्टं दट्टण रायरमरसिओ ।

तवभट्टो चउवयणो जाओ सो मयणवमचित्तो ॥ २१० ॥

अप्सरस्तिलोत्तमाया नृत्यं दृष्ट्वा गगरमरभिकः ।

तपोभ्रष्टः चतुर्वदनः जातः स मदनवशचित्तः ॥

छंडिय णियवट्टुत्तं पट्टुत्तणं देववत्तणं तवोचरियं ।

कामाउरो अलज्जो लग्गो मग्गेण सो तिम्य ॥ २११ ॥

त्यक्त्वा निजवृहत्त्वं प्रभुत्वं देवत्वं तपश्चर्ये ।

कामानुरः अलज्जः लग्नः मार्गेण स तस्याः ॥

हसिओ सुरेहिं कुहो (डो) खरसीमो भग्विउं पउत्तो मां ।

संकरकरखुडियसिगे विरहपलितो णियत्तो य ॥ २१२ ॥

१ गाणाकुलजाइं तदा-ज. । २ भाषायां वयणव उचि लयवत् । ३ पट्टु-
देवत्तणं ख ।

हसितः सुरैः क्रुद्धः खरशीर्षं भक्षितुं प्रवृत्तः सः ।

शंकरकरखंडितशिरः विरहापलितो निवृत्तश्च ॥

पवित्रैवि णिज्जणवणं पिच्छिवि रिच्छी विरहिगओ तत्थ ।

सेवइ कामासत्तो तिलोत्तमा चित्ति धरिऊणं ॥ २१३ ॥

प्रविश्य निर्जनवनं दृष्ट्वा ऋक्षीं विरहगतः तत्र ।

सेवते कामामक्तः तिलोत्तमां चेतसि श्रुत्वा ॥

तस्सुप्पणो पुत्तो जंबुउ णामेण लोयविकग्वाओ ।

रिंछाण पंडं जाओ भिच्चो सो रामएवस्म ॥ २१४ ॥

तस्योत्पन्नः पुत्रो जम्बूः नाम्ना लोकविख्यातः ।

ऋक्षाणां पतिः जातः भृत्यः स रामदेवस्य ॥

जो कुणइ जयमसेसं सो किं एक्का वि तारिसी महिला ।

सक्कइ ण विरइऊणं किं सेवइ णिग्घिणो रिच्छी ॥२१५॥

यः करोति जगदशेषं स किं एकामपि तादृशीं महिलां ।

शक्नोति न विरचितुं किं सेवते निघृणः ऋक्षीं ॥

वस्तुछन्दः ।

जो तिलोत्तम जो तिलोत्तम णियवि णञ्चंति ।

वम्मह सरजरजरिउ चत्तणियमु चउवयणु जायउ ।

वणि णिवसइ परिभट्टतउ रमइ रिच्छि सुरयाण रायउ ॥

सो विरंचि कह संभवइ तयलोयउ कत्तारु ।

जो अप्पा हु ण उत्तरइ फेडउ विरहवियारु ॥ २१६ ॥

यः तिलोत्तमां यः तिलोत्तमां दृष्ट्वा नृत्यन्ती ।

ब्रह्मा स्मरज्जरितः त्यक्तनियमः चतुर्धदनः जातः ।

वने निवसति परिभ्रष्टतपाः रमते ऋक्षीं मुगणां गजा ॥

स विरञ्चिः कथं संभवति त्रिलोकस्य कर्ता ।

य आत्मानं हि न तारयति स्फोटयति विरहविकारं ॥

णत्वि धरा आयासं पवणाणलतोयजोयससिमूरा ।

जइ तो कत्थ ठिदेणं वंभो रइयं तिलोओत्ति ॥ २१७ ॥

न सन्ति धरा आकाशं पवनानलतोयज्योतिःशशिसूर्याः ।

यदि तर्हि कुत्र स्थितेन ब्रह्मणा रचितः त्रिलोक इति ॥

कत्तित्तं पुण दुविहं वत्थुअ कत्तित्त तह य विक्किरियं ।

घडपडगिहाइं पढमं विक्किरियं देवत्रैरइयं ॥ २१८ ॥

कर्तृत्वं पुनः द्विविधं वस्तुनः कर्तृत्वं तथा च वैक्रियिकं ।

घटपटगृहादि प्रथमं वैक्रियिकं देवतारचितं ॥

जइ तो वत्थुवभूओ रइओ लोओ विरिञ्चिणा तिविहो ।

तो तस्म कारणाइं कत्थुवलद्धाइं ढव्वाइं ॥ २१९ ॥

यदि स वस्तुभूतो रचितो लोको विरञ्चिना त्रिविधः ।

तर्हि तस्य कारणानि कुत्र लब्धानि द्रव्याणि ॥

अह विक्किरिओ रइओ विज्जार्थामेण तेण वंभेण ।

कह थाइ दीहकालं अवत्थुभूओ अणिओत्ति ॥ २२० ॥

अथ विक्रियागरचितो विद्यास्थान्ना तेन ब्रह्मणा ।

कथं निष्ठति दीर्घकालं अवस्तुभूतोऽनित्य इति ॥

तम्हा ण होइ कत्ता वंभो मिरइयविनडणं प्रचो ।

छलिओ तिलोत्तमाए सामण्णपुग्गिमुव्व अममन्थो ॥ २२१ ॥

तस्मान्न भवति कर्ता ब्रह्मा शिरइच्छेदविनटनं प्रातः ।

छदितस्तिद्योत्तमया सामान्यपुरुष इवासमर्थः ॥

जो परमहिलाकज्जे छंडइ वडुत्तणं तओ णियमं ।

सो ण हवइ परमप्पा कह देवो हवइ पुज्जो य ॥ २२२ ॥

यः परमहिलाकार्येण त्यजति बृहत्त्वं तपो नियमं ।

स न भवति परमात्मा कथं देवो भवति पूज्यश्च ॥

सुपरिक्खिऊण तम्हा सुगवेसहं को वि परमत्रंभाणो ।

दहअट्टदोसरहिओ वीयराओ परो णाणी ॥ २२३ ॥

सुपरीक्ष्य तस्मात् सुगवेपय कमपि परमत्रहाणं ।

दशाष्टदोषरहितं वीतरागं परं ज्ञानिनं ॥

किण्णो जइ धरइ जयं मूवररूवेण दाढअग्गेण ।

ता सो कहिं ठवइ पैए कुम्मे कुम्मो वि कहिं ठाइं ॥ २२४ ॥

कृष्णो यदि धारयति जगत् शूकररूपेण दंष्ट्रप्रेण ।

तर्हि स कुत्र तिष्ठति पदे कूर्मे कूर्मोऽपि कुत्र तिष्ठति ॥

अह छुहिऊण सउअरो तिजयं पालेइ महुमहो णिच्चं ।

किं सो तिजयवहित्थो तिजयवहित्थेण किं जाओ ॥ २२५ ॥

अथ स्पर्शित्वा शूकरं (?) त्रिजगत् पालयति मधुमदः निर्यं ।

किं स त्रिजगद्विस्थः त्रिजगद्विस्थेन किं जातं ॥

जइया दहरहपुत्तो रामे (मो) णिवसेइ दंडरणम्मि ।

लंकाहिवेण छलिओ हरिया भज्जा पवंचेण ॥ २२६ ॥

यत्र च दशरथपुत्रो रामो निवसति दण्डकारण्ये ।

लंकाधिपतिना छलितः हता भार्या प्रपंचेन ॥

विरहेण खवइ विलवइ पडेइ उट्टेइ णियइ मोणइ ।

णउ मुणइ केण णाया पुच्छइ वणनावयां मूटो ॥ २२७ ॥

विरहेण रोदिति विलपति पतति उत्तिष्ठति पश्यति स्वपिति ।
 न हि मनुते केन ज्ञातः पृच्छति वनशावकान् मूढः ॥
 जइ उवरत्थं तिजयं ता सो किं तत्थ वाणरा रिच्छा ।
 मेलाविऊण उवही वंधइ सेलेहिं सेउत्ति ॥ २२८ ॥
 यदि उपरि स्थितः त्रिजगतः तर्हि स किं तत्र वानरान् ऋक्षान् ।
 मेलापयित्वा उदयेः वध्नाति शैलैः सेतुमिति ॥
 किं पट्टवेइ दूवं जंपइ किं सामभेयदंडाई ।
 अलहंतो किं जुज्जइ कोवं काऊण सत्थेहिं ॥ २२९ ॥
 किं प्रस्थापयति दूतं जल्पति किं सामभेददण्डानि ।
 अलभमानः किं युद्धयति कोपं कृत्वा शत्रैः ॥
 किं दहवयणो सीया गहिऊणं उवरवाहिरे थक्को ।
 जं हेलाइं ण तरइ रिउ हणिउं आणिउं भज्जा ॥ २३० ॥
 किं दशवदनः सीतां गृहीत्वावहिः स्थितः ।
 यत् हेलया न शक्नोति रिपुं हत्वा आनेतुं भार्या ॥
 जइ तिजयपालणत्थे संजाया तस्स एरिसी सत्ती ।
 तो किं तिजयं दडुं हरो(रे)णं संपिच्छमाणस्स ॥ २३१ ॥
 यदि त्रिजगत्पालनार्थे संजाता तस्यैतादृशी शक्तिः ।
 तर्हि किं जिगत् दग्धं हरेण संप्रेक्षमाणस्य ॥
 जो ण जाणइ जो ण जाणइ हरिय णियभज्ज ।
 पुच्छइं वणसावयइं अह मुणेइ आणउं ण सकइ ।

भो भो भुजंग ! तरुपल्वलोलजिह्व वन्धूकपुष्पदलसन्निभलोहिताक्ष ।
 पृच्छामि ते पवनभोजिन् कोमलाङ्गी काचित्त्वया शरदचन्द्रमुखी न दृष्टा ॥१॥

१ किं पट्टावइ दूओ ख । २ हरिणे ख ।

ब्रधेइ सायरु गिरिहिं पेसिऊण तहिं पवरभिञ्चइं ॥
तासु उवरि णारायणहो किमु तिहुवणु णिवसेइ ।
जो वारवइ विणासियहो रक्खहु णा हिं तरेइ ॥ २३२ ॥

यो न जानाति यो न जानाति हर्तारं निजभार्यायाः ।
पृच्छति वनशावकान् अथ जानाति आनेतुं न शक्नोति ।
बध्नाति सागरं गिरिभिः प्रेषयित्वा तत्र प्रवरभृत्यान् ।
तस्योपरि नारायणस्य (?) किं त्रिमुत्रं निवसति ।
यो रिपुं विनाश्य रक्षितुं न हि शक्नोति ।

जो देओ होऊणं माणुसमत्तेहिं पंडुपुत्तेहिं ।
सारइ बोलाइत्तो जुञ्जे जेउं कओ तेहिं ॥ ॥ २३३ ॥

यो देवो भूत्वा मनुष्यमात्रं पाण्डुपुत्रं ।
सारथिं कथयित्वा युद्धे जेतुं कथितः तैः ॥

तम्हा ण होइ कत्ता किण्हो लोयस्स तिविहभेयस्स ।
मरिऊण वारवारं दहावयारेहिं अवयइ ॥ २३४ ॥

तस्मान्न भवति कर्ता कृष्णो लोकस्य त्रिविधभेदस्य ।
मृत्वा पुनः पुनः दशावतारैः अवतरति ॥

एवं भणंति वेई अमरीरो णिवकलो हरी मिट्ठो ।
अवयइ मच्चलोए देहं गिण्हेइ इच्छाए ॥ २३५ ॥

एवं भणन्ति वेचित् अमरीरो निवकलो हरिः मिट्ठः ।
अवतरति मर्त्यलोके देहं गृहार्ताच्छया ॥

जइ तुप्यं णवणीयं णवणीयं पुण वि होइ जइ दुट्ठं ।
तो सिद्धि गओ जीवो पुणरवि देहाइं गिण्हेइ ॥ २३६ ॥

यदि वृतं नवनीतं नवनीतं पुनरपि भवेद्यदि दुग्धं ।

तर्हि सिद्धिगतो जीवः पुनरपि देहादिकं गृह्णाति ॥

रद्धो क्रूरो पुणरपि खित्ते खित्तो य होइ अंकूरो ।

जइ तो मोक्खं पत्ता जीवा पुण इति संसारे ॥ २३७ ॥

रद्धः क्रूरः पुनरपि क्षेत्रे क्षिप्तश्च भवेदंकुरः ।

यदि तर्हि मोक्षं प्राप्ताः जीवा पुनरायान्ति संसारे ॥

जइ णिक्कलो महप्पा विण्हू णिस्सेसकम्ममलचत्तो ।

किं कारणमप्पाणं संसारे पुण वि पाडेइ ॥ २३८ ॥

यदि निष्कलो महात्मा विष्णुः निःशेषस्वकर्ममलच्युतः ।

किं कारणमात्मानं संसारे पुनरपि पातयति ॥

अहवा जइ कलसहिओ लो(इ)यवावारदिण्णणियचित्तो ।

तो संसारी णियमा परपप्पा हवइ ण हु विण्हू ॥ २३९ ॥

अथवा यदि कलसहितो लोकव्यापरदत्तनिजचित्तः ।

तर्हि संसारी नियमात् परमात्मा भवति न हि विष्णुः ॥

इय जाणिउण पूणं णवणवदोसेहिं वज्जिओ विण्हू ।

सो अक्खइ परमप्पा अणंतणाणी अराई य ॥ २४० ॥

इति ज्ञात्वा नूनं नवनवदोषैर्वर्जितो विष्णुः ।

स कथ्यते परमात्मा अनन्तज्ञानी अरागी च ॥

एवं भणंति केई रुद्धो संहरइ तिहुवणं सयलं ।

चिन्तामित्तेण फुडं णरणारयतिरियसुरसहियं ॥२४१॥

एवं भणन्ति केचित् रुद्रः संहरति त्रिभुवनं सकलं ।

चिन्तामात्रेण स्फुटं नरनारकतिर्यक्सुरसहितं ॥

ण्टे असेसलोए पच्छा सो कत्थ चिट्ठदे रुद्धो ।

इक्को तमंधयारो गोरी गंगा गया कत्थ ॥ २४२ ॥

नष्टेऽशेषलोके पश्चात् स कुत्र तिष्ठति रुद्रः ।

एकस्तमोऽन्धकारः (?) गौरी गंगा गता कुत्र ॥

जो डहइ एयगामं पावी लोएहिं बुच्चदे सो हु ।

जो पुण डहइ तिलोयं सो कह देवत्तणं पत्तो ॥ २४३ ॥

यो दहति एकग्रामं पापी लोकैरुच्यते स हि ।

यः पुनः दहति त्रिलोकं स कथं देवत्वं प्राप्तः ॥

जो हणइ एयगावी विप्पो वा सो वि इत्थ लोएहिं ।

गोत्रंभहच्चयारी पभणिज्जइ पावकारी सो ॥ २४४ ॥

यः हन्ति एका गां विप्रं वा सोऽपि अत्र लोकैः ।

गोत्रहत्याकारी प्रभण्यते पापकारी सः ॥

जो पुण गोणारिपमुहे वाले बुड्डे असंखलोयत्थे ।

संहारेइ असेसं तस्सेव हि किं भणिस्सामो ॥ २४५ ॥

यः पुनः गोनारीप्रमुखान् बालान् वृद्धान् असंख्यलोकस्थान् ।

संहरति अशेषान् तमेव हि किं भणिष्यामः ॥

अहवा जइ भणइ इयं सो देवो तस्स हवइ ण हु पावं ।

तो वंभसीसच्छेए वंभहच्चा कहं जाया ॥ २४६ ॥

अथवा यदि भणतीदं स देवः तस्य भवति न हि पापं ।

तर्हि ब्रह्मशिरश्छेदे ब्रह्महत्या कथं जाता ॥

किं दड्डुमुंडमाला खंधे परिवहइ धूलिधूसरिओ ।

परिभमिओ तित्थाइं णरह कवालम्मि भुंजंतो ॥ २४७ ॥

किं अस्थिमुण्डमालां स्कन्धे परिवहति धूलिधूसरितः ।
 - परिभ्रमितस्तीर्थानि नरस्य कपाले भुञ्जानः ॥
 तह वि ण सा ब्रंभहच्चा फिट्ठइ रुदस्स जामता गामे ।
 वसिओ पलासणणामे ता विप्पो णियवल्लेण ॥ २४८ ॥
 तथापि न सा ब्रह्महत्या स्फिटति रुद्रस्य यावत् ग्रामे ।
 उपितः पलाशनाम्नि तत्र विप्रः निजबलत्वेन ? ॥
 णिहओ सिंगेण मुओ वसहो सेओ विकसणु संजाओ ।
 वाणारसिं च पत्तो रुदो वि य तस्स मग्गेण ॥ २४९ ॥
 निहतः शृंगेन मृतः वृषभः श्वेतः कृष्णः संजातः ।
 वाराणसीं प्राप्तः रुद्रोऽपि च तस्य मार्गेण ॥
 गंगाजलं पविष्टा चत्ता ते दो वि ब्रंभहच्चाए ।
 रुदस्स करयलाओ तइयं पडियं क्वालोल्लि ॥ २५० ॥
 गंगाजले प्रविष्टौ त्यक्तौ तौ द्वावपि ब्रह्महृत्यया ।
 रुद्रस्य करे लग्नं तत्र पतितं कपालमिति ॥
 जस्स गुरु सुरहिसुओ गंगातोएण फिट्ठए हच्चा ।
 सो देवो अण्णस्स य फेडइ कह संचियं पावं ॥ २५१ ॥
 यस्य गुरुः सुरभिसुतः गंगातोयेन स्फिच्यते हत्या ।
 स देवोऽन्यस्य च स्फेटयति कथं संचितं पापं ॥
 जो ण तरइ णियपावं गहियवओ अप्पणस्स फेडेउं ।
 असमत्थो सो पूर्णं कत्तित्तिणासणे रुदो ॥ २५२ ॥
 यो न शक्नोति निजपापं गृहीतव्रतः आत्मनः स्फेटयितुं ।
 असमर्थः स नूनं कर्तृत्वविनाशने रुद्रः ॥

णो वंभा कुण्ड जयं किण्णो ण धरेइ हरइ णउ रुदो ।
एसो सहावसिद्धो णिच्चो दब्बेहिं संछण्णो ॥ २५३ ॥

न ब्रह्मा करोति जगत् कृष्णः न धरति हरति न च रुद्रः ।
एष स्वभावसिद्धः नित्यः द्रव्यैः संछन्नः ॥

वस्तुच्छन्दः ।

भमइ णग्गउ भमइ णग्गउ वंसइ सुमत्ताणि ।
णररुंडसिरमंडियउ, णरकवालि भिक्खाइं भुंजइ ।
सहयारिउ गउरियहिं दुक्खभारु अप्पहो णिउंजइ ॥
जो वंभणेहं सिरकमले खुडिए न फेडइ दोमु ।
सो इसरु कह अवहरइ तिहुवणु करइ असेमु ॥२५४॥

भ्रमति नगे भ्रमति नगे वसति इमशाने ।
नररुण्डशिरोमण्डितः नरकपाले भिक्षां भुनक्ति ।
सहकृतः गौरिभिः दुःखभारे आत्मानं नियुक्ते ॥
यो ब्रह्मणः शिरःकमले खंडिते न स्फोटयति दोषं ।
स ईश्वरः कथमपहरति त्रिभुवनं दग्रेति अशेषं ॥

वस्तुच्छन्दः ।

उत्तरंतउ उत्तरंतउ पवरसुरमरिहिं ।
पारांसुर चलिंउ मणु मुए लज्जेवइणंदिणि ।
आलिंणिय तपहेउ वरिवानजाउ तावसु महामुणि ।
भारहु पुणु हउ दोवहिं केसग्गहपव्वेण ।
जिणु मिळ्ळिवि के केण जगिं णिवडिय चवलमणेण ॥२५५॥

१ णग्गउ समइ क. । २ विमुंजइ । ३ पान्णसुवु क. । ४ व. क. । ५ इ. ख ।

६ मोलिवि क. ।

अण्णाणि य रइयाइं एत्थ पुराणाइं अघडमाणाइं ।

सिद्धंतेहिं अजुत्तं पुव्वावरदोससंक्रिण्णं^१ ॥ २५६ ॥

अन्यानि च रचितान्यत्र पुराणानि अघटमानानि ।

सिद्धान्तैरयुक्तं पूर्वापरदोषसंकीर्णं ॥

एएं उत्ते देवे सव्वे सदहइ जो पुराणेहिं ।

अरिहंतां परिचाए सम्मामिच्छोत्ति णायव्वो ॥ २५७ ॥

एतानुक्तान् देवान् सर्वान् श्रद्धधाति यः पुराणैः ।

अर्हतः परित्यज्य सम्यङ्मिथ्यात्वं इति ज्ञातव्यः ॥

एसो सम्मामिच्छो परिहरियव्वो हवेइ णियमेण ।

एत्तो अविरइंसम्मो कहिज्जमाणो णिसामेह ॥ २५८ ॥

एतत्सम्यग्मिथ्यात्वं परिहर्तव्यं भवति नियमेन ।

इत अविरतसम्यक्त्वं कथयिष्यमाणं निशृणुत ॥

इति मिश्रगुणस्थानम् ।

हवइ चउत्थं ठाणं अविरइंसम्मोत्ति णामयं भणियं ।

तत्थ हु खइओ भावो खयउवसमिओ सँमो चेव ॥ २५९ ॥

भवति चतुर्थं स्थानमविरतसम्यक्त्वमिति नामकं भणितं ।

तत्र हि क्षायिको भावः क्षायोपशमिकः शमश्चैव ॥

१ अस्मादग्रेऽयं पाठः ख-पुस्तके । उक्तं च—

ब्रह्मा अल्पायुपोऽयं हरिर्विधिचशाद्भोपतिर्गर्भवासे

चन्द्रः क्षीणप्रतापी भ्रमति दिनकरो देवमिथ्याभिमानो ।

कामः कायाविहीनश्चलगातिपवनो विश्वकर्मा दरिद्री

इन्द्राद्या दुःखपूर्णाः सुखनिधिसुभगः पातुः नः पार्श्वनाथः ॥१॥

२ एए देवा सव्वे सदहइ य कोइ पुराणेहिं ख । ३ तो. क । ४-५ य ख ।

६ उवसमो. क ।

एष तिष्ठिण वि भावा दंसणमोहं पडुच्च भणिआ हु ।
चारित्तं णत्थि जदो अविस्सयअंतेसु ठाणेसु ॥ २६० ॥

एते त्रयोऽपि भावा दर्शनमोहं प्रतीत्य भणिता हि ।
चारित्रं नास्ति यतः अविस्तान्तेषु स्थानेषु ॥

णो इंदिएसु विरओ णो जीवे थावरे तसे वा वि ।
जो सदहइ जिणुत्तं अविस्सयम्मोत्ति णायव्वो ॥ २६१ ॥

नो इन्द्रियेषु विरतो नो जीवे स्थावरे तसे वापि ।
यः श्रद्धयाति जिनोक्तं अविस्तसम्यक्त्व इति ज्ञातव्यः ॥

हिंसारहिण धम्मो अट्टारहदोसवज्जिए देवे ।
णिग्गंथे पव्वयणे सदहणं होइ सम्मत्तं ॥ २६२ ॥

हिंसारहिते धर्मे अष्टादशदोषवर्जिते देवे ।
निर्ग्रन्थे प्रवचने श्रद्धानं भवति सम्यक्त्वं ॥

संवेओ णिव्वेओ णिंदा गरुहाइं उवसमो भर्त्ता ।
वच्छल्लं अणुकंपा अट्टगुणा होंति सम्मत्ते ॥ २६३ ॥

संवेगो निर्वेगो निन्दा गर्हा उपशमो भक्तिः ।
वात्सल्यं अनुकम्पा अधौ गुणा भवन्ति सम्यक्त्वे ॥

१ अस्य गाथामूद्रस्येयं ख-पुस्तके व्याख्या वर्तते—

धर्मे नानुरागता संवेगः १ । शरीरादिविषये सदा विरागता निर्वेगः (दः)
२ । आत्मसाक्षि (क्षि) निन्दाकरणं निन्दा ३ । गुरुसाक्षि (क्षि) कृतघ्नोपविरा-
करणं गरुहा (गर्हा) ४ । क्रोधादिपंचविंशतिक्रमावपरित्यजनमुपशमः ५ । दर्शन-
ज्ञानचारित्र्यतपोविनयकरणं भक्तिः ६ । व्रतधारणकारण वात्सल्यं अनुकम्पा ७ ।
पदार्थानुज्ञिकायस्य दयाकारणमनुकम्पा ८ ।

दुर्विहं तं पुण भणियं अहवा तिविहं कंहंति आयरिया ।

आणाए अधिगमे वा सदहणं जं पयत्थाणं ॥ २६४ ॥

द्विविधं तत्पुनः भणितं अथवा त्रिविधं कथयन्त्याचार्याः ।

आज्ञया अधिगमेन वा श्रद्धानं यत् पदार्थानां ॥

खयउवसमं च खइयं उवसमसम्मत्त पुणु च उद्विहं ।

अविरइ विरयाणं पि य विरयाविरयाण ते हुंति ॥ २६५ ॥

क्षयोपशमं च क्षायिकं उपशमं सम्यत्तत्रं पुनश्चोद्विष्टं ।

अविरतानां विरतानामपि च विरताविरतानां तानि भवन्ति ॥

कोहचउक्कं पढमं अणंतवंधीणिणामयं भणियं ।

सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तयं तिणिण ॥ २६६ ॥

क्रोधचतुष्कं प्रथमं अनन्तानुबन्धिनामकं भणितं ।

सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं सम्यङ्निध्यात्वं त्रीणि ॥

एएसिं सत्तण्हं उवसमकरणेण उवसमं भणियं ।

खयओ खइयं जायं अचलत्तं णिम्मलं सुद्धं ॥ २६७ ॥

एतेषां सप्तानामुपशमकरणेन उपशमं भणितं ।

क्षयतः क्षायिकं जातं अचलत्वं निर्मलं शुद्धं ॥

उदयाभाओ जत्थ य पयडीणं ताण सव्वघादीणं ।

छण्णाण उवसमो वि य उदओ सम्मत्तपयडीए ॥ २६८ ॥

उदयाभावो यत्र च प्रकृतीनां तासां सर्वघातिनीनां ।

षण्णां उपशमोऽपि च उदयः सम्यक्प्रकृतेः ॥

खयउवसमं पउत्तं सम्मत्तं परमवीयराएहिं ।

उवसमियपंकसरिसं णिच्चं कम्मक्खवणहेउं ॥ २६९ ॥

क्षयोपशमं प्रोक्तं सम्यक्त्वं परमवीतरागैः ।

उपशमितपंकसदृशं नित्यं कर्मक्षपणहेतुः ॥

जो ण हि मण्णइ एयं खयउवसमभावजो य सम्मत्तं ।
सो अण्णाणी मूढो तेण ण णायं समयसारं ॥ २७० ॥

यो न हि मन्यते एतत् क्षयोपशमभावजं च सम्यक्त्वं ।
स अज्ञानी मूढस्तेन न ज्ञानं समयसारं ॥

जम्हा पंचपहाणा भावा अन्थिच्चि मुत्तणिदिट्ठा ।
तम्हा खयउवसमिण् भावे जायं तु तं जाणे ॥ २७१ ॥

यस्मात् पंचप्रधाना भावाः गन्तीति मूत्रनिर्दिष्टाः ।
तस्मान् क्षयोपशमेन भावेन जातं तु तन् ज्ञातव्यं ॥

तं सम्मत्तं उत्तं जत्थ पयन्थाण होइ गदहणं ।
परमप्पहकहियाणं परमप्पा दोसपरिचत्तो ॥ २७२ ॥

तत्सम्यक्त्वमुक्तं यत्र पदार्थानां भवति श्रद्धानं ।
परमात्मकथितानां परमात्मा दोषपरित्यक्तः ॥

दोसा लुहाइ भणिया अट्टारस होंति तिविहलोयम्मि ।
सामण्णा सयलजणे तेसिमभावेण परमप्पा ॥ २७३ ॥

दोषा क्षुधादयो भणिता अष्टादश भवन्ति त्रिविधलोके ।
सामान्या सकलजने तेषामभावेन परमात्मा ॥

सो पुण दुविहो भणियो सयलो तह णिवकलुत्ति णायव्वो ।
सयलो अरुहसस्सवो सिद्धो पुण णिवकलो भणित्तो ॥ २७४ ॥

स पुनः द्विविधो भणितः सकलस्तथा निष्कल इति ज्ञातव्यः ।
सकलोऽर्हद्रूपः सिद्धः पुनः निष्कलो भणितः ॥

जस्स ण गोरी गंगा कावालं णेव विसहरो कंटे ।
ण च दप्पो कंदप्पो सो अरुहो भण्णए रूढो ॥ २७५ ॥

यस्य न गौरी गंगा कपालं नैव विषधरः कण्ठे ।

न च दर्पः कन्दर्पः सोऽर्हन् भण्यते रुद्रः ॥

जस्स ण गया ण चक्रं णो संखो णेय गोविसंवाओ ।

णावयरइ दहवयारे सो अरुहो भण्णए विण्हूँ । २७६ ॥

यस्य न गदा न चक्रं न शंखः नैव गोपीसंवातः ।

नावतरति दशावतारे सोर्हन् भण्यते विष्णुः ॥

ण तिलोत्तमाए छलिओ ण य वयभट्टो ण चउमुहो जादो ।

ण य रिछीए रत्तो सो अरुहो बुच्चए वंभो ॥ २७७ ॥

न तिलोत्तमया छलितो न च व्रतभ्रष्टो न चतुर्मुखो जातः ।

न ऋक्ष्यां रक्तः सोर्हन् उच्यते ब्रह्मा ॥

तेणुत्तणवपयत्था अण्णे पंचत्थिकायछदव्वा ।

आणाए अधिगमेण य सदहमाणस्स सम्मत्तं ॥ २७८ ॥

तेनोक्तनवपदार्थान् अन्यानि पंचास्तिकायषड्द्रव्यानि ।

आज्ञयाधिगमेन च श्रद्धानस्य सम्यक्त्वं ॥

संकाइदोसरहियं णिस्संकाईगुणज्जुअं परमं ।

कम्मणिज्जरणहेउं तं सुद्धं होइ सम्मत्तं ॥ २७९ ॥

शंकादिदोषरहितं निःशंकादिगुणयुतं परमं ।

कर्मनिर्जराहेतु तच्छुद्धं भवति सम्यक्त्वं ॥

रायगिहे णिस्संको चोरो णामेण अंजणो भणिओ ।

चंपाए णिकंखा वणिधूवा णंतमइं णामा ॥ २८० ॥

राजगृहे निःशंकश्चोरो नाम्ना अंजनो भणितः ।

चम्पायां निष्कांक्षा वणिक्सुतानन्तमन्ती नाम ॥

णिच्चिदिशिंछो राया उदायणो णाम गुरवे णयरे ।

रेवइ महुराणयरे असूढदिष्टी मुण्येयव्वा ॥ २८१ ॥

निर्धिचिकिःसां राजा उदायनो नाम गुरवे नगरे ।

रेवती मथुरानगरे अमूढदृष्टिर्मन्तव्या ॥

ठिदिकरणगुणपउत्तो मगहाणयग्ग्मि वारिसेणो हु ।

हन्थिणपुरग्ग्मि णयरे वच्छल्लं विण्णुणा रइयं ॥ २८२ ॥

स्थिताकरणगुणप्रयुक्तो मगधानगरे वारिसेणो हि ।

हस्तिनापुरे नगरे वात्सल्यं विण्णुना रचितं ॥

उवगूहणगुणजुत्तो जिणदत्तो णाम तामलिचिणयरीण् ।

वज्जकुमारेण कया पहावणा चैय महुराण् ॥ २८३ ॥

उपगूहनगुणयुक्तो जिनदत्तो नाम ताम्रलिचिनगर्या ।

वज्रकुमारेण कृता प्रभावना चैव मथुरायां ॥

एरिसगुणअट्टजुयं सम्मत्तं जो धरेइ दिढचिंनो ।

सो हवइ सम्मदिष्टी सहहमाणो पयत्थाण ॥ २८४ ॥

एतादृशाष्टगुणयुक्तं सम्पक्त्वं यो धारयति दृढचित्तः ।

स भवति नम्यग्दृष्टिः श्रद्धधानः पदार्थानां ॥

ते पुणु जीवाजीवा पुण्णं पावो य आणवो य नहा ।

संवर णिज्जरणं पि य बंधो मोक्खो य पव होंति ॥ २८५ ॥

ते पुनः जीवाजीवा पुण्यं पापश्च आत्तश्च तथा ।

संवरो निर्जरापि च बन्धो मोक्षश्च नव भवन्ति ॥

१ वरवे. ख. । वसुनदिशःवकावरे तु रूढरत्नयरे इति पाठः । रूढरत्नयरे ।

२ अथ क. ते. ख. । ३ पुण्यं पावा य व. ।

जीवो अणाइ णिच्चो उवओगसंजुदो देहमित्तो य ।

कत्ता भोक्ता चेतार्ता ण हु मुत्तो सहावउडुगई ॥ २८६ ॥

जीवोऽनादिः नित्यः उपयोगसंयुतो देहमात्रश्च ।

कर्ता भोक्ता चेतयता न तु मूर्तः स्वभावोर्ध्वगतिः ॥

पाणचउक्कपउत्तो जीवस्सइ जो हु जीविओ पुव्वं ।

जीवेइ वट्टमाणं जीवत्तणगुणसमावण्णो ॥ २८७ ॥

प्राणचतुष्कप्रयुक्तः जीविष्यति यो हि जीवितः पूर्वं ।

जीवति वर्तमाने जीवत्वगुणसमापन्नः ॥

पज्जाएण वि तस्स हु दिट्ठा आवत्ति देहगहणम्मि ।

अधुवत्तं पुण दिट्ठं देहस्स विणासणे तस्सं ॥ २८८ ॥

पर्यायेनापि तस्य हि दृष्टा आवृत्तिः देहग्रहणे ।

अध्रुवत्वं पुनः दृष्टं देहस्य विनाशने तस्य ॥

सायारो अणयारो उवओगो दुविहभेयसंजुत्तो ।

सायारो अट्टविहो चउप्पयारो अणायारो ॥ २८९ ॥

साकारोऽनाकर उपयोगो द्विविधभेदसंयुक्तः ।

साकारोऽष्टविधः चतुष्प्रकारोऽनाकरः ॥

मइसुइउवहिविहंगा अण्णाणजुत्ताणि तिण्णिण णाणाणि ।

सम्मण्णाणाणि पुणो केवलदिट्ठाणि पंचेव ॥ २९० ॥

मतिश्रुतावधिविभंगानि अज्ञानयुक्तानि त्रीणि ज्ञानानि ।

सम्यग्ज्ञानानि पुनः केवलदृष्टानि पंचैव ॥

१ भुक्ता ख. । २ वेत्ता ख. । ३ इ ख. । ४ इयं ख.—पुस्तके २८७

गाथातः पूर्वं ।

मदृणाणं मुदृणाणं उवही मणपज्जयं च केवल्यं ।
 तिणिण सया छत्तीया मई सुयं पुंण वारसंगगयं ॥ २९१ ॥
 मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिः मनःपर्ययः च केवलं ।
 त्रीणि शतानि पट्टत्रिंशत् मतिः, श्रुतं पुनः द्वादशाङ्गतं ॥
 देसावहि परमावहि सञ्जावहि अवहि होइ तिन्मेया ।
 भवगुणकारणभूया णायव्वा होइ णियमेणं ॥ २९२ ॥

१ सुयं च वा. क । २ अस्माद्वाध्यामूत्रादध्रे न्व-पुस्तके ईदृशाटे वर्तते ।
 अत्र ग्रन्थान्तरादज्ञानत्रयमाह—

अद्वंदं मन्यते देवमग्रतं मन्यते व्रतं ।
 अतत्त्वे तत्त्वविज्ञानं कुमतिर्मन्यते सुधैः ॥ १ ॥
 सर्वज्ञशासने द्वेषा कुशाखेषु सदा रतिः ।
 मद्यमासे वृभुक्षेच्छा श्रुतौ स नरोऽधमः ? ॥ २ ॥

अथ जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे अहिच्छत्रपुरे द्वादशः शिवगर्भा नाम
 व्रतनियमोपेतो विभंगावधिसंजातः । एकदा पितृपक्षे निजपुत्रस्वाहा दत्ता—
 सर्मापे न्यग्रोधमाश्रित्य कुण्ठनृग एकस्तिष्ठति, नृगं व्यापादयित्वा शीघ्रिणागच्छ
 रे पुत्र ! । दृक्वस्तत्रैव प्राप्तः, नृगसमूहं दृष्ट्वा विस्मयं गतः, पुनर्दिगावलोकनं
 कृत्वा तस्मिन् स्थाने मुनिं दृष्ट्वा नमस्कारं कृत्वा पृच्छति स्म—भगवन् ! नृग-
 निचयो युष्मत्पार्श्वे स्थितो मत्पित्रा कथं ज्ञातः ? ज्ञानप्रभावान्मुनिरत्नवान्—तव
 पितृविभंगावधिः संजातः, असंयमायेन जानाति । मुनिवचनं श्रुत्वा न वेगन्त-
 त्रैव गत्वा नमस्कृतवा जनकमुपविष्टः । स पितरं पृच्छति—तस्मिन् स्थाने किं
 कोऽपि मानवकः अस्ति ? स कथयति न हि । पुत्रः कथयति—सृगसमूहस्तिष्ठति,
 कोऽपि यतिरस्ति किं वा नास्तीति ? तद्वचनं श्रुत्वा सुहृसुहृदुरवलोचय तेनोक्तं एकः
 स एव तिष्ठति नान्यः कश्चिन् । गुरुवचनं श्रुत्वा शीघ्रिण मुनिसमीपं गतः ।
 मुनिपार्श्वे मुनिरभूत् । स्वर्गं गतः । स विप्रो शीघ्रिण सृत्वा नरकं गतश्चेति,
 विभंगावधिक्षेति ।

२९१ गाध्यामूत्रस्यापि ख-पुस्तके व्याख्या वर्तते । सा चात्र नोद्यता । तत्रा-
 र्थराजवार्तिकार्थो यः पाठः ज्ञानानां विषये स एवात्रोल्लिखितः वर्तते, अतः
 तत्रैवावलोकनीय इति ।

देशावधिः परमावधिः सर्वावधिः अवधिः भवति त्रिभेदः ।

भवगुणकारणभूतः ज्ञातव्यो भवति नियमेन ॥

मणपज्जवं च दुविहं रिउविउलमई तहेव णायव्वं ।

केवलणाणं एकं सव्वत्थ पयासयं णिच्चं ॥ २९३ ॥

मनःपर्ययश्च द्विविधः ऋजुविपुलमती तथैव ज्ञातव्यः ।

केवलज्ञानं एकं सर्वत्र प्रकाशकं नित्यं ॥

एसो अट्टपयारो णाणुवओगो हु होइ सायारो ।

चक्खु अचक्खू ओही केवलसहिओ अणायारो ॥ २९४ ॥

एषोऽष्टप्रकारो ज्ञानोपयोगो हि भवति साकारः ।

चक्षुरचक्षुरवधिः केवलसहितोऽनाकारः ॥

जम्मि भवे जं देहं तम्मि भवे तप्पमाणओ अप्पा ।

संहारवित्थरगुणो केवलणाणीहि उद्दिट्ठो ॥ २९५ ॥

यस्मिन् भवे यो देहः तस्मिन् भवे तत्प्रमाण आत्मा ।

संहारविस्तारगुणः केवलज्ञानिभिः उद्दिष्टः ॥

जो कत्ता सो भुत्ता व्यवहारगुणेण होइ कम्मस्स ।

ण हु णिच्छएण भणिओ कत्ता भोत्ता य कम्माणं ॥ २९६ ॥

यः कर्ता स भोक्ता व्यवहारगुणेन भवति कर्मणः ।

न तु निश्चयेन भणितः कर्ता भोक्ता च कर्मणां ॥

कम्ममलछाइओ वि य ण मुयइ सो चेयणगुणं किं पि ।

जोणीलक्खगओ वि य जह कणयं कदमे खित्तं ॥ २९७ ॥

कर्ममलच्छादितोऽपि च न जानाति चेतनगुणं किमपि ।

योनिलक्षगतोऽपि च यथा कनकं कर्दमे क्षिप्तं ॥

सुहृमो अमुचिवंतो वर्णगंधाङ्गान्यपरिहीणो ।

पुगलमज्झिगओ वि य ण य मिँल्लइ णिययस्वभावं ॥२९८॥

सूक्ष्मोऽमूर्तिमान् वर्णगन्धादिस्पर्शपरिहीनः ।

पुद्गलमध्यगतोऽपि च न च मुञ्चति निजकस्वभावं ॥

स्वभावेणुद्गई विदिसं परिहरिय गइच्चउक्केण ।

गच्छेइ कम्मजुत्तो सुद्धो पुण रिजुगई जाई ॥ २९९ ॥

स्वभावेनोर्ध्वगतिः विदिशां परिहृत्य गतिचतुष्केन ।

गच्छति कर्मयुक्तः शुद्धः पुनः ऋजुगतिं याति ॥

पाणिविमुत्ता लंगलि वंकागई होइ तह य पुण तइया ।

कम्मइयकायजुत्तो दो तिण्णि य कुणइ वंकाइं ॥ ३०० ॥

पाणिविमुक्ता लंगलिका वक्रगतिः भवति तथा च पुनः तृतीया ।

कार्मणकाययुक्तः द्वित्रीणि करोति वक्राणि ॥

तइए समए गिण्हइ चिरक्यकम्मोदएण सो देहं ।

सुरणरणारइयाणं तिरियाणं चैव लेसवमो ॥ ३०१ ॥

तृतीये समये गृह्णाति चिरद्वैतकर्मोदयेन न देहं ।

सुरनरनारकाणां तिरश्चां चैव लेसवमोः ॥

सुहृदुवखं भुंजंतो हिंडइ जोणीसु मयसहन्नेसु ।

एइंदियवियलिंदियसयलिंदियपज्जपज्जत्तो ॥ ३०२ ॥

१ स्वविदण्णार्ं ख. । २ न. ख. । ३ कसहावेणुद्गई ख. । स्वस्वभावे
नोर्ध्वगतिः । ४ लिडो ख. ।

सुखदुःखं भुञ्जानः हिण्डते योनिषु शतसहस्रेषु ।
एकेन्द्रियविकलेन्द्रियसकलेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तः ।

जीवः ।

होंति अजीवा दुविहा रूत्रारूत्रा य रूत्रि चउभेया ।
खंधं च तहा देसो खंधपदेसो य परमाणू ॥ ३०३ ॥
भवन्ति अजीवा द्विविधा रूप्यरूपाश्च रूपिणश्चतुर्भेदाः ।

स्कन्धश्च तथा देशः स्कन्धप्रदेशश्च परमाणुः ॥

णिहिलावयं च खंधा तस्स य अद्धं च वुच्चदे देसो ।
अद्धद्धं च पदेसो अविभागी होइ परमाणू ॥ ३०४ ॥
निखिलावयवश्च स्कन्धः तस्य चार्धं च उच्यते देशः ।

अर्धार्धं च प्रदेशोऽविभागी भवति परमाणुः ॥

धम्माधम्मागासा अरूविणो होंति तह य पुण कालो ।
गइठाणकारणावि य उग्गाहण वत्तणा कमसो ॥ ३०५ ॥
धर्माधर्माकाशाः अरूपा भवन्ति तथा च पुन कालः ।

गतिस्थानकारणमपि चावगाहनस्य वर्तनायाः क्रमशः ॥

जीवाण पुग्गलाणं गइप्पवत्तण कारणं धम्मो ।
जह मच्छाणं तोयं थिरभूया णेव सो णेई ॥ ३०६ ॥
जीवानां पुद्गलानां गतिप्रवृत्तानां कारणं धर्मः ।

यथा मत्स्यानां तोयं स्थिरीभूतान् नैव स नयति ॥

ठिदि कारणं अधम्मो विसामठाणं च होइ जह छाया ।
पहियाणं रुक्खस्स य गच्छंतं णेव सो धरई ॥ ३०७ ॥

स्थितिकारणं अधर्मः विश्रामस्थानं च भवति यथा छाया ।

पथिकानां वृक्षस्य च गच्छतः नैव स धरति ॥

सर्व्वेभिं द्वाणं अवयसं देहं तं तु आयासं ।

तं पुणु द्विविहं भणियं लोयाल्लोयं च जिणसमए ॥ ३०८ ॥

नर्व्वेपां द्रव्याणामवकाशं ददाति तस्याकाशं ।

तत्पुनः द्विविधं भणितं लोकान्दोकं च जिनसमये ॥

वत्तणगुणजुत्ताणं द्वाणं होइ कारणं कालो ।

सो द्विविहभेयमिण्णो परमट्ठो होइ ववहाणे ॥ ३०९ ॥

वर्तनागुणयुत्तानां द्रव्याणां भवति कारणं कालः ।

स द्विविधभेदाभिन्नः परमार्थो भवति व्यवहारः ॥

परमट्ठो कालाणु लोयपदेसे हि संटिया जियं ।

एवकेवके एवकेवका अपएणा रयणराणिव्व ॥ ३१० ॥

परमार्थः कालाणवः लोकप्रदेशे हि संश्रियता निव्वं ।

एवैकस्मिन् एवैका अप्रदेशा रत्तानां गणिव्वि ॥

वट्ठणवालो समओ पुग्गलपरमाणुवाण संजाओ ।

ववहारस्स थ भुवखो उप्पण्णो तीद भावी न ॥ ३११ ॥

वर्तनाकालः समयः पुद्गलपरमाणूनां संज्ञानः ।

व्यवहारस्य च सूक्ष्मः लघ्वनानोऽतीतो भावी नः ॥

तेमिं पि थ समयाणं संझारहियाण आवली होई ।

संखेज्जावलिगुणिओ उन्मानो होई जियदिट्ठो ॥ ३१२ ॥

सत्तुस्सासे थोओ सत्तथोएहिं होइ लओ इक्को ।

अट्टत्तीसद्धलवा णाली वेणालिया मुहुत्तं तु ॥ ३१३ ॥

सप्तोच्छ्वासेन स्तोकः सप्तस्तोकैः भवति लव एकः ।

अष्टत्रिंशदर्धलवा नाली द्विनालिका मुहूर्तस्तु ॥

तीसमुहुत्तो दिवसो पणदहदिवसेहि होइ पक्खं तु ।

विहि पक्खेहि य मासो रिउ एक्का वेहिं मासेहिं ॥३१४॥

त्रिंशन्मुहूर्ते दिवसं पंचदशदिवसैः भवति पक्षस्तु ।

द्वाभ्यां पक्षाभ्यां च मासः ऋतुरेको द्वाभ्यां मासाभ्यां ॥

रिउतियभूयं अयणं अयणजुयलेण होइ वरिसेक्को ।

इय व्यवहारो उत्तो कमेण विद्धिं गओ विविहो ॥ ३१५ ॥

ऋतुत्रिभूतमयनं अयनयुगलेन भवति वर्ष एकः ।

एष व्यवहार उक्तः क्रमेण वृद्धिगतो विविधः ॥

एयं तु दव्वल्लक्कं जिणेहि पंचत्थिकाइयं भणियं ।

वज्जिय कायं कालो कालस्स पएसयं णत्थि ॥ ३१६ ॥

एतत्तु द्रव्यपट्टकं जिनैः पंचास्तिकाधिकं भणितं ।

वर्जयित्वा कायं कालं कालस्य प्रदेशो नास्ति ॥

जं पुण रूवी दव्वं गंधरसफासवण्णसंजुत्तं ।

लहिऊण जीवचिट्ठा कारणयं कम्मवंधस्स ॥ ३१७ ॥

यत्पुना रूपि द्रव्यं गन्धरसस्पर्शवर्णसंयुक्तं ।

लब्ध्वा जीवस्थितं कारणं कर्मवन्धस्य ॥

अजीवः ।

सम्मत्सुदवाहं य कस्यायुवसमणगुणसमाउत्तो ।
जो जीवो नो पुण्यं पापं वीवरीयदोसाओ ॥ ३१८ ॥

सम्यक्त्वश्रुतव्रतैः च कप्रायोपशमनगुणसमायुक्तः ।
यो जीवः स पुण्यं पापं विपरीतदोषतः ॥

पुण्यपार्श्वे ।

गिरिणिग्गणइवाहो पविसइ नरम्मि जहाणवरयं ।
लहिऊण जीवचिटा तह कम्मं भावि आसवई ॥ ३१९ ॥

गिरिनिर्गतनदीप्रवाहः प्रविशति नगसि यथानवग्ने ।
लब्ध्वा जीवस्थितं तथा कर्म भावि आनवति ॥

आसवइ सुहेण सुहं असुहं आसवइ असुहजोणण ।
जह णइजलं तलाए नसलं वा णिम्मलं विमई ॥ ३२० ॥

आस्रवति शुभेन शुभं अशुभमान्द्रवति अशुभयेनेन ।
यथा नदीजलं तडाणे नसलं वा निर्मलं विवति ॥

आसवइ जं तु कम्मं मणदयकाएहि गयदोसेहि ।
तं संवरइ णिरुत्तं तिगुत्तिगुत्तो पिरालंदो ॥ ३२१ ॥

जा संकल्पवियप्पो ता कम्मं असुहसुहयदायारं ।
लद्धे सुद्धसहावे सुसंवरो उहयकम्मस्सं ॥ ३२२ ॥

यावत् संकल्पविकल्पः तावत् कर्म अशुभशुभदात् ।
लब्धे शुद्धस्वभावे सुसंवर उभयकर्मणः ॥

णट्ठे मणसंकल्पे इंदियवावारवज्जिए जीवे ।
लद्धे सुद्धसहावे उभयस्स य संवरो होई ॥ ३२३ ॥

नष्टे मनःसंकल्पे इन्द्रियव्यापारवर्जिते जीवे ।
लब्धे शुद्धस्वभावे उभयस्य संवरो भवति ॥

आसन्न-संवरो ।

जीवकम्माण उहयं अण्णोण्णं जो पएसपवेसो हु ।
सो जिणवरेशिं वंधो भणिओ इय विगयमोहेहिं ॥ ३२४ ॥

जीवकर्मणोरुभयोरन्योन्यः यः प्रदेशप्रवेशस्तु ।
स जिनवरैः बन्धो भणित इति विगतमोहैः ॥

जीवपएसेक्केक्के कम्मपएसो हु अंतपरिहीणा ।
होति घणा णिविडभूया सो वंधो होइ णायव्वो ॥ ३२५ ॥

१ अस्य व्याख्या ख-पुस्तके । यावत्कालं बहिर्विषये देहपुत्रकलत्रादीं ममेति रूपं संकल्पं करोति अभ्यन्तरे हर्षविपादरूपं विकल्पं च करोति तावत्कालमनन्तज्ञानादिसमृद्धिरूपमात्मानं हृदये न जानाति । यावत्कालमिदंभूतं आत्महृदये न स्फुरति तावत्कालं शुभाशुभजनकं कर्म करोति ।

जीवप्रदेशे एकैकरिम्न् कर्मप्रदेशा हि अन्तपरिहानाः ।

भवंति घना निविडभूताः स वंधो भवति ज्ञातव्यः ॥

अन्धि ह्य अणाइभूवो वंधो जीवन्म्य विविहकम्सेण ।

तन्सोदण्ण जायइ भावो पुण रायदोसमओ ॥ ३२६ ॥

अस्त्यनादिभूतां वन्धो जीवन्म्य विविधकर्मणा ।

तस्योदयेन जायते भावः पुना रागद्वेषमयः ॥

भावेण तेण पुणरवि अणो बहु पुग्गला ह्य लग्गंति ।

जह तुप्पियम(प)त्तन्म्य य णिविडा रेणुच्च लग्गंति ॥३२७॥

भावेन तेन पुनरपि अन्ये कथयः पुद्गला हि लग्गन्ति ।

यथा घृतपात्रस्य च निविडा रेणवो लग्गन्ति ॥

एवकम्ममाण वद्धं कम्मं जीवेण मज्जभेण्णिं ।

परिणवइ आउकम्मं वद्धं भूयाउसेत्सेण ॥ ३२८ ॥

एकसमयेन वद्धं कर्म जीवेन मज्जभेदेः ।

परिणमति आयुःकर्म वद्धं भूतासुःसेत्सेण ॥

सो वंधो चउभेओ णायव्वो होइ तुत्तनिदिट्ठो ।

पयडिद्विदिअणुभासो पण्णवंधो पुण कहिओ ॥ ३२९ ॥

स कथयधुर्भेदो ज्ञातव्यो भवति सूत्रनिर्विद्यः ।

प्रकृतिरिष्यत्सुभानप्रदेशावयवः पुन कथितः ॥

णाणाण दंसणाण आवरणं देवर्षीय मोहणियं ।

आउस्स णाम गोदं अंतगयाणि पयडीओ ॥ ३३० ॥

णाणावरणं कर्म पंचविहं होइ सुत्तणिदिट्ठं ।

जह पडिमोवरि खित्तं छायाणयं होइ कप्पडयं ॥ ३३१ ॥

ज्ञानावरणं कर्म पंचविधं भवति सूत्रनिर्दिष्टं ।

यथा प्रतिमोपरि क्षित्तं छादनकं भवति कर्पटकम् ॥

दंसणआवरणं पुण जह पडिहारो त्रिणिवइ वारम्मि ।

तं णवविहं पउत्तं फुडत्थवाईहिं सुत्तम्मि ॥ ३३२ ॥

दर्शनावरणं पुनः यथा प्रतिहारो वारयति द्वारे ।

तन्नवविधं प्रोक्तं स्फुटवादिभिः सूत्रे ॥

मोहेइ मोहणीयं जह मइरा अहव कोदमां पुरिसं ।

तह अडवीसविभिण्णं णायव्वं जिणुवएसेण ॥ ३३३ ॥

मोहयति मोहनीयं यथा मदिरा अथवा कोद्वं पुरुषं ।

तथा अष्टाविंशतिविभिन्नं ज्ञातव्यं जिनोपदेशेन ॥

महुलित्तखग्गसरिसं दुविहं पुण होइ वेयणीयं तु ।

सायासायविभिण्णं सुहदुक्खं देइ जीवस्स ॥ ३३४ ॥

मधुलित्तखद्गसदृशं द्विविधं पुनः भवति वेदनीयं तु ।

सातासातविभिन्नं सुखदुःखं ददाति जीवाय ॥

आऊ चउप्पधारं सुरणारयमणुयतिरियगईवद्धं ।

हडिखित्तपुरिसतुल्लं जीवे भवधारणसमत्थं ॥ ३३५ ॥

आयुः चतुष्प्रकारं सुरनारकमनुष्यतिर्यगतिवद्धं ।

हलिक्षित्पुरुषतुल्यं जीवे भवधारणसमर्थं ॥

चित्तपटं व विचित्तं णाणाणामेहिं^१ वत्तणं णामं ।
तेणवइ संखगुणियं गइजाइसरीरआईहिं ॥ ३३६ ॥

चित्रपटवत् विचित्रं नानानामभिः वर्तनं नाम ।

त्रिनवतिः संख्यगुणितं गतिजातिशरीरादिभिः ॥

गोदं कुलालसरिसं गिच्चुच्चकुलेसु पायणे दच्छं ।
घटरंजणाइकरणे कुंभयंकारो जहा गिउणो ॥ ३३७ ॥

गोत्रं कुलालसदृशं नीचोच्चकुलेषु प्रापणे दक्षं ।

घटरञ्जनादिकरणे कुंभकारो यथा निपुणः ॥

जह भंडयारिपुरिसो धणं णिवारेइ राइणा दिण्णं ।
तह अंतरायकम्मं णिवारणं कुणइ लद्धीणं ॥ ३३८ ॥

यथा भाण्डागारिपुरुषः धनं निवारयति राज्ञा दत्तं ।

तथान्तरायकर्म निवारणं करोति लब्धीनां ॥

तं पंचभेयउत्तं दाणे लाहे य भोइ उवभोए ।
तह वीरिएण भणियं अंतरायं जिणिंदेहिं ॥ ३३९ ॥

तत्पंचभेदयुक्तं दाने लाभे च भोगे उपभोगे ।

तथा वीर्येण भणितं अन्तरायं जिनेन्द्रैः ॥

एसो पयहीवंधो अणुभागो होइ तस्स सत्तीए ।
अणुभवणं जं तीवे^२ तिव्वं मंदे^३ मंदाणुस्सवेण ॥ ३४० ॥

एषः प्रकृतिवन्धोऽनुभागो भवति तस्य शक्त्याः ।
अनुभवनं यत्तीव्रे तीव्रं मन्दे मन्दानुरूपेण ॥

प्रकृत्यनुभागवन्वौ ।

तिष्ठं खलु पठमाणं उक्कस्सं अंतराड्यस्सेव ।
तीसं कोडाकोडीसाधारणामाणमेव ठिदी ॥ ३४१ ॥

तिसृणां खलु प्रथमानामुत्कृष्टमन्तरायस्य च ।

त्रिंशत्कोटाकोटिसागरनाम्नामेव स्थितिः ॥

मोहस्स सत्तरी खलु वीसं पुण होइ णामगोत्तस्स ।
तेत्तीससागराणं उवमाओ आउसस्सेय ॥ ३४२ ॥

मोहस्य सप्ततिः खलु विंशतिः पुनर्भवति नामगोत्रयोः ।

त्रयस्त्रिंशत्सागराणां उपमा आयुष एव ॥

उत्कृष्टम् ।

वारसय वेयणीए णामागोदे य अट्ट य मुहुत्ता ।
भिण्णमुहुत्तं तु ठिदि सैसाणं सा वि पंचण्हं ॥ ३४३ ॥

द्वादश वेदनीये नामगोत्रयोश्च अष्टौ मुहूर्ताः ।

भिन्नमुहूर्तस्तु स्थितिः शेषाणां सापि पंचानां ॥

जघन्या, इति स्थितिबन्धः ।

पुञ्जकयकम्मसडणं णिज्जरा सा पुणो हवे दुविहा ।
पढमा विवायजाया विदिया अविवायजाया य ॥ ३४४ ॥

पूर्वकृतकर्मसटनं निर्जरा सा पुनः भवति द्विविधा ।
प्रथमा विपाकजाता द्वितीया अविपाकजाता च ॥

कालेण उवाएण य पचंति जहा वणस्सुईफलाइं ।
तह कालेण तवेण य पचंति कयाइं कम्माइं ॥ ३४५ ॥
कालेनोपायेन च पचन्ति यथा वनस्पतिफलानि ।
तथा कालेन तपसा च पचन्ति कृतानि कर्माणि ॥

निर्जरा ।

णिस्सेस कम्ममुक्खो सो मुक्खो जिणवरोहिं पणत्तो ।
रायद्दोसाभावे सहावथक्कस्स जीवस्स ॥ ३४६ ॥

निःशेषकर्ममोक्षः स मोक्षः जिनवरैः प्रज्ञतः ।

रागद्वेषाभावे स्वभावस्थितस्य जीवस्य ॥

सो पुण दुविहो भणिओ एक्कदेशो य सव्वमोक्खो य ।
देशो चउघाइखए सव्वो णिस्सेसणाभम्मि ॥ ३४७ ॥

स पुनः द्विविधो भणित एकदेशश्च सर्वमोक्षश्च ।

देशः चतुर्धातिक्षये सर्वः निःशपनाद्यो ॥

मोक्षः ।

एए सत्तपयारा जिणदिट्ठा भासिया भए तच्चा ।
सदहइ जो हु जीवो सम्मादिट्ठी हवे सो हु ॥ ३४८ ॥

एतानि सप्तप्रकाराणि जिनदृष्टानि भाषितानि मया तत्त्वानि ।

श्रद्धधाति यस्तु जीवः सम्यग्दृष्टिः भवेत् स तु ॥

अविरियसम्मादिद्वी एसो उत्तो मया समासेण ।

एत्तो उड्डुं वोच्छं समासदो देसविरदो य ॥ ३४९ ॥

अविरतसम्यग्दृष्टिः एष उक्तः मया समासेन ।

इत ऊर्ध्वं वक्ष्ये समासतो देशविरतं च ॥

इत्यविरतगुणस्थानं चतुर्थं ।

पंचमयं गुणठाणं विरयाविरउत्ति णामयं भणियं ।

तत्थ वि खयउवसमिओ खाइओ उवसमो चेव ॥ ३५० ॥

पंचमकं गुणस्थानं विरताविरत इति नामकं भणितं ।

तत्रापि क्षायोपशमिकः क्षायिकः औपशमिकश्च ॥

जो तसवहाउविरओ णो विरओ तह य थावरवहाओ ।

एक्कसमयम्मि जीवो विरयाविरउत्ति जिणु कहई ॥ ३५१ ॥

यस्त्रसवधाद्विरतो नो विरतस्तथा च स्थावरववात् ।

एकसमये जीवो विरताविरत इति जिनः कथयति ॥

इलयाइथावराणं अत्थि पवित्तिरि विरइ इयराणं ।

मूलगुणाट्टपउत्तो वारहवयभूसिओ हु देसजई ॥ ३५२ ॥

इलादिस्थावराणामस्ति प्रवृत्तिरिति विरतिरितरेषां ।

मूलगुणाट्टप्रयुक्तो द्वादशव्रतभूपितो हि देशयतिः ॥

हिंसाविरई सच्चं अदत्तपरिवज्जणं च शूलवयं ।

परमहिलापरिहारो परिमाणं परिग्गहस्सेव ॥ ३५३ ॥

हिंसाविरतिः सत्यं अदत्तपरिवर्जनं च स्थूलव्रतं ।

परमहिलापरिहारः परिमाणं परिग्रहस्यैव ॥

दिसिविदिसिपञ्चखाणं अणत्थदंडाण होइ परिहारो ।

भोओपभोयसंखा एए हु गुणव्वया तिणि ॥ ३५४ ॥

दिग्विदिक्प्रत्याख्यानं अनर्थदण्डानां भवति परिहारः ।

भोगोपभोगसंख्या एतानि हि गुणव्रतानि त्रीणि ॥

दंवे थुवइ तियाले पव्वे पव्वे सुपोसहोवासं ।

अतिहीण संविभागो मरणंते कुणइ सल्लिहणं ॥ ३५५ ॥

देवान् स्तौति त्रिकाले, पर्वणि पर्वणि सुप्रोपधोपवासः ।

अतिथानां संविभागः, मरणान्ते करोति सहेखनां ॥

महुमज्जसंसविरई चाओ पुण उंवराण पंचण्हं ।

अट्टेदे मूलगुणा हवंति फुडु देसविरयम्मि ॥ ३५६ ॥

मधुमद्यमांसविरतिः त्यागः पुनः उदम्बराणां पंचानां ।

अष्टावैते मूलगुणा भवन्ति स्फुटं देशविरते ॥

अट्टरउदं झाणं भदं अत्थित्ति तम्मिह गुणठाणे ।

वहुआरंभपरिग्गहजुत्तस्स य णत्थि तं धम्मं ॥ ३५७ ॥

आर्त्तरौद्रं ध्यानं भद्रं अस्तीति तरिन्नु गुणस्थाने ।

वहारग्भपरिग्रहयुक्तस्य च नास्ति तद्धर्मन् ॥

धम्मोदण्ण जीवो असुहं परिचयइ सुहगई लेई ।

कालेण सुवसु मिल्हइ इंदियवलक्कारणं जाणि ॥ ३५८ ॥

१ अस्यात्रे इत्तं च श्लोकः ख-पुस्तके ।

मित्रे कलत्रे विभवे तन्त्रे सौख्ये गृहे यत्र विहाय मोहं ।

स्मर्यते पंचपदं स्वचित्ते सहेखना का विहिता मुनीन्द्रैः ॥ १ ॥

धर्मादयेन जीवोऽशुभं परित्यजति शुभगतिं प्राप्नोति ।
कालेन सुखं मिलति इन्द्रियत्रलकारणं जानीहि ॥

इद्विओए अइ उप्पज्जइ तह अणिद्वसंजोए ।

रोयपकोवे तइयं णियाणकरणे चउत्थं तु ॥ ३५९ ॥

इष्टवियोगे आर्ते उत्पद्यते तथा अनिष्टसंयोगे ।

रोगप्रकोपे तृतीयं निदानकरणे चतुर्थं तु ॥

अद्वज्जाणपउत्तो वंधइ पावं णिरंतरं जीवो ।

मरिउण य तिरियगई को वि णरो जाइ तज्जाणे ॥३६०॥

आर्तध्यानयुक्तो बध्नाति पापं निरन्तरं जीवः ।

मृत्वा च तिर्यग्गतिं कोऽपि नरो याति तद्ग्रयाने ॥

रुदं कसायसहियं जीवो संभवइ हिंसयाणंदं ।

मोसाणंदं विदियं तेयाणंदं पुणो तइयं ॥ ३६१ ॥

रुद्रं कपायसहितं जीवः संभवति हिंसानन्दं ।

मृपानन्दं द्वितीयं स्तेयानन्दं पुनस्तृतीयं ॥

हवइ चउत्थं ज्ञाणं रुदं णामेण रक्खणाणंदं ।

जस्स थ माहप्पेण थ णरयगईभायणो जीवो ॥ ३६२ ॥

भवति चतुर्थं ध्यानं रौद्रं नाम्ना रक्षणानन्दं ।

यस्य च माहात्म्येन नरकगतिभाजनो जीवः ॥

गिहवाचाररयाणं गेहीणं इंदियत्थपरिकलियं ।

अद्वज्जाणं जायइ रुदं वा मोहच्छणाणं ॥ ३६३ ॥

गृहव्यापाररतानां गेहिनामिन्द्रियार्थपरिकल्पितं ।

आर्तध्यानं जायते रौद्रं वा मोहच्छन्नानां ॥

ज्ञाणेहिं तेहिं पावं उप्पणं तं खवइ भद्वज्ञाणेण ।

जीवो उवममजुत्तो देसजई णाणसंणणो ॥ ३६४ ॥

ध्यानैस्तैः पापं उत्पन्नं तत्क्षपयति भद्रध्यानेन ।

जीव उपशमयुक्तो देशयतिः ज्ञानसम्पन्नः ॥

भद्रस्य लक्ष्मणं पुन धर्मं चिन्तेद् भोगपरिमुक्तो ।

चित्तिय धर्मं सेवद् पुनरपि भोगं जहिच्छाए ॥ ३६५ ॥

भद्रस्य लक्षणं पुनः धर्मं चिन्तयति भोगपरिमुक्तः ।

चिन्तयित्वा धर्मं सेवते पुनरपि भोगान् यथेच्छया ॥

धम्मज्झाणं भणियं आणापायाविवायविचयं च ।

संठाणं विचयं तह कथियं ज्ञाणं समासेण ॥ ३६६ ॥

धर्म्यध्यानं भणितं आज्ञापायविपाकविचयं च ।

संस्थानविचयं तथा कथितं ध्यानं समासेन ॥

छद्द्वणवपयत्था सत्तं वि तच्चाइं जिणवराणाए ।

चित्तइ विसयविरत्तो आणाविचयं तु तं भणियं ॥ ३६७ ॥

पद्द्रव्यनवपदार्थान् सत्तापि तत्त्वानि जिनवराज्ञया ।

चिन्तयति विषयविरक्त आज्ञाविचयं तु तद्भणितं ॥

असुहकम्मस्स णासो सुहस्स वा हवेइ केणुवाएण ।

इय चित्तंतस्स हवे अपायविचयं परं ज्ञाणं ॥ ३६८ ॥

अशुभकर्मणः नाशः शुभस्य वा भवति केनोपायेन ।

एतच्चिन्तयतः भवेत्पायविचयं परं ध्यानं ॥

असुहसुहस्स विवाओ चित्तइ जीवाण चउगइगयाण ।

विवायविचयं ज्ञाणं भणियं तं जिणवर्णिदेहिं ॥ ३६९ ॥

अशुभशुभस्य विपाकः चिन्तयति जीवानामशुभप्रतिगन्तानां ॥

विपाकविचयं ध्यानं भणितं तज्जिनवरेन्दैः ॥

अहउडूतिरियलोए चिंतेइ सपज्जयं ससंठाणं ।

विचयं संठाणस्स य भणियं ज्ञाणं समासेण ॥ ३७० ॥

अधऊर्ध्वतिर्यग्लोकं चिन्तयति सपर्ययं ससंस्थानं ।

विचयं संस्थानस्य च भणितं ध्यानं समासेन ॥

मुक्खं धम्मज्झाणं उच्चं तु पमायविरहिण्णं ठाणे ।

देसविरए पमत्ते उच्चारेणेव णायच्चं ॥ ३७१ ॥

मुख्यं धर्मध्यानमुक्तं तु प्रमादविरहिते स्थाने ।

देशविरते प्रमत्ते उपचारेणैव ज्ञातव्यं ॥

दहलक्खणसंजुत्तो अहवा धम्मोत्ति वणिणओ सुत्ते ।

चिंता जा तस्स हवे भणियं तं धम्मज्ञाणुत्ति ॥ ३७२ ॥

दशलक्षणसंयुक्तोऽथवा धर्म इति वर्णितः सूत्रे ।

चिन्ता या तस्य भवेत् भणितं तद्धर्मध्यानमिति ॥

अहवा वत्थुसहावो धम्मं वत्थू पुणो व सो अप्पा ।

ज्ञायंताणं कहियं धम्मज्झाणं मुणिदेहिं ॥ ३७३ ॥

अथवा वस्तुस्वभावो धर्मः वस्तु पुनश्च स आत्मा ।

ध्यायमानानां तत् कथितं धर्मध्यानं मुनीन्द्रैः ॥

तं फुडु दुविहं भणियं सालंबं तह पुणो अणालंबं ।

सालंबं पंचण्हं परमेट्ठीणं सरूवं तु ॥ ३७४ ॥

तत्स्फुटं द्विविधं भणितं सालम्बं तथा पुनरालम्बं ।

सालंबं पंचानां परमेष्ठीनां स्वरूपं तु ॥

हरिरइयसमवसरणो अट्टमहापाडिहेसंजुत्तो ।

सियकिरण विण्णुंतो ज्ञायच्चो अन्दपरमेट्ठी । ३७५ ॥

हरिरचितसमवशरणोऽष्टमहाप्रातिहार्यसंयुक्तः ।
 सितकिरणेन विस्फुरन् ध्यातव्योऽर्हत्परमेष्ठी ॥
 णट्टकम्मबंधो अट्टगुणट्टो य लोयसिहूरत्यो ।
 सुट्टो णिच्चो सुहमो ज्ञायव्वो सिद्धपरमेष्ठी ॥ ३७६ ॥
 नष्टाष्टकर्मवन्धोऽष्टगुणस्थश्च लोकशिखरस्थः ।
 शुट्टो नित्यः सूक्ष्मः ध्यातव्यः सिद्धपरमेष्ठी ॥
 छत्तीसगुणसमगो णिच्चं आयरइ पंचआयारो ।
 सिस्साणुग्गहकुसलो भणिओ सो नूरिपरमेष्ठी ॥ ३७७ ॥
 षट्तिंशट्टुणसमग्रः नित्यं आचरति पंचाचारं ।
 शिष्यानुग्रहकुशल्यो भणितः स सूरिपरमेष्ठी ॥
 अज्झावयगुणजुत्तो धम्मोवदेसयारि चरियट्टो ।
 णिस्सेसागमकुसलो परमेष्ठी पाठओ ज्ञाओ ॥ ३७८ ॥
 अध्यापनगुणयुत्तो धर्मोपदेशकारी चर्यास्थः ।
 निःशेषागमकुशलः परमेष्ठी पाठको ध्येयः ॥
 उग्गतवतवियगत्तो तियालजोएण गमियअहरत्तो ।
 साहियमोवखस्सपओ ज्ञाओ सो साहुपरमेष्ठी ॥ ३७९ ॥
 उग्रतपस्तपितगात्रः त्रिकालयोगेन गनिताहोरात्रः ।
 साधितमोक्षपथः ध्येयः स साधुपरमेष्ठी ॥
 एवं तं सालंबं धम्मज्झाणं हवेइ णियनेण ।
 ज्ञायंताणं जायइ विणिज्जरा अमुहकम्मापं ॥ ३८० ॥
 एवं तत्सालंबं धर्मध्यानं भवति निदमेन ।
 ध्यायमानानां जायते विनिर्जरा अशुभकर्मणां ॥

जं पुणु वि णिरालंबं तं ज्ञाणं गयपमायगुणठाणे ।
चत्तगेहस्स जायइ धरियंजिणलिंजरूपस्स ॥ ३८१ ॥

यत्पुनरपि निरालंबं तद्भयानं गतप्रमादगुणस्थाने ।
त्यक्तगृहस्य जायते धृतजिनलिंजरूपस्य ॥

जो भणइ को वि एवं अत्थि गिहत्थाण णिच्चलं ज्ञाणं ।
सुद्धं च णिरालंबं ण सुणइ सो आयमो जइणो ॥ ३८० ॥

यो भणति कोऽप्येवं अस्ति गृहस्थानां निश्चलं ध्यानं ।
शुद्धं च निरालंबं न मनुते स आगमं यतीनां ॥

कहियाणि दिट्ठिवाए पडुच्च गुणठाण जाणि ज्ञाणाणि ।
तस्मा स देसविरओ मुक्खं धम्मं ण ज्ञाएई ॥ ३८३ ॥

कथितानि दृष्टिवादे प्रतीत्य गुणस्थानानि जानीहि ध्यानानि ।
तस्मात् स देशविरतो मुख्यं धर्म्यं न ध्यायति ॥

किं जं सो गिहवंतो बहिरंतरगंथपरिमिओ णिच्चं ।
बहुआरंभपउत्तो कह ज्ञायइ सुद्धमप्पाणं ॥ ३८४ ॥

किं यत् स गृहवान् बाह्याभ्यन्तरप्रन्थपरिमितो नित्यं ।
बह्वारम्भप्रयुक्तः कथं ध्यायति शुद्धमात्मानं ॥

घरवावारा केई करणीया अत्थि तेण ते सब्बे ।

ज्ञाणट्ठियस्स पुरओ चिट्ठंति णिमीलियच्छिस्स ॥ ३८५ ॥

गृहव्यापाराणि कियन्ति करणीयानि सन्ति तेन तानि सर्वाणि ।
ध्यानस्थितस्य पुरतः तिष्ठन्ति निमीलिताक्षः ॥

अह टिंकुलिया ज्ञाणं ज्ञायइ अहवा स सोवए ज्ञाणी ।

सोवंतो ज्ञायव्वं ण ठाइ चित्तम्मि वियलम्मि ॥ ३८६ ॥

अथ टिङ्गुलिकं ध्यानं ध्यायति अथवा स स्वप्निति ध्यानी ।

स्वपतः ध्यातव्यं न तिष्ठति चित्ते विकले ॥

झाणाणं संताणं अहवा जाणइ तस्स झाणस्स ।

आलंघणरहियस्स य ण ठाइ चित्तं थिरं जम्हा ॥३८७॥

ध्यानानां सन्तानं अथवा जायते तस्य ध्यानस्य ।

आलंघनरहितस्य च न तिष्ठति चित्तं थिरं यस्मान् ॥

तम्हा सो सालंवं झायउ झाणं पि गिहवई णिच्चं ।

पंचपरमेष्ठीस्सुवं अहवा संतक्खरं तेमिं ॥ ३८८ ॥

तस्मात् स सालंवं ध्यायतु ध्यानमपि गृहपतिर्निव्यं ।

पंचपरमेष्ठिरूपमथवा मंत्राक्षरं तेषां ॥

जइ भणइ को वि एवं गिहवावारेसु वट्टमाणो नि

पुण्णे अम्ह ण कज्जं जं संसारे सुवाडेई ॥ ३८९ ॥

यदि भणति कोऽप्येवं गृहव्यापारेषु वर्तमानोऽपि ।

पुण्येनास्माकं न कार्यं यत्संसारे सुपातयति ॥

मेत्तुणसुण्णास्सुटो मारइ णवलवखमुहुमजीवाई ।

इय जिणवरेहिं भणियं वज्झंतरणिग्गंथस्सेहिं ॥ ३९० ॥

मैथुनसंहास्सुटो मारयति अनवलकव्यदूकनजीवान् ।

एतज्जिनदोः भणितं दाह्याभ्यन्तरनिर्ग्रन्थस्यैः ॥

गेहे वट्टंतस्स य वावारसुयाईं सुया कुपंतम्म ।

आसवइ कम्ममसुहं अट्टरउहे पवत्तम्म ॥ ३९१ ॥

गेहे वर्तमानस्य च व्यापारगतानि मदा कुर्वतः ।

आस्रवति कर्माशुभं आर्तगोदप्रवृत्तस्य ।

जह गिरिणई तलाए अणवरयं पविसएँ सलिलपरिपुण्णं ।

मणवयतणुजोएहिं पविसइ असुहेहिं तह पावं ॥ ३९२ ॥

यथा गिरिनदी तडागेऽनवरतं प्रविशति सलिलपरिपूर्णं ।

मनवचनतनुयोगैः प्रविशति अशुभैः तथा पापं ।

जाम णं छंडइ गेहं ताम णं परिहरइ इंतयं पावं ।

पावं अपरिहरंतो हेओ पुण्णस्स मा चयउ ॥ ३९३ ॥

यावन्न त्यजति गृहं तावन्न परिहरति एतत्पापं ।

पापमपरिहरन् हेतुं पुण्यस्य मा त्यजतु ॥

आ(मा)मुक्क पुण्णहेउं पावस्सासवं अपरिहरंतो य ।

वज्झइ पावेण णरो सो दुग्गइ जाइ मरिऊणं ॥ ३९४ ॥

मा त्यज पुण्यहेतुं पापस्यास्त्रवमपरिहरंश्च ।

बध्यते पापेन नरः स दुर्गतिं याति मृत्वा ॥

पुण्णस्स कारणाइं पुरिसो परिहरउ जेण गियचित्तं ।

विसयकसायपउत्तं णिग्गेहियं हयपमाण ॥ ३९५ ॥

पुण्यस्य कारणानि पुरुषः परिहरतु येन निजचित्तं ।

विषयकपायप्रयुक्तं निगृहीतं हतप्रमादेन ॥

गिहवावारविरत्तो गहियंजिणलिंग रहियसपमाओ ।

पुण्णस्स कारणाइं परिहरउ सयात्रि सो पुरिसो ॥ ३९६ ॥

गृहव्यापारविरक्तो गृहीतजिनलिंगः रहितस्वप्रमादः ।

पुण्यस्य कारणानि परिहरतु सदापि स पुरुषः ॥

असुहस्स कारणेहिं य कम्मच्छक्केहि णिच्च वटंतो ।

पुण्णस्स कारणाइं बंधस्स भएण णिच्छंतो ॥ ३९७ ॥

अशुभस्य कारणे च कर्मपट्टे^क नित्यं वर्तमानः ।

पुण्यस्य कारणानि बन्धस्य भयने नेच्छन् ॥

ण मृणइ इय जो पुरिसो जिणकहियपयत्थणवसरुवं तु ।

अप्पाणं सुयणमज्जे हासस्स य ठाणयं कुणई ॥ ३९८ ॥

न मनुते एतत् यः पुरुषो जिनकथितपदार्थनवस्वरूपं तु ।

आत्मानं मुजनमध्ये हास्यस्य च स्थानकं करोति ॥

पुण्यं पुञ्चायरिया द्रुविहं अक्खंति सुत्तउत्तीण् ।

मिच्छपउत्तेण कयं विवरीयं सम्मजुत्तेण ॥ ३९९ ॥

पुण्यं पूर्वाचार्या द्विविधं कथयन्ति नृत्रोक्तया ।

मिथ्यात्वप्रयुक्तेन कृतं विपरीतं सम्यक्प्रयुक्तेन ॥

मिच्छादिद्वीपुण्यं फलइ कुदेवेसु कुणरतिरिण्णु ।

कुच्छियभोगधरासु य कुच्छियपत्तस्स दाणेण ॥ ४०० ॥

मिथ्यादृष्टिपुण्यं फलति कुदेवेषु कुनगतिर्यक्षु ।

कुत्सितभोगधरासु च कुत्सितपात्रस्य दानेन ॥

जइ वि सुजायं वीयं ववन्नायपउत्तओ विजइ कमओ ।

कुच्छियखेत्ते ण फलइ तं वीयं जह तहा दाणं ॥ ४०१ ॥

यद्यपि सुजातं वीजं व्यवनायप्रयुक्तो वपति ह्ययकः ।

कुत्सितक्षेत्रे न फलति तद्वीजं यथा तथा दानं ॥

जइ फलइ वह वि दाणं कुच्छियजाईहिं कुच्छियमरीरं ।

कुच्छियभोए दाउं पुणरवि पाडेइ संसारे ॥ ४०२ ॥

यदि फलति कथमपि दानं कुत्सितजादिषु कुत्सितक्षेत्रे ।

कुत्सितभोगान् दत्त्वा पुनरपि पातवति संसारे ॥

संसारचक्रवाले परिभ्रमंतो ह्यु जीणिलक्खाइं ।

पावइ विवहे दुक्खे विरयंतो विविहकम्मोइं ॥ ४०३ ॥

संसारचक्रवाले परिभ्रमन् हि योनिलक्षाणि ।

प्राप्नोति विविधान् दुःखान् विरचयन् विविधकर्माणि ॥

सम्मादिट्ठीपुण्णं ण होइ संसारकारणं णियमा ।

मोक्खस्स होइ हेउं जइ वि णियाणं ण सो कुणईं ॥ ४०४ ॥

सम्यग्दृष्टिपुण्यं न भवति संसारकारणं नियमात् ।

मोक्षस्य भवति हेतुः यदि च निदानं न स करोति ॥

अकइयैणियाणसम्मो पुण्णं कारुण णाणचरणट्ठो ।

उप्पज्जइ दिवलोए सुहपरिणामो सुलेशो वि ॥ ४०५ ॥

अकृतनिदानसम्यग्दृष्टिः पुण्यं कृत्वा ज्ञानचरणस्थः ।

उत्पद्यते दिवलोके शुभपरिणामः सुलेश्योऽपि ॥

अंतरमुहुत्तमज्जे देहं चइऊण माणुसं कुणिमं ।

गिण्हइ उत्तमदेहं सुचरियकम्माणुभावेण ॥ ४०६ ॥

अन्तर्मुहूर्तमध्ये देहं त्यक्त्वा मानुषं कुणिमं ।

गृह्णाति उत्तमदेहं सुचरितकर्मानुभावेन ॥

चम्मं रुहिरं मंसं मेज्जा अट्ठिं च तह वसा सुक्कं ।

सिंभं पित्तं अंतं मुत्त पुरीसं च रोमाणि ॥ ४०७ ॥

१ अंगाई ख. । २ अस्मादग्रे “ उक्तं च ” पाठः ख-पुस्तके ।

जीवं तह परिणामं कम्मंगइ विगहिदियं,

रायदोसं च कमे भमेइ संसारचक्कम्मि ॥ १ ॥

पुस्तकानुसारी पाठः । ३ अकय नियाणो सम्मो ख. । ४ णिष्ठीदिंभ ख. ।

चर्म लघिरं मांसं मेदोऽस्थिश्च तथा वसा शुक्रं ।

श्लेष्म पित्तं अंत्रं मूत्रं पुर्गपं च रोमाणि ॥

णहदंतगिरण्हासुलालां येउयं च णिमिय आलस्यं ।

णिदा तण्हा य जरा अंगे देवाण ण हि अन्थि ॥ ४०८ ॥

नखदन्तशिरानानलालाः स्वेदक च निमेषं आलस्य ।

निद्रा तृष्णा च जरा अङ्गे देवानां न हि नान्ति ॥

सुइ अमलो वरवर्णो देहो सुहकामगंधमंपणो ।

वालरवितेयगरिभो चारुमरुयो मया तरुगो ॥ ४०९ ॥

शुचिः अमलो वरवर्णः देहः सुभस्पर्शगन्धमस्पन्नः ।

वालरवितेजसदृशः चारुस्वरूपः सदा तरुगः ॥

अणिमां महिमा लघिमा पावइ पागम्म तद्द य ईमत्तं ।

वसयत्त कामरुवं एत्तियहि गुणेहि संजुत्तो ॥ ४१० ॥

अणिमा महिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं तथा चेदित्थ ।

वदित्थं कामरूपं एतः गुणैः सयुक्तः ॥

देवाण होइ देहो अइउत्तमेण पुग्गलेश संपुष्पो ।

सहजाहरणणिउत्तो अइरम्मो होइ पुष्पेय ॥ ४११ ॥

देवानां भवति देहोऽत्युत्तमेन पुद्गलेन सम्पूर्णः ।

सहजाहरणनियुक्तोऽतिरम्यो भवति पुण्येन ॥

उप्पण्णो कणयमए कायक्कंतिहिं भासियं भवणे ।

पेच्छंतो रयणमयं पासायं कणयदित्तिहं ॥ ४१२ ॥

उत्पन्नः कनकमये कायकान्तिभिः भासिते भवने ।

पश्यन् रत्नमयं प्रासादं कनकदीप्तिम् ॥

अणुकूलं परियणयं तरलियणयणं च अच्छराणिवहं ।

पिच्छंतो णमियसिरं सिरकइयकरंजली देवे ॥ ४१३ ॥

अनुकूलं परिजनकं तरलितनयनं च अप्सरोनिवहं ।

पश्यन् नमितशीर्षान् शिरःकृतकराञ्जलीन् देवान् ॥

णिसुणंतो थोत्तसए सुरवरसत्थेण विरइए ललिए ।

तुंबुरुगाइयगीए वीणासद्देण सुइसुहए ॥ ४१४ ॥

निःशृण्वन् स्तोत्रान् सुरवरसार्थेन विरचितान् लळितान् ।

तुम्बुरुगीतगीतान् वीणाशब्देन श्रुतिसुखदान् ॥

चित्तइ किं एवडुं मज्झं पहुत्तं इमं पि किं जायं ।

किं ओ लग्गइ एसो अमरगणो विणयसंपण्णो ॥ ४१५ ॥

चिन्तयति किमेतावन्मम प्रभुत्वं इदमपि किं जातं ।

किमुत्त लगति एपः अमरगणः विनयसम्पन्नः ॥

को हं इह कस्साओ केण विहाणेण इयं गहं पत्तो ।

तविओ को उग्गतवो केरिसियं संजमं विहियं ॥ ४१६ ॥

कोऽहं इह कथमागतः केन विधानेन इमं गृहं प्राप्तः ।

तपितं किमुप्रतपः कीदृशं संयमं विहितं ॥

किं द्राणं मे दिण्णो केरियपत्ताण काय सुभत्तीए ।

जेणाहं कयपुण्णो उप्पण्णो देवलोयम्मि ॥ ४१७ ॥

किं दानं मया दत्तं कीदृशपात्राणां कया सुभक्त्या ।

येनाहं कृतपुण्यः उत्पन्नो देवलोके ॥

इय चिंततो पसरइ ओहीणाणं तु भयम्हावेण ।

जाणइ नो आग्निभवं विहियं धम्मप्पहावं च ॥ ४१८ ॥

इति चिन्तयन् प्रसारयति अवच्छिन्नं तु भयम्भवेन ।

जानाति न अर्तान्भव विहितं धर्मप्रभावं च ॥

पुणरवि तमेव धम्मं मण्णा नदइइ नम्मदिही नो ।

वंदइ जिणवरणं णंदिमरपइइमव्वाइं ॥ ४१९ ॥

पुनरपि तमेव धर्मं मनसा श्रुत्यानि नमस्कृतिः सः ।

वन्दते जिनवरान् नन्दीश्वरप्रभृतिमर्षान् ॥

इय बहुकालं सग्गे भोगं भुंजंतु विविहम्मणीयं ।

चइउण आउमखए उप्पज्जइ मच्चलोयम्मि ॥ ४२० ॥

इति बहुकालं स्वर्गे भोगं भुञ्जानः विविधमर्षायं ।

च्युत्वा वायुःक्षये उत्पद्यते मर्त्यलोके ॥

उत्तमबुले महंतो बहुजणमणीयं नंपयापउरे ।

होउण अहियरुवो वलजोच्चणरिद्धिसंहुत्ता ॥ ४२१ ॥

तत्रापि विविधान् भोगान् नरक्षेत्रभवाननुपमान् परमान् ।
भुक्त्वा निर्विण्णः संयमं चैव गृह्णाति ॥

लद्धं जइ चरमतणु चिरकयपुर्णणेण सिञ्जए णियमा ।
पाविय केवलणाणं जहखाइयसंजयं सुद्धं ॥ ४२३ ॥

लब्धं यदि चरमतनु चिरकृतपुण्येन सिद्धयति नियमात् ।
प्राप्य केवलज्ञानं यथाख्यातसंयतं शुद्धं ॥

तम्हा सम्मादिट्ठी पुण्णं मोक्खस्स कारणं हवई ।
इय णाऊण गिहत्थो पुण्णं चायरउ जत्तेण ॥ ४२४ ॥

तस्मात्सम्यग्दृष्टेः पुण्यं मोक्षस्य कारणं भवति ।
इति ज्ञात्वा गृहस्थः पुण्यं चार्जयतु यत्नेन ॥

पुण्णस्स कारणं फुडु पढमं ता हवइ देवपूया य ।
कायव्वा भत्तीए सावयवग्गेण परमार्यं ॥ ४२५ ॥

पुण्यस्य कारणं स्फुटं प्रथमं सा भवति देवपूजा च ।
कर्तव्या भक्त्या श्रावकवर्गेण परमया ॥

फासुयजलेण ण्हाइय णिवसिथ वत्थाइं गंपि तं ठाणं ।
इरियावहं च सोहिय उवचिसिथं पडिमयासेणं ॥ ४२६ ॥

प्रासुकजलेन स्नात्वा निवेश्य वस्त्राणि गन्तव्यं तत्स्थानं ।
इर्यापथं च शोधयित्वा उपविश्य प्रतिमासनेन ॥

पुज्जाउवयरणाइ य पासे सण्णिहिय मंतपुव्वेण ।
ण्हाणेणं ण्हाइत्ता आचमणं कुणउ मंतेण ॥ ४२७ ॥

पूजोपकरणानि च पार्श्वे सन्निधाय मंत्रपूर्वेण ।
स्तानेन स्नात्वा आचमनं करोतु मंत्रेण ॥

आसणठाणं किञ्चा सम्मत्तपुव्वं तु झाङ्ग अण्णा ।
सिहिमंडलमज्झन्त्यं जालामयजलियणियदेहं ॥ ४२८ ॥

आसनस्थानं कृत्वा सम्यक्त्वपूर्थं तु ध्यायतु आन्मानं ।
शिखिमण्डलमध्यस्थं ज्वालाशतज्वलितनिजदेहं ॥

पावेण सह सदेहं ज्ञाणे डज्झंतयं खु चिंतंतो ।
बंधुल संतीमुद्दा पंचपरमेष्ठिणामाय ॥ ४२९ ॥

पापेन सह स्वदेहं ध्याने दृष्टमानं नृत्तु चिन्तयन् ।
बन्धातु शान्तिमुद्रां पंचपरमेष्ठिनामानं ॥

अमयवरखरे णिवेसुल पंचसु ठाणेनु निगनि धरिउण ।
सा मुद्दा पुणु चिंतउ धाराहिं सवतयं अमयं ॥ ४३० ॥

अमृताक्षरं निवेशयतु पंचसु स्थानेऽह शिखि धृत्वा ।
तां मुद्रां पुनः चिन्तयतु धाराभिः स्रवदसृतं ॥

पावेण सह शरीरं दडु जं आनि ज्ञापजलपेण ।
तं जायं जं छारं पवखालउ तेण संतेण ॥ ४३१ ॥

पापेन सह शरीरं दग्धं यत् क्षामीन् ध्यानव्यवहरेण ।
तज्जातं यत्क्षारं प्रक्षालयतु तेन संश्लेष ॥

पडिदिवसं जं पावं पुरिसो आमवइ विविहजोयण ।
तं णिदइ णिरुत्तं तेण ज्ञाणेण संहुत्तां ॥ ४३२ ॥

जं सुद्धो तं अप्पा सकायरहिओ य कुणइ ण हु किं पि ।
तेण पुणो णियदेहं पुण्णण्वं चिंतए ज्ञाणी ॥ ४३३ ॥

यः शुद्धः आत्मा स्वकायरहितश्च करोति न हि किमपि ।

तेन पुनर्निजदेहं पुण्यार्णवं चिन्तयेत् ध्यानी ॥

उट्ठाविऊण देहं संपुण्णं कोडिचंदसंकासं ।

पच्छा सयलीकरणं कुणओ परमेट्टिमंतेण ॥ ४३४ ॥

उत्थाय देहं सम्पूर्णं कोटिचन्द्रसंकाशं ।

पश्चाच्छकलीकरणं करोतु परमोष्टिमंत्रेण ॥

अहवा खिप्पैउ सा(से)हाँ णिस्सेउ करंगुलीहिं वामेहिं ।

पाए णाही हियए मुहे य सीसे य ठविऊणं ॥ ४३५ ॥

अथवा क्षिपेत् शेषां ? निवेशयतु ? कराङ्गुलैः वामैः ।

पादे नाभ्यां हृदये मुखे च शिरसि च स्थापयित्वा ॥

अंगे णासं किच्चा इंदो हं कप्पिऊण णियकाए ।

कंकण सेहर मुदी कुणओ जण्णोपवीयं च ॥ ४३६ ॥

अंगे न्यासं कृत्वा इन्द्रोऽहं कल्पयित्वा निजकाये ।

कंकणं शेखरं मुद्रिकां कुर्यात् यज्ञोपवीतं च ॥

पीठं मेरुं कप्पिय तस्सोवरि ठाविऊण जिणपडिमा ।

पच्चक्खं अरहंतं चित्ते भावेउ भावेण ॥ ४३७ ॥

पीठं मेरुं कल्पयित्वा तस्योपरि स्थापयित्वा जिनप्रतिमां ।

प्रत्यक्षं अर्हन्तं चित्ते भावयेत् भावेन ॥

कलसचउक्कं ठाविय चउसु वि कोणेषु णारपरिपुण्णं ।

घयदुद्धदहियभरियं णवसयदलछण्णमुहकमलं ॥ ४३८ ॥

कलशचतुष्कं रथापयित्वा चतुर्ष्वपि कोणेऽर्चनीं परिपूर्णैः ।
वृत्तद्वारदक्षिणतं तदशनदक्षिणतमुत्तममलं ॥

आवाहिऊण देवे सुखद्विहितकालेणैव वस्ते ।
पवणे जग्वे समुत्ती मप्रियमवाहणे समन्थे य ॥ ४३९ ॥

आहूय देवान् सुः रति-जिग्वि-कालैर्देव्यान् वक्ष्यान् ॥
पवनान् यक्षान् मन्त्रिणः मप्रियमवाहनान् मजन्त्रांश्च ॥

दाऊण पुज्जद्वयं वलिचरुयं तह य जणभायं च ।
सव्वेणिं संतेहि य वीयक्यग्णामजुत्तेहिं ॥ ४४० ॥

दक्ष्या पूजाद्वयं वलिचरुयं तथा च यत्तमानं च ।
सर्वेषां मंत्रैश्च वीजाक्षरनामयुक्तैः ॥

उच्चारिऊण संते अहिमेयं कुणउ देवदेवम् ।
गीरवयस्वीरदहियं खिवउ अणुवकमेण जिणनीने ॥ ४४१ ॥

उच्चार्य मंत्रान् अभिषेकं कुर्यात् देवदेवस्य ।
नीरपृतक्षीरदधिकं क्षिपेत् अनुक्रमेण जित्तीर्षिं ॥

पहवणं काऊण पुणो असलं संधोवयं च वंदिजा ।
सवलहणं च जिणिदे कुणउः कलसीमलएहिं ॥ ४४२ ॥

सपत्तं कारयित्वा पुनः अमलं गन्धैर्द्वयं च वन्दित्वा ।
उद्धर्तनं च जिनेन्द्रे कुर्यात् कार्दवीमन्त्रैः ।

आलिहउ मिद्धचक्कं पट्टे दव्वेहिं विण्णुसंवेहि ।
गुरुउवपस्सेण पुहं संपणं सव्वसंतेहिं ॥ ४४३ ॥

आलिहन् मिद्धचक्रं पट्टे द्रव्यैः तिसृगुणैः ।
गुरुवदेवैस्त रुरुटं संपत्तं सर्वसैः ॥

सोलदलकमलमज्जे अरिहं विलिहेह विन्दुकलसहियं ।
वंभेण वेढइत्ता उवरिं पुणु मायवीएण ॥ ४४४ ॥

षोडशदलकमलमध्ये अर्हं विलिखेत् विन्दुकलसहितं ।
ब्रह्मणा वेष्टयित्वा उपरि पुनः मायावीजेन ॥

सोलससरेहि वेढहु देहवियप्पेण अट्टवग्गा वि ।
अट्टहि दलेहि सुपयं अरिहंताणं णमो सहियं ॥ ४४५ ॥

षोडशस्वरैः वेष्टय देहविकल्पेन अष्टवगानिपि ।
अष्टभिर्दलैः सुपदं अर्हद्भयो नमः सहितं ॥

मायाए तं सव्वं तिउणं वेढेह अंकुमारुढं ।
कुणह धरामंडलयं वाहिरयं सिद्धचक्रस्म ॥ ४४६ ॥

मायया तत्सर्वं त्रिगुणं वेष्टयेत् अंकुशाकृद्धं ।
कुर्यात् धरामण्डलकं बाह्यं सिद्धचक्रस्य ॥

इय संखेवं कहियं जो पूयइ गंधदीवधूवेहिं ।
कुसुमेहि जवइ णिचं सो हणइ पुराणयं पावं ॥ ४४७ ॥

इति संक्षेपेण कथितं यः पूजयति गन्धदीपधूपैः ।
कुसुमैः जपति नित्यं स हन्ति पुराणकं पापं ॥

जो पुणु वड्डुद्दो(द्धा)रो सव्वो भणिओ हु सिद्धचक्रस्म ।
सो एइ ण उट्टरिओ इण्हि मामग्गि ण उ तस्स ॥ ४४८ ॥

यः पुनः वृहदुद्धारो सर्वो भणितो हि सिद्धचक्रस्य ।
सोऽत्र न उद्धर्तव्य इदानीं सामग्री न च तस्य ॥

१ सोलदलकमलमज्जे. ख. । २ वेढइत्ता क. । ३ पुराणयं ख. । पुराणकं ।
४ वट्टुद्धारो । ५ इत्थ. ख. ।

जइ पुज्जइ को वि णरो उद्धारित्ता गुरुवएसेण ।

अट्टदलविउणतिउणं चउग्गुणं वाहिरे कंजे ॥ ४४९ ॥

यदि पूजयति कोऽपि नर उद्धार्य गुरुरूपदेशेन ।

अष्टदलद्विगुणत्रिगुणं चतुर्गुणं वाद्ये कंजे ॥

मज्जे अरिहं देवं पंचपरमेष्ठिमंतगंजुत्तं ।

लहिउण कण्णिचाए अट्टदले अट्टदेव्याओ ॥ ४५० ॥

मध्ये अहं देवं पंचपरमेष्ठिमंत्रयुक्तं ।

लिवित्वा कणिकायां अष्टदले अष्टदेवी ॥

मोलहदलेसु मालहविज्जादेव्याउ मंतगद्वियाओ ।

चउर्वासं पत्तंसु य जयस्वा जयर्मा य चउर्वागं ॥ ४५१ ॥

प्रोत्तदलेषु प्रोत्तदलविद्यादेवीः मंत्रनहिताः ।

चतुर्विधास्तौ पत्रेषु च यक्षान् यक्षीष च बुधिसिद्धि ॥

वर्त्तीसा अमरिंदा लिहेह वर्त्तीमकंजपत्तंसु ।

णियणियमंतपउत्ता गणहरवलण वेदंहे ॥ ४५२ ॥

द्वात्रिंशत्तमभेन्द्रान् लिखेत् द्वात्रिंशत्तमभेन्द्रैः ।

निजनिजमंत्रप्रयुक्तान् गणधरदत्तमेत वेदमेतः ।

सत्तप्पयाररेहा सत्त दि विलिहेह वज्जमंजुत्ता ।

चउरंनो चउदाग कुणह पयत्तेण हत्तीए ॥ ४५३ ॥

सप्तप्रकाररेखाः सप्तानि लिखेत् वज्जमंजुत्ताः ।

चतुर्धांपट्टहीगान् हृषीक प्रयत्नेन कुत्तया ॥

एवं जंतुद्धारं इत्थं नइ अविह्वयं मत्ताणिए ।

सेसं विं पि विहापं णाएव्वं सुत्तप्पसाएए ॥ ४५४ ॥

एवं यंत्रोद्धारं इत्थं मया कथितं समासेन ।

शेषं किमपि विधानं ज्ञातव्यं गुरुप्रसादेन ॥

अष्टविहअक्षणाए पुज्जेयव्वं इमं खु णियमेण ।

दव्वेहिं सुअंघेहि य लिहियव्वं अइपवित्तेहिं ॥ ४५५ ॥

अष्टविधार्चनया पूजितव्यं इदं खलु नियमेन ।

द्रव्यैः सुगन्धैश्च लेखितव्यं अतिपवित्रैः ॥

जो पुज्जइ अणवरयं पावं णिदहइ आसिभववद्धं ।

पडिदिणकयं च विहुणइ बंधइ पउराइं पुण्णाइं ॥ ४५६ ॥

यः पूजयति अनवरतं पापं निर्दहति पूर्वभववद्धं ।

प्रतिदिनकृतं च विहन्ति वव्नाति प्रचुराणि पुण्यानि ॥

इह लोए पुण मंता सव्वे सिज्जंति पटियमित्तेण ।

विज्जाओ सव्वाओ हवंति फुडु साणुकूलाओ ॥ ४५७ ॥

इहलोके पुनर्मंत्राः सर्वे सिद्धयन्ति पठितमात्रेण ।

विद्याः सर्वा भवन्ति स्फुटं सानुकूलाः ॥

गहभूयडायणीओ सव्वे णासंति तस्स णामेण ।

णिच्चिसियरणं पयडइ सुसिद्धचक्कप्पहावेण ॥ ४५८ ॥

ग्रहभूतपिशाचिन्यः सर्वा नश्यन्ति तस्य नाम्ना ।

निर्विषीकरणं प्रकटयति सुसिद्धचक्रप्रभावेन ॥

वसियरणं आइड्डी थंभं णेहं च संतिकम्माणि ।

णाणाजराण हरणं कुणेइ तं ज्ञाणजोएण ॥ ४५९ ॥

वशीकरणं आकृष्टिं स्तम्भनं स्नेहं शान्तिकर्म ।

नानाजराणां हरणं करोति तद्व्यानयोगेन ॥

पहरन्ति ण तस्य रिउणा ननु भित्तज्जं च उवयादि ।

पुञ्जा हवेइ लोए सुवत्तहो णस्वरिंदाणं ॥ ४६० ॥

प्रहरन्ति न तस्य रिपवः शत्रुः भित्तव्यं च उपयाति ।

पूजा भवति लोके सुवत्तमां नरवरंन्द्राणां ॥

किं बहुणा उत्तेण य मोक्खंयं मोक्खंयं च लब्धमई जेण ।

केत्तियमत्तं एयं सुसाद्धियं निद्धचक्केण ॥ ४६१ ॥

किं बहुना उत्तेन च मोक्षः मोक्षं च लभ्यते येन ।

कियन्मात्रमेतत्सुसाधितं निद्धचक्केण ॥

अहवा जइ अगमन्थो पुञ्जइ परमेट्ठिपंचकं चक्कं ।

तं पायइं खु लोए इच्छिउयफलदायणं परमं ॥ ४६२ ॥

अथवा यद्यसमर्थः पूजयेन् परमेष्ठिपंचकं चक्रं ।

तन् प्रकटं खलु लोके इच्छितफलदायकं परमं ॥

गिररेहभिण्णसुण्णं चंदुकालाविंदुएण संहुत्तं ।

मेत्ताहिवउवरगयं सुवेट्ठियं कामवीएण ॥ ४६३ ॥

गिररेपाभिलक्ष्यं चन्द्रकालाविन्दुकेन संयुक्तं ।

मात्राधिकोपरिगतं सुवेष्टितं कामवीजेन ॥

वामदिसाई णयारं मयाग्गविमग्गदाहिये भाए ।

वट्ठिअट्ठपत्तवामलं तिउणं वेडह मायाए । ४६४ ॥

वामदिशायां नकारं मयाग्गविमग्गदाहिये भावे ।

वट्टिणपत्रकगतं त्रिभुजं वेष्टयेत् मायाया ॥

पणमेति सुत्तिमेणे अगहंतपयं दालेसु नेत्तेसु ।

अण्णासंडलमज्जे कामहं सुवट्ठियं चक्कं ॥ ४६५ ॥

प्रणव इति ? मूर्तिमेकस्मिन् ? अर्हत्पदं दलेषु शेषेषु ।

धरणीमण्डलमध्ये ध्यायेत् सुरार्चितं चक्रं ॥

अह एउणवण्णासे कोट्टे काऊण विउलरेहाहिं ।

अयरोइअक्खराइं कमेण विण्णिसहं सव्वाइं ॥ ४६६ ॥

अथवा एकोनपंचाशान् कोष्टान् कृत्वा विपुलरेखाभिः ।

अतिरोच्यक्षराणि क्रमेण विनिवेशय सर्वाणि ॥

ता णिसहं जहयारं मज्झिमठाणेसु ठाइ जुत्तीए ।

वेढह वीएण पुणो इलमंडलउयरमज्झत्थं ॥ ४६७ ॥

तावत् निवेशय यथाकारं मध्यमस्थानेषु स्थापय युक्त्या ।

वेष्टय वीजेन पुनः इलामण्डलोदरमध्यस्थं ॥

एए जंतुद्वारे पुज्जह परमेष्टिंपंचअहिहाणे ।

इच्छइ फलदायारो पावघणपडलहंतारो ॥ ४६८ ॥

एतान् यंत्रोद्धारान् पूजयेत् परमेष्टिंपंचाभिधानान् ।

इच्छितफलदातृन् पापघनपटलहन्तृन् ॥

अट्टविहच्चण काउं पुव्वपउत्तम्मि ठाँवियं पडिमा ।

पुज्जेह तग्गयमणो विविहहि पुज्जाहिं भत्तीए ॥ ४६९ ॥

अष्टविधांचरणां कृत्वा पूर्वप्रोक्ते स्थापितां प्रतिमां ।

पूजयेत् तद्गतमनाः विविधाभिः पूजाभिः भक्त्या ॥

पसमइ रयं असेसं जिणपयकमलेसु दिण्णजलधारा ।

भिंगारणालणिग्गय भवंतभिंगेहि कव्वुरिया ॥ ४७० ॥

प्रशमति रजः अशेषं जिनपदकमलेषु दत्तजलधारा ।

भंगारनालनिर्गता भ्रमद्भृंगैः कर्तुरिता ॥

चंदणसुअंधलेओ जिणवरचलणेसु जो कुणइ भविओ ।
लहइ तणू विकिरियं सहावसुयंधयं अमलं ॥ ४७१ ॥

चन्दनसुगन्धलेपं जिनवरचरणेषु यः करोति भव्यः ।

लभते तनुं वैक्रियिकं स्वभावसुगन्धकं अमलं ॥

पुण्णाणं पुज्जेहि य अक्खयपुंजेहि देवपयपुरओ ।
लब्भंति णवणिहाणे सुअक्खए चक्कवट्टित्तं ॥ ४७२ ॥

पुणैः पूजयेच्च अक्षतपुंजैः देवपदपुरतः ।

लभ्यन्ते नवनिधानानि स्वक्षयानि चक्रवर्तित्वं ॥

अलिचुंविएहिं पुज्जइ जिणपयकमलं च जाइमल्लीहिं ।
सो हवइ सुरवरिंदो रमेइ सुरतरुवरवणेहिं ॥ ४७३ ॥

अलिचुम्भितैः पूजयति जिनपदकमलं च जातिमल्लिकैः ।

स भवति सुरवरेन्द्रः रमते सुरतरुवरवनेषु ॥

दाहिखीरसपिसंभवउत्तमचरुएहिं पुज्जए जो हु ।
जिणवरपायपओरुह सो पावइ उत्तमे भोए ॥ ४७४ ॥

दधिक्शीरसर्पिःसंभवोत्तमचरुकैः पूजयेत् यो हि ।

जिनवरपादपयोरुहं स प्राप्नोति उत्तमान् भोगान् ॥

कप्पूरतेल्लपयलियमंदसरुपहयणडियदीवेहिं ।
पुज्जइ जिणपयपौमं ससिमूरविसमतणुंलहई ॥ ४७५ ॥

कर्पूरतेलप्रञ्चलितमन्दसरुप्रहतनटितदीपैः ।

पूजयति जिनपदपद्मं शशिसूर्यसमतनुं लभते ॥

सिल्लारसअयंरुमीसियणिग्गयधूवेहिं बहलधूमेहिं ।
धूवइ जो जिणचरणेषु लहइ सुहवत्तणं तिजए ॥ ४७६ ॥

सिद्धारसागुरुमिश्रितनिर्गतधूपैः बहलधूमैः ।

धूपयेद्यः जिनचरणेषु लभते शुभवर्तनं त्रिजगति ॥

पकोहिं रसदुसुमुज्जलेहिं जिणचरणपुरओप्पविण्हिं ।

णाणाफलेहिं पावइ पुरिसो हियइच्छयं सुफलं ॥ ४७७ ॥

पकं रसाढ्यैः समुज्वलैः जिनवरचरणपुरतउपयुक्तैः ।

नानाफलैः प्राप्नोति पुरुषः हृदयेष्वितं सुफलं ॥

इय अट्टभेयअच्चण काऊं पुण जवह मूलविज्जा य ।

जा जत्थ जहाउत्ता सयं च अट्टोत्तरं जावा ॥ ४७८ ॥

इत्यष्टभेदारचनं कृत्वा पुनः जपेत् मूलविद्यां च ।

यां यत्र यथोक्तां शतं चाष्टोत्तरं जापं ॥

किञ्चा काउस्सगं देवं ज्ञाएह समवसरणत्थं ।

लद्धट्टपाडिहेरं णवकेवललद्धिसंपुण्णं ॥ ४७९ ॥

कृत्वा कायोत्सर्गं देवं ध्यायेत् समशरणस्थं ।

लब्धाष्टप्रातिहार्यं नवकेवललद्धिसम्पूर्णं ॥

णट्टचउघाइकम्मं केवलणाणेण मुणियतियल्लोयं ।

परमेट्टी अरिहंतं परमप्यं परमज्ञाणत्थं ॥ ४८० ॥

नष्टचतुर्घातिकर्माणं केवलज्ञानेन ज्ञातत्रिलोकं ।

परमेष्ठिनमर्हन्तं परमात्मानं परमध्यानस्थं ॥

ज्ञाणं ज्ञाऊण पुणो मज्झाणियवंदणत्थ काऊणं ।

उवसंहरिय विसज्जउ जे पुच्चावाहिया देवा ॥ ४८१ ॥

ध्याने ध्यात्वा पुनः मध्यान्हिकवन्दनामत्र कृत्वा ।

उपसंहृत्य विसर्जयेत् यान् पूर्वमाहूतान् देवान् ॥

एणविहाणेण फुडं पुज्जा जो कुणइ भत्तिसंजुत्तो ।
सो डहइ णियं पावं वंधइ पुण्णं तिजयखोहं ॥ ४८२ ॥

एतद्विधानेन स्फुटं पूजां यः करोति भक्तिसंयुक्तः ।
स दहति निजं पापं वध्नाति पुण्यं त्रिजगत्क्षोभं ॥

उववज्जइ दिवलोए भुंजइ भोए मणिच्छिए इहे ।
बहुकालं चविय पुणो उत्तममणुयत्तणं लहई ॥ ४८३ ॥

उत्पद्यते स्वर्गलोके भुंक्ते भोगान् मनइच्छितान् इष्टान् ।
बहुकालं च्यूत्वा पुनः उत्तममनुष्यत्वं लभते ॥

होउण चक्रवट्टी चउदहरयणेहि णवणिहाणेहिं ।
पालिय छवखंडधरा भुंजिय भोए णिरुगरिट्ठा ॥ ४८४ ॥

भूत्वा चक्रवर्ती चतुर्दशरत्नैर्नवनिधानैः ।
पालयित्वा पट्खण्डधरां भुक्त्वा भोगान् निर्गरिष्टान् ॥

संपत्तवोहिलाहो रज्जं परिहरिय भविय णिगंथो ।
लहिउण सयलसंजम धरिउण महव्वथा पंच ॥ ४८५ ॥

संप्राप्तवोधिलाभः राज्यं परिहृत्य भूत्वा निर्ग्रन्थः ।
लब्ध्वा सकलसंयमं धृत्वा महात्रतानि पंच ॥

लहिउण सुक्कझाणं उप्पाइय केवलं वरं णाणं ।
सिज्जेइ णट्टकम्मो अहिसेयं लहिय मेरुम्मि ॥ ४८६ ॥

लब्ध्वा शुद्धध्यानं उत्पाद्य केवलं वरं ज्ञानं ।
सिद्धयति नष्टकर्मा अभिप्रेकं लब्ध्वा नेरौ ॥

इय णाउण विसेसं पुण्णं आयरइ कारणं तस्स ।
पावहणं जाम सयलं संजमयं अप्पमत्तं च ॥ ४८७ ॥

इति ज्ञात्वा विशेषं पुण्यं अर्जयेत् कारणं तस्य ।

पापघ्नं यावत् सकलं संयमं अप्रमत्तं च ॥

भावह अणुव्वयाइं पालह सीलं च कुणह उववासं ।

पव्वे पव्वे णियमं दिज्जह अणवरह दाणाइं ॥ ४८८ ॥

भावयेत् अणुव्रतानि पालयेत् शीलं च कुर्यादुपवासं ।

पर्वे पर्वे नियमं दद्यात् अनवरतं दानानि ॥

अभयपयाणं पढमं विदियं तह होइ सत्थदाणं च ।

तइयं ओसहदाणं आहारदाणं चउत्थं च ॥ ४८९ ॥

अभयप्रदानं प्रथमं द्वितीयं भवति शास्त्रदानं च ।

तृतीयं त्वौषधदानं आहारदानं चतुर्थं च ॥

सव्वेसिं जीवाणं अभयं जो देइ मरणभीरूणं ।

सो णिव्वभओ तिलोए उत्तस्सो होइ सव्वेसिं ॥ ४९० ॥

सर्वेषां जीवानां अभयं यो ददाति मरणभीरूणां ।

स निर्भयः त्रिलोके उत्कृष्टो भवति सर्वेषां ॥

सुयदाणेण य लव्वभइ मइसुइणाणं च ओहिमणणाणं ।

बुद्धितवेण य सहियं पच्छा वरकेवलं णाणं ॥ ४९१ ॥

श्रुतदानेन च लभते मतिश्रुतज्ञानं च अवधिमनोज्ञानं ।

बुद्धितपोभ्या च सहितं पश्चाद्द्वरकेवलं ज्ञानं ॥

ओसहदाणेण णरो अतुलियवलपरक्कमो महासत्तो ।

वाहिविमुक्कसरीरो चिराउ सो होइ तेयट्ठो ॥ ४९२ ॥

१ अस्मादग्रे. ख-पुस्तके “ उक्तं च ”—

ज्ञानवान् ज्ञानदानेन, निर्भयोऽभयदानतः ।

अन्नदानात्सुखी नित्यं, निर्व्याधिः भेषजाद्भवेत् ॥

औषधदानेन नरोऽतुलितवल्परक्रमो महासत्वः ।

व्याधिविमुक्तशरीरश्चिरायुः स भवति तेजस्थः ॥

दाणस्साहार फलं को सक्कइ वण्णिऊण भुवणयले ।

दिण्णेण जेण भोआ लब्धंति मणिच्छिया सव्वे ॥ ४९३ ॥

दानस्य आहारस्य फलं कः शक्नोति वर्णयितुं भुवनतले ।

दत्तेन येन भोगा लभ्यन्ते मनश्छिन्ताः सर्वे ॥

दायारो वि य पत्तं दाणविसेसो तथा विहाणं च

एए चउअहियारा णायव्वा होंति भव्वेण ॥ ४९४ ॥

दातापि च पात्रं दानविशेषस्तथा विधानं च ।

एते चतुरधिकारा ज्ञातव्या भवन्ति भव्येन ॥

दायारो उवसंतो मणवयकाएण संजुओ दच्छो ।

दाणे कयउच्छाहो पयडियवरछग्गुणो अमयो ॥ ४९५ ॥

दाता उपशान्तो मनोवचनकायेन संयुक्तो दक्षः ।

दाने कृतोत्साहः प्रकटितवरपटुणः अमयः ॥

भक्ती तुट्ठी य खमा सद्धा सत्तं च लोहपरिचाओ ।

विण्णाणं तक्काले सत्तगुणा होंति दायारे ॥ ४९६ ॥

भक्तिः तुष्टिः क्षमा श्रद्धा सत्त्वं च लोभपग्न्यागः ।

विज्ञानं तत्काले सत्तगुणा भवन्ति दातरि ॥

तिवहं भणंति पत्तं मज्झिम तह उत्तमं जहण्णं च ।

उत्तमपत्तं साह मज्झिमपत्तं च सावया भणिया ॥ ४९७ ॥

त्रिविधं भणन्ति पात्रं मध्यमं तथोत्तमं जद्वन्यं च ।

उत्तमपात्रं साधुः मध्यमपात्रं च श्रावका भणिताः ॥

अविरड्सम्मादिट्ठी जहणपत्तं तु अक्खियं समये ।
णाउं पत्तविसेसं दिज्जह दाणाइं भत्तीए ॥ ४९८ ॥

अविरतसम्यग्दृष्टिः जघन्यपात्रं तु कथितं समये ।
ज्ञात्वा पात्रविशेषं दद्यात् दानानि भक्त्या ॥

मिच्छादिट्ठी पुरिसो दाणं जो देइ उत्तमे पत्ते ।
सो पावइ वरभोए फुडु उत्तमभोयभूमीसु ॥ ४९९ ॥

मिथ्यादृष्टिः पुरुषो दानं यो ददाति उत्तमे पात्रे ।
स प्राप्नोति वरभोगान् स्फुटं उत्तमभोगभूमीषु ॥

मज्झिमपत्ते मज्झिमभोयभूमीसु पावए भोए ।
पावइ जहणभोए जहणपत्तस्स दाणेण ॥ ५०० ॥

मध्यमपात्रे मध्यमभोगभूमिषु प्राप्नोति भोगान् ।
प्राप्नोति जघन्यभोगान् जघन्यपात्रस्य दानेन ॥

उत्तमछित्ते वीयं फलइ जहा लक्खकोडिगुण्णेहिं ।
दाणं उत्तमपत्ते फलइ तथा किमिच्छभणिण ॥ ५०१ ॥

उत्तमक्षिते वीजं फलति यथा लक्षकोटिगुणैः ।
दानं उत्तमपात्रे फलति तथा किमिच्छभणितेन ॥

सम्मादिट्ठी पुरिसो उत्तमपुरिसस्स दिण्णदाणेण ।
उववज्जइ दिवलोए हवइ स महड्डिओ देओ ॥ ५०२ ॥

सम्यग्दृष्टिः पुरुष उत्तमपुरुषस्य दत्तदानेन ।
उपपद्यते स्वर्गलोके भवति स महर्द्धिको देवः ॥

जहणीरं उच्चुगयं कालं परिणवइ अमयरूवेण ।
तह दाणं वरपत्ते फलेइ भोएहिं विविहेहिं ॥ ५०३ ॥

यथा नीरमिक्षुगतं काले परिणमति अमृतरूपेण ।

तथा दानं वरपात्रे फलति भोगैः त्रिविधैः ॥

उत्तमरयणं खु जहा उत्तमपुरिसासियं च बहुमुल्लं ।

तह उत्तमपत्तगयं दाणं णिउणेहि णायव्वं ॥ ५०४ ॥

उत्तमरत्नं खलु यथा उत्तमपुरुपाश्रितं च बहुमूल्यं ।

तथोत्तमपात्रगतं दानं निपुणैः ज्ञातव्यं ॥

किं^१ किञ्चि वि वेयमयं किञ्चि वि पत्तं तवोमयं परमं ।

तं पत्तं संसारे तारणयं होइ^२ णियमेण ॥ ५०५ ॥

किं किञ्चिदपि वेदमयं किञ्चिदपि पात्रं तपोमयं परमं ।

तत्पात्रं संसारे तारकं भवति नियमेन ॥

वेओ किल सिद्धंतो तस्सट्ठा णवपयत्थल्लदव्वं ।

गुणमग्गणठाणा वि य जीवट्ठाणाणि सव्वाणि ॥ ५०६ ॥

वेदः किल सिद्धान्तः तस्यार्थान्नवपदार्थपट्टव्याणि ।

गुणमार्गणास्थानान्यपि च जीवस्थानानि सर्वाणि ॥

परमप्पयस्स रूवं जीवकम्माण उहयसव्भावं ।

जो जाणइ सविसेसं वेयमयं होइ तं पत्तं ॥ ५०७ ॥

परमात्मनो रूपं जीवकर्मणोरुभयोः स्वभावं ।

यो जानाति सविशेषं वेदमयं भवति तत्पात्रं ॥

वहिरव्वंतरतपसा कालो परिखवइ जिणोव्वएसेण ।

दिट्ठयंभचेर णाणी पत्तं तु तवोमयं भणिय ॥ ५०८ ॥

बाह्याभ्यन्तरतपसा कालं परिक्षिपति जिनोपदेशेन ।

दृष्टब्रह्मचर्यो ज्ञानी पात्रं तु तपोमयं भणितं ॥

जह णावा णिच्छिद्वा गुणमइया विविहरयणपरिपुण्णा ।

तारइ पारावारे बहुजलयरसंकडे भीमे ॥ ५०९ ॥

यथा नौः निच्छिद्रा गुणमया विविहरत्नपरिपूर्णा ।

तारयति पारावारे बहुजलचरसंकटे भीमे ॥

तह संसारसमुद्रे जाइजरामरणजलयराइण्णे ।

दुखसहस्सावत्ते तारेइ गुणाहियं पत्तं ॥ ५१० ॥

तथा संसारसमुद्रे जातिजरामरणजलचराकीर्णे ।

दुःखसहस्रावर्ते तारयति गुणाधिकं पात्रं ॥

कुच्छिगयं जस्सणं जीरइ तवझाणवंभचरिएहिं ।

सौ पत्तो णित्थारइ अप्पाणं चेव दायारं ॥ ५११ ॥

कुक्षिगतं यस्यान्नं जीर्यते तपोध्यानब्रह्मचर्यैः ।

तत्पात्रं निस्तारयति आत्मानं चैव दातारं ॥

एरिसपत्तम्मि वरे दिज्जइ आहारदाणमणवज्जं ।

पासुयसुद्धं अमलं जोग्गं मणदेहसुखखयरं ॥ ५१२ ॥

एतादृशपात्रे वरे दद्यात् आहारदानमनवद्यं ।

प्रासुकशुद्धं अमलं योग्यं मनोदेहसुखकरं ॥

कालस्स य अणुरूपं रोगारोगत्तणं च णारुणं ।

दायव्वं जहजोग्गं आहारं गेहवंतेण ॥ ५१३ ॥

कालस्य चानुरूपं रोगारोगत्वं ज्ञात्वा ।

दातव्यं यथायोग्यं आहारं गृह्यता ॥

पत्तस्सेस सहावो जं दिण्णं दायगेण भत्तीए ।

तं करपत्ते सोहिय गहियव्वं विगयराएण ॥ ५१४ ॥

पात्रस्यैष स्वभावो यदत्तं दायकेन भक्त्या ।

तत्करपात्रे शोधयित्वा गृहातव्यं विगतरागेन ॥

दायारेण पुणो वि य अप्पाणो सुखमिच्छमाणेण ।

देयं उत्तमदानं विहिणा वरणीयसत्तीए ॥ ५१५ ॥

दात्रा पुनरपि च आत्मनः सुखमिच्छता ।

देयं उत्तमदानं विधिना वर्णितशक्त्या ॥

जो^१ पुण हुंतइ धणकणंइं मुणिहिं कुभोयणु देइ ।

जम्मि जम्मि दालिदुडउ पुट्टिं ण तहो छंडेइ ॥ ५१६ ॥

यः पुनः सति धनकनके मुनिभ्यः कुभोजनं ददाति ।

जन्मनि जन्मनि दारिद्र्यं पृष्टिं न तस्य त्यजति ॥

देहो पाणा रूवं विज्जा धम्मं तवो सुहं मोक्खं ।

सव्वं दिण्णं णियमा हवेइ आहारदाणेणं ॥ ५१७ ॥

देहः प्राणा रूपं विद्या धर्मः तपः सुखं मोक्षः ।

सर्वं दत्तं नियमात् भवेत् आहारदानेन ॥

भुक्खसमा ण हु वाही अण्णसमाणं च ओसहं णन्थि ।

तम्हा आहारदाणे आरोयत्तं हवे दिण्णं ॥ ५१८ ॥

बुभुक्षासमो न हि व्याधिः अन्नसमानं च औषधं नास्ति ।

तस्मादाहारदानेन आरोग्यत्वं भवेदत्तं ॥

आहारमओ देहो आहारेण विणा पडेइ णियमेण ।

तम्हा जेणाहारो दिण्णो देहो हवे तेण ॥ ५१९ ॥

आहारमयो देह आहारेण विना पतति नियमेन ।

तस्माद्येनाहारो दत्तो देहो भवेत्तन ॥

ता देहो ता पाणा ता सूत्रं ताम् पाणत्रिण्णाणं ।
जामाहारो पविसइ देहे जीवाण सुक्खयरो ॥ ५२० ॥

तावदेहस्तावत्पाणास्तावद्रूपं तावज्ज्ञानविज्ञानं ।

यावदाहारो प्रविशति देहे जीवानां सुखकरः ॥

आहारसणे देहो देहेण तवो तवेण रयसडणं ।
रयणासेण य पाणं पाणे मुक्खो जिणो भणई ॥ ५२१ ॥

आहाराशने देहो देहेन तपस्तपसा रजःसटनं ।

रजोनाशेन च ज्ञानं ज्ञाने मोक्षो जिनो भणति ॥

चउविहदाणं उच्चं जं तं सयलंमवि होइ इह दिण्णं ।
सविसेसं दिण्णेण य इक्केणाहारदाणेण ॥ ५२२ ॥

चतुर्विधदानं उक्तं यत् तत्सकलमपि भवति इह दत्तं ।

सविशेषं दत्तेन च एकेनाहारदानेन ॥

भुक्खाकयमरणभयं पासइ जीवाण तेण तं अभयं ।
सो एव हणइ वाही उसहं तेण आहारो ॥ ५२३ ॥

बुभुक्षाकृतमरणभयं नाशयति जीवानां तेन तदभयं ।

स एव हन्ति व्योधि औषधं तेनाहारः ॥

आयाराईसत्थं आहारवलेण पढइ णिस्सेसं ।
तम्हा तं सुयदाणं दिण्णं आहारदाणेण ॥ ५२४ ॥

आचारादिशास्त्रं आहारवलेन पठति निःशेषं ।

तस्मात् तच्छ्रुतदानं दत्तं आहारदानेन ॥

हयगयगोदाणाइं धरणीरयकणयज्जाणदाणाइं ।
तित्तिं ण कुणंति सया जह तित्तिं कुणइ आहारो ॥ ५२५ ॥

१ सयलं पि ख. । २ क्षुद्र्याधि । ३ धरणीरयकणयरणदाणाइं ख. । ४

हयगजगोदानानि धरणीरत्नकनकयासदानानि ।

तृप्तिं न कुर्वन्ति सदा यथा तृप्तिं करोति आहारः ॥

जह रङ्गाणं वडूरं सेलेसु य उत्तमो जहा मेरु ।

तह दाणाणं पवरो आहारो होइ णायव्वो ॥ ५२६ ॥

यथा रत्नानां वज्रं शैलेषु च उत्तमो यथा मेरुः ।

तथा दानानां प्रवर आहारो भवति ज्ञातव्यः ॥

सो दायव्वो पत्ते विहाणजुत्तेण सा विही एसा ।

पडिगहमुच्चट्टाणं पादोदयअंचणं च षणमं च ॥ ५२७ ॥

स दातव्यः पात्रे विधानयुक्तेन स विधिरेपः ।

प्रतिग्रहमुच्चस्थानं पादोदकमर्चनं च प्रणामं च ॥

मणवयणकायसुद्धी एसणसुद्धी य परम कायव्वा ।

होइ फुडं आयरणं णवव्विहं पुव्वं कम्मणेण ॥ ५२८ ॥

मनवचनकायशुद्धिरेपणशुद्धिश्च परमा कर्तव्या !

भवति स्फुटमाचरणं नवविधं पूर्वकर्मणा ॥

एवं विहिणा जुत्तं देयं दाणं तिसुद्धभत्तीए ।

वज्जिय बुच्चियपत्तं तह य अपत्तं च णिसारं ॥ ५२९ ॥

एवं विधिना युक्तं देयं दानं त्रिशुद्धभक्त्या ।

वर्जयित्वा कुत्सितपात्रं तथा चापात्रं च निःसारं ॥

जं रयणत्तरहियं मिच्छोमदकहियधम्मअणुल्लगं ।

जइ वि हु तवइ सुधोरं तहा वि तं बुच्चियं पत्तं ॥ ५३० ॥

यद्गतत्रयरहितं मिध्यामतकथितधर्माहुत्तं ।

यद्यपि हि तप्यते सुधोरं तथापि तद्वृत्तितं पात्रं ॥

जस्स ण तवो ण चरणं ण चात्रि जस्सत्थि वरगुणो कोई ।
तं जाणेह अपत्तं अफलं दाणं कयं तस्स ॥ ५३१ ॥

यस्य न तपो न चरणं न चापि यस्यास्ति वरगुणः कश्चित् ।
तज्जानीयादपात्रमफलं दानं कृतं तस्य ॥

ऊसरखित्ते वीयं सुक्खे रुक्खे य णीरअहिसेओ ।

जह तह दाणमवत्ते दिण्णं खु णिरत्थयं होई ॥ ५३२ ॥

ऊपरक्षेत्रे वीजं शुष्के वृक्षे च नीराभिपेकः ।

यथा तथा दानमपात्रे दत्तं खलु निरर्थकं भवति ॥

कुच्छियपत्ते किंचि वि फलइ कुदेवेसु कुणरतिरियसु ।

कुच्छियभोयधरासु य लवणं वुहिकालउवहीसु ॥ ५३३ ॥

कुत्सितपात्रे किंचिदपि फलति कुदेवेषु कुनरतिर्यक्षु ।

कुत्सितभोगधरासु च लवणाम्बुधिकालोदधिषु ॥

लवणे अडयालीसा कालसमुद्दे य तित्तिया चेव ।

अंतरदीवा भणिया कुभोयभूमीय विक्खाया ॥ ५३४ ॥

लवणे अष्टचत्वारित् कालसमुद्रे च तावन्त एव ।

अन्तर्द्वीपा भणिता कुभोगभूम्या विख्याताः ॥

उप्पज्जंति मणुस्सा कुपत्तदाणेण तत्थ भूमीसु ।

जुवलेण गेहरहिया णग्गा तरुमूलि णिवसंति ॥ ५३५ ॥

उत्पद्यन्ते मनुष्याः कुपात्रदानेन तत्र भूमिषु ।

युगलेन गृहरहिता नग्नाः तरुमूले निवसन्ति ॥

पल्लोवमआउस्सा वत्थाहरणेहि वज्जिया णिच्चं ।

तरुपल्लवपुप्फरसं फलाण रसं चेव भक्खंति ॥ ५३६ ॥

पत्योपमायुपः वस्त्राभरणेन वर्जिता नित्यं ।

तरुपल्लवपुष्परसं फलानां रसं चैव भक्षयन्ति ॥

दीवे कर्हिं पि मणुया सक्करगुडखंडसण्णिहा भूमी ।

भक्खंति पुट्टिजणया अइसरसा पुव्वकम्मैणं ॥ ५३७ ॥

द्वीपे कापि मनुजाः शर्करागुडखण्डसन्निभां भूमिं ।

भक्षयन्ति पुष्टिजनकां अतिसरसां पूर्वकर्मणा ॥

केई गयसीहमुहा केई हरिमहिसकंठिकोलमुहा ।

केई आदरिसमुहा केई पुण एयपाया य ॥ ५३८ ॥

केचित् गजसिंहमुखाः केचिद्द्वरिमहिपकपिकोदकमुखाः ।

केचिदादर्शमुखाः केचित्पुनः एकपादाश्च ॥

सससुवकलिकण्णा वि य कण्णप्पावरणदीहकण्णा य ।

लंगूलधरा अवरे अवरे मणुया अभासा य ॥ ५३९ ॥

शशशस्त्रुलिकर्णा अपि च कर्णप्रावरणदीर्घकर्णाश्च ।

लाडुलधरा अपरे अपरं मनुष्या अभापकाश्च ॥

एए णरा पसिद्धा तिरिया वि हवंति कुभोयभूमीसु ।

मणुमुत्तरवाहिरेसु अ असंखदीवेसु ते हांति ॥ ५४० ॥

एते नराः प्रसिद्धाः तिर्यञ्चोऽपि भवन्ति कुभोगभूमिषु ॥

मानुषोत्तरवाह्ये च असंखपट्टीपेषु ते भवन्ति ॥

सव्वे मंदकसाया सव्वे णिस्सेसवाहिपरिहीणा ।

मरिऊण विंतरा वि हु जोइसुभवणेषु जायंति ॥ ५४१ ॥

सर्वे मन्दकपायाः सर्वे निःशेषव्याधिपरिहीनाः ।

मृदा व्यन्तरेऽपि हि उद्योतिर्भवन्नेषु जायन्ते ॥

रूपस्थम् ।

देवचक्रणाविहाणं जं कहियं देसविरयठाणम्मि ।

होइ पयत्थं ज्ञाणं कहियं तं वरजिणिदेहि ॥ ६२६ ॥

देवार्चनाविधानं यत्कथितं देशविरतस्थाने ।

भवति पदस्थं ध्यानं कथितं तद्वरजिनेन्द्रैः ॥

एयपयमक्खरं वा जवियइ जं पंचगुरूवसंबंधं ।

तं पि य होइ पयत्थं ज्ञाणं कम्माण णिद्धहणं ॥ ६२७ ॥

एकपदमक्षरं वा जप्यते यत्पंचगुरुसम्बन्धं ।

तदपि च भवति पदस्थं ध्यानं कर्मणां निर्दहनं ॥

पदस्थम् ।

ण य चिंतइ देहत्थं देहवहित्थं ण चिंतए किं पि ।

ण सगयपरगयरूवं तं गयरूवं णिरालंवं ॥ ६२८ ॥

न च चिन्तयति देहस्थं देहवाद्यस्थं न चिन्तयेत्किमपि ।

न स्वगतपरगतरूपं तद्गतरूपं निरालम्बं ॥

जत्थ ण करणं चिंता अक्खररूवं ण धारणा धेयं ।

ण य वावारो कोई चित्तस्स य तं णिरालंवं ॥ ६२९ ॥

यत्र न करणं चिन्ता अक्षररूपं न धारणा ध्येयं ।

न च व्यापारः कश्चिच्चित्तस्य च तन्निरालम्बं ॥

इंदियविसयवियारा जत्थ खयं जंति रायदोसं च ।

मणवावारा सव्वे तं गयरूवं मुणेयव्वं ॥ ६३० ॥

इन्द्रियविषयविकारा यत्र क्षयं यान्ति रागद्वेषौ च ।

मनोव्यापारः सर्वे तद्रूपं मन्तव्यं ॥

गतरूपं, इति ध्यानम् ।

क्षेयं त्रिविधपर्यायं अक्षर-रूपं तद् अरूपं च ।

रूपं परमेष्ठिनयं अक्षरयं तेषामुच्चारं ॥ ६३१ ॥

ध्वेयं त्रिविधप्रकारं अक्षर-रूपं तथाऽरूपं च ।

रूपं परमेष्ठिनतं अक्षरकं तेषामुच्चारणं ॥

रायरूपं जं क्षेयं जिणेहि भणियं पि तं गिरालयं ।

मुष्णं पि तं ण मुष्णं जग्हा ग्यणत्तयाङ्गं ॥ ६३२ ॥

गतरूपं यद्ध्येयं जिनैर्भणितमपि तन्निगद्यं ।

शून्यमपि तन्न शून्यं यस्माद्वन्नत्रयाकीर्णं ॥

धियम् ।

ज्ञाणस्य फलं त्रिविधं कहन्ति ब्रह्मोऽपि विगयमोहा ।

इहभवपरलोचभवं सर्व्वकम्मवग्गए तइयं ॥ ६३३ ॥

ध्यानस्य फलं त्रिविधं कथयन्ति ब्रह्मोऽपि विगयमोहाः ।

इहभवपरलोकभवं सर्व्वकर्मक्षये तृतीयं ॥

ज्ञाणस्य य सर्त्तीए जायंति अईसस्यानि त्रिविधानि ।

दृगलोचणपहुई ज्ञाणे आपणसङ्गणं च ॥ ६३४ ॥

मइसुइओहीणाणं मणपज्जय केवलं तथा णाणं ।

रिद्धीओ सव्वाओ जइपूया इह फलं ज्ञाणे ॥ ६३५ ॥

मतिश्रुतावधिज्ञानं मनःपर्ययः केवलं तथा ज्ञानं ।

ऋद्धयः सर्वा यतिपूजा इह फलं ध्याने ॥

सक्काईइंदत्तं अहमिंदत्तं च सग्गलोयम्मि ।

लयंतियदेवत्तं तं परभवगयफलं ज्ञाणे ॥ ६३६ ॥

शक्रादीन्द्रत्वं अहमिन्द्रत्वं च स्वर्गलोके ।

लौकान्तिकदेवत्वं तत्परभवगतफलं ध्याने ॥

तणुपंचस्स य णासो सिद्धस्वरूपस्स चैव उप्पत्ती ।

तिहुयणपहुत्तलाहो लाहो य अणंतविरियस्स ॥ ६३७ ॥

तनुपंचानां नाशः सिद्धस्वरूपस्य चैवोत्पत्तिः ।

त्रिभुवनप्रभुत्वलाभो लाभश्चानन्तवीर्यस्य ॥

अट्टगुणाणं लद्धी लोयसिहरग्गखित्तसंवासो ।

तइयफलं कहियमिणं जिणवरचंदेहि ज्ञाणस्स ॥ ६३८ ॥

अष्टगुणानां लब्धिः लोकशिखराप्रक्षेत्रसंवासः ।

तृतीयफलं कथितमिदं जिनवरचन्द्रैर्ध्यानस्य ॥

एवं धम्मज्झाणं कहियं अपमत्तगुण समासेण ।

सालंमणालंवं तं मुक्खं ईत्थ गायव्वं ॥ ६३९ ॥

एवं धर्म्यध्यानं कथितं अप्रमत्तगुणे समासेन ।

सालम्बमनालंवं तन्मुख्यं अत्र ज्ञातव्यं ॥

१ जिण. ख. । २ “अस्ट्यासोर्द्धो” इति त्रैविक्रमेण तृतीयास्थाने सममी
एवमन्यत्रापि । ३ तत्थ ख. ।

एदम्हि गुणद्वारेण अन्ति आचामयाण परीहारो ।
 ज्ञानमणमि थिरत्तं गिरन्तरं अन्ति तं जम्हा ॥ ६४० ॥

एतस्मिन् गुणस्थाने अस्ति आवश्यकानां परिहारः ।
 ध्यानमनासि स्थिरत्वं निरन्तरं अस्ति तत्रस्मान् ॥

मत्तमयं गुणठाणं क्खियं अपमत्तणामसंजुत्तं ।
 एत्तो अपुव्वणामं वुच्छामि जहाणुपुव्वीए ॥ ६४१ ॥

सत्तमकं गुणस्थानं कथितं अप्रमत्तनामसंजुत्तं ।
 इतोऽपूर्वनाम वक्ष्यामि यथानुवृत्त्या ॥

इत्यप्रमत्तगुणस्थानं समसम् ।

तं दुव्वभेयपउत्तं खवयं उव्वमामियं च णायव्वं ।
 खवए खवओ भावो उव्वमए हाइ उव्वमओ ॥ ६४२ ॥

तद्विभेदप्रोक्तं क्षपकमुपशमकं च तावयं ।
 क्षपके क्षपको भाव उपशमके भवति उव्वमयः ॥

खवएसु उव्वमएसु च अउव्वणातेसु हवइ निवयानं ।
 सुव्वज्जाणं णियमा पुत्तुत्तनवियकमवियानं ॥ ६४३ ॥

क्षपकेषु उपशमेषु चापूर्वनामसु भवति त्रिप्रकारं ।

शुक्लध्यानं नियमात् पृथक्त्वसवितर्कसविचारं ॥

पञ्चार्यं च गुणं वा जम्हा दब्वाण मुण्ड भेएण ।

तम्हा पुहुत्तणामं भणियं ज्ञाणं मुणिदेहिं^१ ॥ ६४४ ॥

पर्यायं च गुणं वा यस्मात् द्रव्याणां जानाति भेदेन ।

तस्मात्पृथक्त्वनाम भणितं ध्यानं मुनीन्द्रैः ॥

भणियं सुयं वियक्कं वट्टइ सह तेण तं खु अणवरयं ।

तम्हा तस्स वियक्कं सवियारं पुण भणिस्सामो ॥ ६४५ ॥

भणितं श्रुतं वितर्कं वर्तते सह तेन तत्खलु अनवरतं ।

तस्मात्तस्य वितर्कं सवीचारं पुनर्भणिष्यामः ॥

जोएहिं तीहिं वियरइ अक्खरअत्थेसु तेण सवियारं ।

पढमं सुक्कज्झाणं अतिकखपरसोवमं भणियं ॥ ६४६ ॥

योगैः त्रिभिः विचरति अक्षरार्थेषु तेन सविचारं ।

प्रथमं शुक्लध्यानं अतीक्षणपरशूपमं भणितं ॥

जह चिरकालो लग्गइ अतिकखपरसेण स्खखविच्छेए^२ ।

तह कम्माण य हणणे चिरकालो पढमसुक्कम्मि ॥६४७॥

यथा चिरकालो लगति अतीक्षणपरशुना वृक्षविच्छेदे ।

तथा कर्मणां च हनने चिरकालः प्रथमशुक्ले ॥

१ अस्मादग्रेऽयं पाठः स—पुस्तके. । सहभाविनो गुणाः, क्रमभाविनो पर्यायाः,
आत्मद्रव्ये ज्ञानदर्शनादयो गुणा नरनारकादयो भवपर्यायाः उक्तं च—

सहभृता गुणा ज्ञेयाः सुवर्णं पीतना यथा ।

क्रमभृतास्तु पर्याया जीवे गत्यादयो यथा ॥ १ ॥

२ पुस्तकद्वयेऽपि 'विच्छेयो' इति पाठः ।

खंडेण उचसमेण च कस्मानं जं अउव्वपरिणामो ।
तम्हा तं गुणठाणं अउव्वणामं तु तं भणियं ॥ ६४८ ॥

क्षयेणोपशमेन च कर्मणां यदपूर्वपरिणामः ।

तस्मात्तद्गुणस्थानं अपूर्वनाम तु तद्गणितं ॥

इत्यपूर्वनामगुणस्थानमष्टमम् ।

जह तं अउव्वणामं अणियट्ठी तह य होइ पायच्चं ।
उवसमखाइयभायं हवेइं फुट्टु तम्मि ठाणम्मि ॥ ६४९ ॥

यथा तदपूर्वनाम अनिष्टत्ति तथा च भवति तावत्तयं ।

औपशमिकक्षाधिकभावौ भवतः एकदं तस्मिन् गुणस्थाने ॥

सुव्वं तत्थ पउत्तं जिणेहिं पुण्युत्तलयग्गणं ताणं ।
णत्थि णियत्ती पुणरवि जम्हा अणियट्ठी तं नम्हा ॥ ६५० ॥

शुद्धं तत्र प्रोक्तं जिनैः पूर्वोक्तलक्षणं ध्यानं ।

नारित निवृत्तिः पुनरपि यस्मात् अनिहति तत्तस्मात् ।

हुंति अणियट्ठिणो ते पडिम्मसयं जस्सं एव्वपरिणामं ।
विमलयरझाणहुअवहत्तिहाहिं णिहहुक्कम्मवत्ता ॥ ६५१ ॥

भवन्ति अनिदितिनस्ते प्रतिसन्धं येषां एकपरिणामः ।

विमलतरध्यानहुतवहदित्ताभिः तिद्वेव्वकर्मवत्ताः ॥

एतन्निद्विगुणस्थानं नवमम् ।

जह अणियट्टि पउत्तं खाइयउवसमियसेट्टिसंजुत्तं ।
तह सुहुमसंपरायं दुब्भेयं होइ जिणकहियं ॥ ६५२ ॥

यथाऽनिवृत्ति प्रोक्तं क्षायिकौपशामिकश्रेणिसंयुक्तं ।

तथा सूक्ष्मसाम्परायं द्विभेदं भवति जिनकथितं ॥

तत्थेव हि दो भावा ज्ञाणं पुणु तिविहभेय तं सुक्कं ।

लोहकसाए सेसे समलत्तं होइ चित्तस्स ॥ ६५३ ॥

तत्रैव हि द्वौ भावौ ध्यानं पुनः त्रिविधभेदं तच्छुद्धं ।

लोभकपाये शेषे समलत्वं भवति चित्तस्य ॥

जहं कोसुंभयवत्थं होइ सया सुहुमरायसंजुत्तं ।

एवं सुहुमकसाओ सुहुमसराओत्ति णिदिट्ठो ॥ ६५४ ॥

यथा कौसुम्भं वल्लं भवति सदा सूक्ष्मरागसंयुक्तं ।

एवं सूक्ष्मकपायः सूक्ष्मसराग इति निर्दिष्टः ॥

इति सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानं दशमम् ।

जो उवसमइ कसाए मोहस्संभ्रंविपयडिवूहं च ।

उवसामओत्ति भणिओ खवओ णामं ण सो लहइ ॥ ६५५ ॥

य उपशाम्यति कपायान् मोहस्य सम्भ्रन्विप्रकृतिव्यूहं च ।

. उपशामक इति भणितः क्षपकं नाम न लभते ॥

सुक्कज्झाणं पढमं भाओ पुण तत्थ उवसमो भणिओ ।

मोहोदयाउ कोई पडिऊण य जाइ मिच्छत्तं ॥ ६५६ ॥

शुद्धध्यानं प्रथमं भावः पुनः तत्रोपशमः भणितः ।

मोहोदयात् कश्चित् प्रतिपद्य च याति मिथ्यात्वं ॥

कोई पमायरहितं ठाणं आसिज्ज पुण वि आरुहइ ।
चरममरीरो जीवो खवयसेठीं च न्यहणणे ॥ ६५७ ॥

कश्चित्प्रमादरहितं स्थानमाश्रित्य पुनरुप्यागेहयति ।

चरमशरीरो जीवः श्रपकश्रेणि च रजोहनने ॥

कालं काठं कोई तन्थ य उवयामगे गुणटाणे ।

सुकज्जाणं झाइय उवयज्जइ नव्वयिद्धीए ॥ ६५८ ॥

कालं कृत्वा कश्चित्प्रोपयमके गुणस्थाने ।

शुक्रध्यानं ध्यात्वोत्पद्यते नवार्थनिर्द्धः ॥

हेट्टट्ठिओ ह्नु येइइ पंको मरपाणियम्मि जह मरइ ।

तह मोहो तम्मि गुणे हेउं लद्धिय उट्टैइइ ॥ ६५९ ॥

अधःस्थितो हि चेष्टते पंक्तः मरःपानीये यथा मरः ।

तथा मोहस्तग्मिन् गुणे हेतुं तन्मया उट्टयति ॥

जो खवयसेटिरुट्टो ण होइ उवयामिओणि नो जीवो ।

मोहवखयं कुणतो उत्तो खवओ जिणिदेहि ॥ ६६० ॥

यः क्षपकाश्रण्याच्छतो न भवति उपमासक इति न जीवः ।

मोहक्षयं कुर्वन् उतः क्षपको जिनिर्द्धः ।

समुपशान्तगुणस्थानमेवावगतः ।

णिन्सेमसोहरसीणे न्दीयकमायं तु पानसुखटमं ।

पावइ जीवो णुणं झाइयभादेण संजुत्तो ॥ ६६१ ॥

जह सुद्वफलियभायणि खित्तं णीरं खु णिम्मलं सुद्धं ।
तह णिम्मलपरिणामो खीणकसाओ मुणेयव्वो ॥ ६६२ ॥

यथा शुद्धस्फटिकभाजने क्षिप्तं नीरं खलु निर्मलं शुद्धं ।

तथा निर्मलपरिणामः क्षीणकपायो मन्तव्यः ॥

सुकुञ्जाणं वीयं भणियं सवियक्कएक्कअवियारं ।

माणिककसिहाचवलं अत्थि तहिं णत्थि संदेहो ॥ ६६३ ॥

शुक्लध्यानं द्वितीयं भणितं सवितर्ककत्वाविचारं ।

माणिकशिखाचपलं अस्ति तत्र नास्ति सन्देहः ॥

होऊण खीणमोहो हणिऊण य मोहविडविवित्थारं ।

घाइत्तयं च घाइय दुचरिमसमएसु ज्ञाणेणं^३ ॥ ६६४ ॥

भूत्वा क्षीणमोहो हत्वा च मोहविटपिविस्तारं ।

घातित्रिकं च घातयित्वा द्विचरमसमयेषु ध्यानेन ॥

घाइचउक्कविणासे उप्पज्जइ सयलविमलकेवलयं ।

लोयालोयपयासं णाणं णिरुपह्वं णिच्चं ॥ ६६५ ॥

१ माणिकसिहा अचलं ख. । २ ज्ञाणेसु. ख. । ३ अस्मादग्रे 'उक्तं च' पाठः
ख-पुस्तके ।

अपृथक्त्वमवीचारं सवितर्कगुणान्वितं ।

सन्ध्यायत्येकयोगेन शुक्लध्यानं द्वितीयकं ॥ १ ॥

तद्यथा—

निजात्मद्रव्यमेकं वा पर्यायमथवा गुणं ।

निश्चलं चिन्त्यते यत्र तदेकत्वं विदुर्बुधाः ॥ २ ॥

तद्द्रव्यगुणपर्यायपरावर्तविवर्जितं ।

चिन्तनं तदवीचारं स्मृतं सद्भयानकोविदैः ॥ ३ ॥

निजशुद्धात्मनिष्ठत्वान्नावश्रुतावलम्बनात् ।

चित्तनं क्रियते यत्र सवितर्कं तदुच्यते ॥ ४ ॥

घातिचतुष्कविनाशे उत्पद्यते सकलविमलकेवलकं ।

लोकालोकप्रकाशं ज्ञानं निरुपद्रवं नित्यं ॥

आवरणाण विनासे दंसणणाणाणि अंतरहियाणि ।

पावड् मोहविनासे अणंतसुखं च परमप्पा ॥ ६६६ ॥

आवरणयोः विनाशे दर्शनज्ञाने अन्तरहिते ।

प्राप्नोति मोहविनाशे अनन्तसुखं च परमात्मा ॥

विग्धविनासे पावड् अंतररहियं च वीरियं परमं ।

उच्चड् सजोड्केवल्लि तड्यज्झाणेण सो तड्या ॥ ६६७ ॥

विघ्नविनाशे प्राप्नोति अन्तरहितं च वीर्यं परमं ।

उच्यते सयोगकेवली तृतीयध्यानेन स तत्र ? ॥

इति क्षीणकपायगुणस्थानं द्वादशम् ।

सुद्धो खाड्यभावो अवियप्पो णिच्चलो जिणिंदस्स ।

अत्थि तथा तं ज्ञाणं सुहमक्किरियाअपडिवाई ॥ ६६८ ॥

शुद्धः क्षायिको भावोऽविकल्पो निश्चलो जिनेन्द्रस्य ।

अस्ति तत्र तद्ध्यानं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ॥

परिफंदो अइसुहमो जीवपएसाण अत्थि तत्काले ।

तेणाणू आइट्टा आसवि य पुणो वि विहडंति ॥ ६६९ ॥

परिस्पन्दोऽतिसूक्ष्मो जीवप्रदेशानामस्ति तत्काले ।

तेन अणवः.....आगत्य च पुनरपि विघटन्ते ॥

जं णत्थि रायदोसो तेण ण बंधो हु अत्थि केवल्लिणो ।

जह सुक्ककुड्डलग्गा वाल्ल्या इडिंयंति तह कम्मं ॥ ६७० ॥

यन्न स्तः रागद्वेषौ तेन न बन्धो हि अस्ति केवलिनः ।

यथा शुष्ककुञ्जलम्बा बालुका निपतन्ति तथा कर्म ॥

ईहारहिया किरिया गुणा वि सव्वे वि खाइया तस्स ।

सुखं सहावजायं कमकरणविवज्जियं णाणं ॥ ६७१ ॥

ईहारहिता क्रिया गुणा अपि सर्वेऽपि क्षायिकास्तस्य ।

सुखं स्वभावजातं क्रमकरणविवर्जितं ज्ञानं ॥

णाणेण तेण जाणइ कालत्तयवट्टिए तिहुवणत्थे ।

भावे ससे य विससे सच्चेयणाच्चेयणे सव्वे ॥ ६७२ ॥

ज्ञानेन तेन जानाति कालत्रयवर्तमानान् त्रिभुवनार्थान् ।

भावान् समांश्च विप्रमान् सचेतनाचेतनान् सर्वान् ॥

एक्कं एक्कस्मि खणे अणंतपज्जायगुणसमाइण्णं ।

जाणइ जह तह जाणइ सव्वइं दव्वाइं समयस्मि ॥ ६७३ ॥

एकमेकस्मिन् क्षणे अनन्तपर्यायगुणसमाकीर्णं ।

जानाति यथा तथा जानाति सर्वाणि द्रव्याणि समये ॥

जाणंतो पिच्छंतो कालत्तयवट्टियाइं दव्वाइं ।

उत्तो सो सव्वण्हू परमप्पा परमजोईहि ॥ ६७४ ॥

जानन् पश्यन् कालत्रयवर्तमानानि द्रव्याणि ।

उक्तः स सर्वज्ञः परमात्मा परमयोगिभिः ॥

तित्थयरत्तं पत्ता जे ते पावंति समवसरणाइं ।

सक्केण कयविहूई पंचक्कल्लाणपुज्जा य ॥ ६७५ ॥

तीर्थकरत्वं प्राप्ता ये ते प्राप्नुवन्ति समवशरणादिकं ।

शक्तेण कृतविभूतिं पंचकल्याणपूजां च ॥

सम्मुग्घाईकिरिया णाणं तह देसणं च सुखं च ।

सव्वेसिं सामण्णं अरहंताणं च इयराणं ॥ ६७६ ॥

समुद्धातक्रिया ज्ञानं तथा दर्शनं च सुखं च ।

सर्वेषां समानं अर्हतां चेतरेणां च ॥

जेसिं आउसमाणं णामं गोदं च वेयणीयं च ।

ते अकयसमुग्घाया सेसा य कयंति समुग्घायं ॥ ६७७ ॥

येषां आयुः समानं नाम गोत्रं च वेदनीयं च ।

ते अकृतसमुद्धाताः शेषाश्च कुर्वन्ति समुद्धातं ॥

अंतरमुहुत्तकालो हवइ जहण्णो वि उत्तमो तेसिं ।

गयवरिसूणा कोडी पुव्वाणं हवइ णियमेण ॥ ६७८ ॥

अन्तर्मुहूर्तकालो भवति जघन्योऽपि उत्तमः तेषां ।

गतवर्षोना कोटिः पूर्वाणां भवति नियमेन ॥

इति सयोगकेवलिगुणस्थानं त्रयोदशम् ।

पच्छा अजोइकेवलि हवइ जिणो अघाइकम्म हणमाणो ।

लहुपंचवखरकालो हवइ फुडं तम्मि गुणठाणे ॥ ६७९ ॥

पश्चादयोगकेवली भवति जिनः अघातिकर्मणां हन्ता ।

लघुपंचाक्षरकालो भवति स्फुटं तस्मिन् गुणस्थाने ॥

परमोरालियकायं सिद्धिलं होऊण गलइ तक्काले ।

थक्कइ सुद्धमुहायो घणणिविडपएसपरमप्पा ॥ ६८० ॥

परमौदारिककायः शिथिलो भूत्वा गच्छति तत्काले ।

तिष्ठति शुद्धस्वभावः घननिविडप्रदेशपरमात्मा ॥

णट्टाकिरियपवित्ती सुक्कज्झाणं च तत्थ णिदिट्ठं ।
खाइयभावो सुद्धो णिरंजणो वीयराओ य ॥ ६८१ ॥

नष्टक्रियाप्रवृत्तिः शुक्लध्यानं च तत्र निर्दिष्टं ।

क्षायिको भावः शुद्धो निरंजनो वीतरागश्च ॥

ज्ञाणं सजोइकेवल्लि जह तह अजोइस्स णत्थि परमत्थें ।
उवयारेण पउत्तं भूयत्थणयविवक्खाए ॥ ६८२ ॥

ध्यानं सयोगकेवलिनो यथा तथाऽयोगिनः नास्ति परमार्थेन ।

उपचारेण प्रोक्तं भूतार्थनयविवक्षया ॥

ज्ञाणं तह ज्ञायारो ज्ञेयवियप्पा य होंति मणसहिण्ण ।
तं णत्थि केवल्लिदुगे तह्मा ज्ञाणं ण संभवइ ॥ ६८३ ॥

ध्यानं तथा ध्याता ध्येयविकल्पाश्च भवन्ति मनःसहिते ।

तत्रास्ति केवल्लिद्विके तस्माद्ध्यानं न संभवति ॥

मणसहियाणं ज्ञाणं मणो वि कम्मइयकायजोयाओ ।
तत्थ वियप्पो जायइ सुहासुहो कम्मउदएण ॥ ६८४ ॥

मनःसहितानां ध्यानं मनोऽपि कर्मणकाययोगात् ।

तत्र विकल्पो जायते शुभाशुभो कर्मोदयेन ॥

असुहे असुहं ज्ञाणं सुहज्जाणं होइ सुहपओगेण ।
सुद्धे सुद्धं कहियं सासवाणासवं दुविहं ॥ ६८५ ॥

अशुभेऽशुभं ध्यानं शुभध्यानं भवति शुभोपयोगेन ।

शुद्धे शुद्धं कथितं सास्त्रवानस्त्रवं द्विविधं ॥

पढमं वीयं तइयं सासवयं होइ इय जिणो भणइ ।
विगयासवं चउत्थं ज्ञाणं कहियं समासेण ॥ ६८६ ॥

प्रथमं द्वितीयं तृतीयं सास्त्रवं भवति एवं जिनो भणति ।

विगतास्त्रवं चतुर्थं ध्यानं कथितं समासेन ॥

णदृष्टपयडिवंधो चरमसरीरेण होइ किंचूणो ।

उहुं गमणसहावो समएणिककेण पावेइ ॥ ६८७ ॥

नष्टाष्टप्रकृतिवन्धश्चरमशरीरेण भवति किंचूनः ।

ऊर्ध्वं गमनस्वभावः समयेनैकेन प्राप्नोति ॥

लौयग्गसिहरखित्तं जावं तणुपवणउवरिमं भायं ।

गच्छइ ताम अथक्को धम्मत्थित्तेण आयासो ॥ ६८८ ॥

लोकशिखरक्षेत्रं यावत्तनुपवनोपरिमं भागं ।

गच्छति तावत् अस्ति धर्मास्तित्वेन आकाशः ।

तत्तो परं ण गच्छइ अच्छइ कालं तु अंतपरिहीणं ।

जह्मा अलोयखित्ते धम्मद्वयं ण तं अत्थि ॥ ६८९ ॥

ततः परं न गच्छति तिष्ठति कालं तु अन्तपरिहीनं ।

यस्मात् अलोकक्षेत्रे धर्मद्रव्यं न तदस्ति ॥

जो जत्थ कम्ममुक्को जलथलआयासपव्वए णयरे ।

सो रिजुगई पवण्णो माणुसखेत्ताउ उप्पयइ ॥ ६९० ॥

यो यत्र कर्ममुक्तो जलस्थलाकाशपर्वते नगरे ।

स ऋजुगतिं प्रपन्नः मनुष्यक्षेत्रत उत्पद्यते ।

पणयालसयसहस्सा माणुसखेत्तं तु होइ परिमाणं ।

सिद्धाणं आवासो तित्थियमित्तम्मि आयासे ॥ ६९१ ॥

पंचचत्वारिंशच्छतसहस्रं मानुषक्षेत्रस्य तु भवति परिमाणं ।

सिद्धानामावाप्तः तावन्मात्रे आकाशे ॥

सव्वे उवरिं सिरसा विसमा हिट्ठम्मि णिच्चलपएसा ।

अवगाहणा य जम्हा उक्कस्स जहणिया दिट्ठा ॥ ६९२ ॥

सर्वे उपरि सदृशाः विपमा अधस्तने निश्चलप्रदेशाः ।

अवगाहना च यस्मात् उत्कृष्टा जघन्यादिष्टा ॥

एगो वि अणंताणं सिद्धो सिद्धाण देइ अवगासं ।

जह्वा सुहमत्तगुणो अवगाहगुणो पुणो तेसिं ॥ ६९३ ॥

एकोऽपि अनन्तानां सिद्धः सिद्धानां ददात्यवकाशं ।

यस्मात्सूक्ष्मत्वगुणः अवगाहनगुणः पुनः तेषां ॥

सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहमं तहेव अवगहणं ।

अगुरुलहुमच्चावाहं अष्टगुणा होंति सिद्धाणं ॥ ६९४ ॥

सम्यक्त्वज्ञानदर्शनवीर्यसूक्ष्मं तथैवावगाहनं ।

अगुरुलघु अव्यावाधं अष्टगुणा भवन्ति सिद्धानां ॥

जाणइ पिच्छइ सयलं लोयालोयं च एकहेलाए ।

सुखं सहावजायं अणोवमं अंतपरिहीणं ॥ ६९५ ॥

जानाति पश्यति सकलं लोकालोकं च एकहेलया ।

सुखं स्वभावजातं अनुपमं अन्तपरिहीनं ॥

रविमेरुचंदसायरगयणाईयं तु णत्थि जह लोए ।

उवमाणं सिद्धाणं णत्थि तथा सुखसंघाए ॥ ६९६ ॥

रविमेरुचन्द्रसागरगगनादिकं तु नास्ति यथा लोके ।

उपमानं सिद्धानां नास्ति तथा सुखसघाते ॥

चलणं वलणं चिंता करणीयं किं पि णत्थि सिद्धाणं ।

जह्वा अइंदियत्तं कम्माभावे समुप्पणं ॥ ६९७ ॥

चलनं वलनं चिन्ता करणीयं किमपि नास्ति सिद्धानां ।

यस्मादतीन्द्रियत्वं कर्माभावेन समुत्पन्नं ॥

णट्टकम्मबंधणजाइजरामरणविप्पमुक्काणं ।

अट्टवरिद्वगुणाणं णमो णमो सच्चसिद्धाणं ॥ ६९८ ॥

नष्टाष्टकर्मबन्धनजातिजरामरणविप्रमुक्तेभ्यः ।

अष्टवरिष्टगुणेभ्यो नमो नमः सर्वसिद्धेभ्यः ॥

जिणवरसासणमतुलं जयतु चिरं सूरिसपरउवयारी ।

पाठय साहू वि तथा जयंतु भव्या वि भुवणयले ॥६९९॥

जिनवरशासनमतुलं जयतु चिरं सूरिः स्वपरोपकारी ।

पाठकः साधुरपि तथा जयन्तु भव्या अपि भुवनतले ॥

जो पढइ सुणइ अक्खइ अण्णोसिं भावसंगहं सुत्तं ।

सो हणइ णिययकम्मं क्रमेण सिद्धालयं जाइ ॥ ७०० ॥

यः पठति शृणोति कथयति अन्येषां भावसंप्रहं सूत्रं ।

स हन्ति निजकर्म क्रमेण सिद्धालयं याति ॥

सिरिविमलसेणगणहरसिस्सो णामेण देवसेणोत्ति ।

अवुहजणवोहणत्थं तेणेयं विरइयं सुत्तं ॥ ॥ ७०१

श्रीविमलसेनगणधराशिष्यो नाम्ना देवसेन इति ।

अवुधजनवोधनार्थं तेनेदं विरचितं सूत्रं ॥

इत्ययोगकेवलिगुणस्थानं चतुर्दशम् ।

इति भावसंग्रहशालं समाप्तम् ।

श्रीमद्रामदेवपण्डितविरचितो

भावसंग्रहः ।

श्रीमद्वीरं जिनाधीशं मुक्तीशं त्रिदशार्चितम् ।
नत्वा भव्यप्रबोधाय वक्ष्येऽहं भावसंग्रहम् ॥ १ ॥
भावा जीवपरीणामा जीवा भेदद्वयाश्रिताः ।
मुक्ताः संसारिणस्तत्र मुक्ताः सिद्धा निरत्ययाः ॥ २ ॥
कर्माष्टकविनिर्मुक्ता गुणाष्टकविराजिताः ।
लोकाग्रवासिनो नित्या ध्रौव्योत्पत्तिव्ययान्विताः ॥ ३ ॥
ये च संसारिणो जीवाश्चतुर्गतिषु संततम् ।
शुभाशुभपरीणामैर्भ्रमन्ति कर्मपाकतः ॥ ४ ॥
शुभभावाश्रयात्पुण्यं पापं त्वशुभभावतः ।
ज्ञात्वैवं सुमते ! तद्धि यच्छेयस्तं समाश्रय ॥ ५ ॥
भावास्ते पंचधा प्रोक्ताः शुभाशुभगतिप्रदाः ।
संसारवर्तिजीवानां जिनेन्द्रैर्ध्वस्तकल्मषैः ॥ ६ ॥
आद्यो द्यौपशमो भावः क्षायिको मिश्रसंज्ञकः ।
भावोऽस्त्यौदयिकस्तुर्यः पंचमः पारिणामिकः ॥ ७ ॥
स्यात्कर्मोपशमे पूर्वः क्षायिकः कर्मणां क्षये ।
क्षा योपशमिको भावः क्षयोपशमसंभवः ॥ ८ ॥

कर्मोदयाद्भवो भावो जीवस्यौदयिकस्तु यः ।
 स्वभावः परिणामः स्यात्तद्भवः पारिणामिकः ॥ ९ ॥
 द्वौ नवाष्टादशैकाग्रविंशतिश्च त्रयस्तथा ।
 इत्यौपशमिकादीनां भावानां भेदसंग्रहः ॥ १० ॥
 स्यादुपशमसम्यक्त्वं चारित्रं च त्रयाविधम् ।
 इत्यौपशमिको भावो भेदद्वयमुपागतः ॥ ११ ॥
 सम्यक्त्वं दर्शनं ज्ञानं वृत्तं दानादिपंचकम् ।
 स्वस्वकर्मक्षयोद्भूतं नवैते क्षायिके भिदः ॥ १२ ॥

द्विकलं—

दर्शनत्रयमाद्यं च ज्ञानचतुष्कमादिमम् ।
 क्षयोपशमसम्यक्त्वं त्र्यज्ञानं दानपंचकम् ॥ १३ ॥
 रागोपयुक्तचारित्रं संयमासंयमस्त्विति ।
 अष्टादश प्रभेदाः स्युः क्षायोपशमिकेऽज्ञसा ॥ १४ ॥
 चतस्रो गतयो वामं त्रयो वेदास्त्वसंयमः ।
 लेश्यापट्टमसिद्धत्वं चत्वारश्च कपायकाः ॥ १५ ॥
 अज्ञानत्वेन संयुक्ताः प्रभेदा एकविंशतिः ।
 औदयिकस्य भावस्य निर्दिष्टा भाववेदिभिः ॥ १६ ॥
 अभव्यत्वं च भव्यत्वं जीवत्वं च त्रयः स्मृताः ।
 पारिणामिकभावस्य भेदा गणधरैः स्फुटम् ॥ १७ ॥
 मिथ्यादित्रिषु मिश्राद्यास्त्रयो ह्यसंयतादिषु ।
 चतुर्षु चोपशांतेषु चतुर्षु निखिलाः पृथक् ॥ १८ ॥

आद्यं विना चतुर्भावाः क्षपकश्रेणिसंभवाः ।
 विनौपशमिकं मिश्रं त्रयः स्युर्योग्ययोगिनोः ॥ १९ ॥
 सिद्धे द्वावेव जायेते क्षायिकः पारिणामिकः ।
 गुणस्थानान्यतो वक्ष्ये तत्तल्लक्षणलक्षितम् ॥ २० ॥
 मिथ्या सासादनं नाम मिश्रमसंयताव्हयम् ।
 विरताविरताख्यं स्यात् प्रमत्तं चाप्रमत्तकम् ॥ २१ ॥
 अपूर्वकरणाभिख्यं ततोऽनिवृत्तिसंज्ञकम् ।
 सूक्ष्मलोभात्मकं तस्मादुपशान्तकृपायकम् ॥ २२ ॥
 क्षीणमोहं सयोगाख्यमयोगिस्थानमन्तिमम् ।
 एतानि गुणस्थानानि प्रभवन्ति चतुर्दश ॥ २३ ॥
 एतैस्त्यक्ताः प्रजायन्ते सिद्धा लोकोत्तमोत्तमाः ।
 स्वशुद्धात्मसुखानन्दरसास्त्रादनतत्पराः ॥ २४ ॥
 तत्राद्यं यद्गुणस्थानं मिथ्यात्वं नाम जायते ।
 पंचानां दृष्टिमोहाख्यैकर्मणामुदयोद्भवम् ॥ २५ ॥
 तत्रास्त्यौदयिको भावो मिथ्याकर्मोदयोद्भवः ।
 मुख्यतस्तद्वशाज्जन्तोर्वैपरीत्यं प्रजायते ॥ २६ ॥
 अदेवे देवताबुद्धिरतत्त्वे तत्त्वनिश्चयः ।
 मिथ्यात्वाविलचित्तस्य जीवस्य जायते तथा ॥ २७ ॥
 मधुरं जायते तीक्ष्णं तीक्ष्णं तु मधुरायते ।
 पित्तज्वरार्तजीवस्य वैपरीत्यं यथाखिलम् ॥ २८ ॥

१ सप्तानां ख. । २ मिथ्यात्वमनन्तानुन्धिचतुष्कं चेति पंचानां दृष्टिमोह-
 संहा मिश्रसम्यक्त्वकर्मानुनेलने च सप्तानामपि । तदुक्तं--

एकधा त्रिविधा वा स्यात्कर्म मिथ्यात्वमंशुद्धम् ।

क्रोधाद्याद्यचतुष्कंच सहेते दृष्टिमोहनम् ॥

मद्यमोहाद्यथा जीवो न जानात्यहितं हितम् ।
 धर्माधर्मौ न जानाति मिथ्यावासनया तथा ॥ २९ ॥
 मिथ्यादृष्टेर्न रोचेत जैनं वाक्यं निवेदितम् ।
 उपदिष्टानुपदिष्टमतत्वं रोचते स्वयम् ॥ ३० ॥
 तन्मिथ्यात्वं जिनैः प्रोक्तं पंचधैकान्तवादतः ।
 अतोऽहं क्रमशो वच्मि तत्तद्वादविकल्पनम् ॥ ३१ ॥
 वेदान्तं क्षणिकत्वं च शून्यत्वं विनयात्मकम् ।
 अज्ञानं चेति मिथ्यात्वं पंचधा वर्तते भुवि ॥ ३२ ॥
 वेदवादी वदत्येवं विपरीतं तु मूढधीः ।
 जलस्नानाद्भवेच्छुद्धिः पितृणां मांसतर्पणम् ॥ ३३ ॥
 गोयोनिस्पर्शनाद्धर्मः स्वर्गाप्तिर्जीवघातनात् ।
 इत्यादिदुर्घटोत्कट्यं वेदवादिमते मतम् ॥ ३४ ॥
 यद्यम्बुस्नानतो देही कृतपापाद्धि मुच्यते ।
 तदा याति दिवं सर्वे जीवास्तोयसमुद्भवाः ॥ ३५ ॥
 यदर्जितं पुरा पापं जीवैर्योगत्रयाश्रयात् ।
 कथं तेऽत्र विमुंचन्ति तीर्थतोयावगाहनात् ॥ ३६ ॥
 उक्तं च गीतायांः—

अरण्ये निर्जले क्षेत्रे अशुचिब्राह्मणा मृतः ।
 वेदवेदांगतत्वज्ञः कां गतिं स गमिष्यति ॥ १ ॥
 यद्यसौ नरकं याति वेदाः सर्वे निरर्थकाः ।
 यदि चेत्स्वर्गमाप्नोति जलशौचं निरर्थकं ॥ २ ॥

१ अत्र हि न चतुर्थी यदा रोचेत तदा चतुर्थी यदा तु न रोचेत तदा तु प-
 ष्टधेव । २ जैनवाक्यं, ख. । ३ नां ख. । ४ अत्र हि यमुद्देशं वेदवादी स्वीकृत्य
 जीवशुद्धिं मन्यते तस्याः सोदेशायाः निषेधः क्रियते न तु संहितादौ विहितस्य
 लौकिकस्य गृहस्थस्नानस्य । ५ अस्याग्रे “श्लोकौ” इति, ख.—पाठः । ६ अयं
 स्वर्गमवाप्नोति ख ।

इन्द्रियविषयासक्ताः कपायै रंजिताशयाः ।
 न तेषां स्नानतः शुद्धिर्गृहव्यापारवर्तिनाम् ॥ ३७ ॥
 तीर्थांस्वुस्नानतः शुद्धिं ये मन्यन्ते जडाशयाः ।
 परिभ्रमन्ति संसारे नानायोनिसमाकुले ॥ ३८ ॥
 तपसा जायते शुद्धिर्जीवस्येन्द्रियनिग्रहात् ।
 सम्यक्त्वज्ञानयुक्तस्य बन्धिना कनकं यथा ॥ ३९ ॥
 द्विकलम्—

व्रतशीलदयाधर्मगुप्तित्रयमहीयसाम् ।
 सद्ब्रह्मचर्यनिष्ठानां स्वात्मैकाग्रचेतसाम् ॥ ४० ॥
 स्वभावाशुचिदेहस्य संभवेऽपि प्रजायते ।
 विशुद्धत्वं यतीशानां जलस्नानं विना सदा ॥ ४१ ॥
 उक्तं च गीतायां—

अत्यन्तमलिनो देहो देही चात्यन्तनिर्मलः ।

उभयोरन्तरं दृष्ट्वा कस्य शौचं विधीयते ॥ १ ॥

आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्त्वावहा शीलतटा द्योर्मिः ।
 तत्राभिषेकं कुरु पांडुपुत्र ! न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा ॥२॥

तस्माच्छुद्धं प्रपद्यन्ते जिनोद्दिष्टाध्वकोविदाः ।

भव्याः स्वात्मसुखानन्दस्यन्दतोयावगाहनान् ॥ ४२ ॥

तीर्थस्नानदृषणम् ।

मांसेन पितृवर्गस्य शीणनं वैविधीयते ।

भक्षितं तैर्निजं गोघ्नर्षादृशीश्रुतिकोविदैः ॥ ४३ ॥

स्वकर्मफलपाकेन गोत्रजाः पशुतां गताः ।
 श्राद्धार्थं घातनात्तेषां किन्न स्यात्तत्पलादनम् ॥ ४४ ॥
 कथंचित्पशुतां प्राप्तः पिता स्वकर्मपाकतः ।
 हत्वा तमेव तन्मांसं तत्तृप्त्यैर्भक्षितं भवेत् ॥ ४५ ॥
 वकनामा द्विजस्तस्य पिता मृत्वा मृगोऽभवत् ।
 तच्छ्राद्धे तत्पलं दत्त्वा द्विजेभ्यस्तेन भक्षितम् ॥ ४६ ॥
 श्रुत्वाप्येवं पुराणोक्तं सुप्रसिद्धं कथानकम् ।
 तथाप्यज्ञाः प्रकुर्वन्ति पिपर्णां मांसतर्पणम् ॥ ४७ ॥
 मांसाशिनो न पात्रं स्युर्मांसदानं न चोत्तमम् ।
 तत्पितृभ्यः कथं तृप्त्यै भुक्तं मांसाशिभिर्भवेत् ॥ ५८ ॥
 भुक्तेऽन्यैस्तृप्तिरन्येषां भवत्यस्मिन् कथंचन ।
 तत्तत्स्वर्गं गता जीवास्तृप्तिं गच्छन्ति निश्चितम् ॥ ४९ ॥
 पुत्रेणार्पितदानेन पितरः स्वर्गमवाप्नुयुः ।
 तर्हि तत्कृतपापेन तेऽपि गच्छन्ति दुर्गतिम् ॥ ५० ॥
 अन्यस्य पुण्यपापाभ्यां भुनक्त्यन्यः शुभाशुभम् ।
 ईदृशं विपरीतं तन्न कापि श्रूयते भुवि ॥ ५१ ॥
 मृत्वा जीवोऽथ गृह्णाति देहमन्यं हि तत्क्षणे ।
 पितृत्वं कस्य जायेत वृथैवं जल्पनं ततः ॥ ५२ ॥
 स्वकृतपुण्यपापाभ्यां प्राप्तिः स्यात्सुखदुःखयोः ।
 तस्मान्द्रव्याः कुरुध्वं तद्यस्माच्छ्रेयो भवेत्सदा ॥ ५३ ॥
 अथैके प्रवदन्त्येवं भूतोयाग्निनगादिषु ।
 भूतग्रामेषु सर्वेषु विष्णुर्वसति सर्वगः ॥ ५४ ॥

१ पिताऽथ कर्म पाकतः ख. । २ पितुः । ३ पितृचरमृगस्य ४ पितृगो क. ।

५ तद्वत्स्वर्गं क. ।

उक्तं च पुराणे—

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके ।

ज्वालमालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥ १ ॥

वसेत्सर्वाङ्गिदेहेषु विष्णुः सर्वगतो यदि ।

वृक्षादिघातनात्सोऽपि हन्यमानो न किं भवेत् ॥ ५५ ॥

मत्स्यकूर्मवराहाद्या विष्णोर्गर्भाश्रया दश ।

मत्स्यादिशैलविम्बानां पूजनं क्रियते ततः ॥ ५६ ॥

तस्मान्मत्स्यादिजीवानां चैतन्यसंयुजां जनैः ।

प्राणाभिघातनं तेषां श्राद्धादौ क्रियते कथम् ॥ ५७ ॥

सर्वेष्वङ्गप्रदेशेषु प्रत्येकं देहधारिणाम् ।

ब्रह्माद्या देवताः सन्ति वेदार्थोऽयं सनातनः ॥ ५८ ॥

उक्तं च पुराणे—

नाभिस्थाने वसेद्ब्रह्मा विष्णुः कण्ठे समाश्रितः ।

तालुमध्यस्थितो रुद्रो ललाटे च महेश्वरः ॥ १ ॥

नासाग्रे तु शिवं विद्यात्तस्यांते च परापरं ।

परात्परतरं नास्ति शास्त्रस्यायं विनिश्चयः ॥ २ ॥

यज्ञादावामिपं तेषां भुक्तं छागादिदेहिनाम् ।

यदि स्वर्गाय जायेत नरकं केन गम्यते ॥ ५९ ॥

तदङ्गे चेन्न विद्यन्ते तच्छास्त्रं स्यान्निरर्थकम् ।

सन्ति ते चेत्कथं हन्या निवृण्वैर्ब्रह्मकर्मणि ॥ ६० ॥

इति मांसेन पितृवर्गवृत्तिदृग्गणम् ।

अन्ये चैवं वदन्त्येके यज्ञार्थं यो निहन्यते ।
 तस्य मांसाग्निः सोऽपि सर्वे यान्ति सुरालयम् ॥ ६१ ॥
 तर्त्तिकं न क्रियते यज्ञः शास्त्रज्ञैस्तस्य निश्चयात् ।
 पुत्रवध्वादिभिः सर्वे प्रगच्छन्ति दिवं यथा ॥ ६२ ॥
 एवं विरुद्धमन्योन्यं मत्वा वास्तवमञ्जसा ।
 प्रतार्यतेऽन्धवन्मांसविवेकविकलाशयैः ॥ ६३ ॥
 प्राणिप्राणात्यये शक्ताः प्रशक्ता मांसभक्षणे ।
 क्रिया कौतस्कुती तेषां प्राप्तये स्वर्गमोक्षयोः ॥ ६४ ॥
 उक्तं च पुराणे—

तिलसर्पपमात्रं तु मांसं भक्षन्ति ये द्विजाः ।
 नरकान्न निवर्तन्ते यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ १ ॥
 आकाशगामिनो विप्राः पतिता मांसभक्षणात् ।
 विप्राणां पतनं दृष्ट्वा तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ॥ २ ॥

कश्चिदाहेति यत्सर्वं धान्यपुष्पफलादिकं ।
 मांसात्मकं न तर्त्तिकस्याजीवाङ्गत्वप्रसंगतः ॥ ६५ ॥
 नैवं स्यान्मांसमंग्यङ्गं जीवाङ्गं स्यान्न वामिपम् ।
 यथा निम्बो भवेद्बृक्षो बृक्षो निम्बो भवेन्न वा ॥ ६६ ॥
 इति हेतोर्न वक्तव्यं सादृश्यं मांसधान्ययोः ।
 मांसं निन्द्यं न धान्यं स्यात्प्रसिद्धेयं श्रुतिर्जने ॥ ६७ ॥
 उक्तं च—

आगोपालादि यत्सिद्धं मांसं धान्यं पृथक् पृथक् ।
 धान्यमानय इत्युक्ते न कश्चिन्मांसमानयेत् ॥ १ ॥

इत्याद्यनेकधा शास्त्रं यत्कृतं दुष्टचेतसैः ।
 तदङ्गीकृत्य जायंते जना दुर्गतिभाजनम् ॥ ६८ ॥
 तत्तावत्प्राणिघातेन साधितं मांसभक्षणात् ।
 पापं सम्पद्यते यस्माद्दुःखं श्वाभ्रं तदुच्यते ॥ ६९ ॥
 खरशूकरमार्जारश्वानवानरगोमुखाः ।
 वृत्तास्तिस्राश्चतुष्कोणा दुःस्पर्शा वज्रसन्निभाः ॥ ७० ॥
 वंटाकारा अधोवक्त्रा दुर्गन्धास्तमसावृताः ।
 श्वभ्रेषु पापजीवानामुत्पत्यै सन्ति योनयः ॥ ७१ ॥
 तीव्रमिध्यात्वसंयुक्ताः प्राणिघातनतत्पराः ।
 ऋरा दुश्चेष्टिता जीवा उत्पद्यन्तेऽत्र योनिषु ॥ ७२ ॥
 अन्तर्मुहूर्तकालेन पर्याप्तीः समवाप्य पट् ।
 ततः पतन्ति शस्त्राग्रे स्वयमेवोत्पतन्ति च ॥ ७३ ॥
 असुरा आतृतीयान्तं योधयन्ति परस्परम् ।
 प्रयुध्यन्ते स्वयं तेऽपि ज्ञात्वा वैरं पुरातनम् ॥ ७४ ॥
 यज्ञादौ निहता पूर्वं छागाद्या मुष्टिघाततः ।
 स्मृत्वा तत् प्राक्तनं वैरं भवन्ति हननोद्यताः ॥ ७५ ॥
 कुन्तककचशूलाद्यैर्नानाशस्त्रैस्तनूद्भवैः ।
 खंडं खंडं विधायैवं प्रपीडयन्त्यहर्निशम् ॥ ७६ ॥
 मृतकस्येव संघातस्तद्देहेषु प्रजायते ।
 यावदायुःस्थितिस्तेषां न तावन्मरणं भवेत् ॥ ७७ ॥
 तप्तायःपिण्डमादाय संप्रदर्य्यामिषोपमम् ।
 निक्षिपन्ति मुखे तेषां विहितामिषभोजिनाम् ॥ ७८ ॥

शारीरं मानसं दुःखमन्योन्योदीरितं च यत् ।
 सहन्ते नारका नित्यं पूर्वपापविपाकतः ॥ ७९ ॥
 लेख्यास्तिस्रोऽशुभास्तेषां संस्थानं हुंडसंज्ञकम् ।
 अतिक्लिष्टाः परीणामा लिंगं नपुंसकाव्हयम् ॥ ८० ॥
 क्षारोष्णतीव्रसद्भावनदीवैतरणीजलात् ।
 दुर्गन्धमृन्मयाहाराद्भुजते दुःखमद्भुतम् ॥ ८१ ॥
 अक्षणोर्निर्मूलनं यावन्नास्ति सौख्यं च तावता ।
 नरके पच्यमानानां नारकाणामहर्निशम् ॥ ८२ ॥
 तस्मान्निर्गत्य कष्टेन पशुतां यान्ति ते जनाः ।
 तत्र दुःखमसह्यं च जननीगर्भगव्हरे ॥ ८३ ॥
 गर्भाद्विनिसृतानां स्यात् क्रियत्कालावशेषतः ।
 यज्ञादौ विहितं कर्म तत्तथैवोपतिष्ठति ॥ ८४ ॥
 एवं भ्रमन्ति संसारे स्मृतिं लब्ध्वा पुनः पुनः ।
 ज्ञात्वैवं क्रियतां भव्यैः प्राणिनां प्राणरक्षणम् ॥ ८५ ॥
 यज्ञे पशुवधकृतेन स्वर्गप्राप्तिदूषणम् ।

गोयोनिर्वधते नित्यं न चास्यं मलिनं यतः ।
 पश्य लोकस्य मूर्खत्वं वर्तते हेतुवर्जितम् ॥ ८६ ॥
 तिरश्ची गौस्तृणाहारी नित्यं विष्मूत्रलालसा ।
 तस्या अपरभागस्य कथं देवत्वमागतम् ॥ ८७ ॥
 ईदृग्विधापि धन्द्या सा रज्ज्वा किं बन्ध्यते दृढम् ।
 दुग्धार्थं पीड्यते दण्डैराक्रन्दन्ती स्वभापया ॥ ८८ ॥
 तस्याङ्गे देवताः सर्वे तिष्ठन्ति सागरा नगाः ।
 कथं गौर्यज्ञवेलायां बन्ध्यते सा द्विजाधमैः ॥ ८९ ॥

यथा गौः प्रभवेद्वन्द्या तथैते शूकरादयः ।
 तयोः सादृश्यसद्भावे विष्णुमूत्राहारसेवनात् ॥ ९० ॥
 एतत्स्ववाग्निवृद्धं यन्मन्यन्ते जडबुद्धयः ।
 आयत्यां दुर्गतां जन्म प्रपद्यन्ते सुनिश्चितम् ॥ ९१ ॥
 न वन्द्या गौर्भवेद्वन्द्या गौर्वाणीत्यभिधानतः ।
 जैनेन्द्री विमला तथ्या भव्यानां मुक्तिदायिनी ॥ ९२ ॥
 इति गोयोनिवन्दनादूपणम् ।

विरञ्चिर्जगतः कर्ता संहर्ता गिरिजापतिः ।
 रक्षकः पुण्डरीकाक्ष इत्यूचुः श्रुतवेदिनः ॥ ९३ ॥
 यदि ब्रह्मा जगत्कर्ता तर्त्तिक शक्रस्य संसदि ।
 विलोक्याप्सरसां वृन्दं जातो भोगामिलापुकः ॥ ९४ ॥
 ततोऽसौ स्वास्पदं त्यक्त्वा कर्तुं लग्नस्तपो भुवि ।
 तावद्गीत्या कृतं देवैस्तत्तपोविघ्नकारणम् ॥ ९५ ॥
 दृष्ट्वा तिलोत्तमानृत्यं तत्राभूद्विषयातुरः ।
 गत्वा तदन्तिकं गाढमाश्लेषं याचते हि सः ॥ ९६ ॥
 अनिच्छन्तीं तिरोभूतां तां गवेपयतोऽभवत् ।
 तस्मिन्मुखानि चत्वारि पंचमं च खराननम् ॥ ९७ ॥
 हास्यास्पदीकृतो देवैस्ततः क्रुद्धोतिनिर्भरम् ।
 खरास्येन भ्रमन्तोऽसौ भक्षणार्थं मरुद्गणान् ॥ ९८ ॥
 दृष्ट्वा तान् क्षुभितान् सर्वाश्छिन्नं रुद्रेण तच्छिरः ।
 अत्यजन् विषयासक्तिं प्रविष्टो वनराजकम् ॥ ९९ ॥
 तिलोत्तमेति विभ्रान्त्या सेविता वच्छभट्टिका ।

१ गौरत्र भवेद्द्वं. ख. । २ काश्यः ख. । ३ इत्युत्तं ख. । ४ ना ख. ।
 ५ अत्यजद्वि । ६ वनराजिकां. ख. ।

तद्योस्तत्राभवत्पुत्रो जाम्बुवानिति विश्रुतः ॥ १०० ॥
 यस्यास्ति महती शक्तिर्विश्वकर्तृत्वसंभवी ।
 स्वल्पतराय राज्याय किमसौ तप्यते वृथा ॥ १०१ ॥
 न शक्नोत्यात्मनस्त्यक्तुं यो दुःखं विरहात्मकम् ।
 कथं स्याद्विश्वकर्तृत्वे स्वामित्वं तस्य वेधसः ॥ १०२ ॥
 यद्येवं सकलं विश्वं कुरुते कमलासनः ।
 तदा संतिष्ठते कासौ सृष्टिनिर्माणक्षणे ॥ १०३ ॥
 यत्र स्थित्वा करोत्येष तदेव स्यान्महीतलम् ।
 तत्रापि शेषभूतानि तत्कर्तृत्वमपार्थक्यम् ॥ १०४ ॥
 सृष्टिनिर्माणे कस्मादानीतो भूतसंग्रहः ।
 कानि वा तत्र शस्त्राणि योग्यानि शिल्पिकर्मणि ॥ १०५ ॥
 विनोपकरणैस्तेन विश्वं केभ्यो विधीयते ।
 पृथिव्याद्यैस्तु कर्तृत्वं मिथ्या तेषामसंभवात् ॥ १०६ ॥
 भूम्यादिपंचभूतानां यदि पूर्वमसंभवः ।
 नास्त्यसंभविनां कर्ता संभविनां तु का क्रिया ॥ १०७ ॥
 कर्तृत्वं द्विविधं वस्तुकर्तृत्वं वैक्रियोद्भवम् ।
 आद्यं घटादिकर्तृत्वं द्वितीयं देवनिर्मितम् ॥ १०८ ॥
 पर्यायानां घटादीनां कौतस्कुतीह कर्तृता ।
 विना भूतैः पृथिव्याद्यैर्घटनाया असंभवात् ॥ १०९ ॥
 नै यान्ति मनसा कर्तुं विवर्णाः पार्थिवा अपि ।
 कथं कस्मात्समानीता तद्योग्या जीवसंहतिः ॥ ११० ॥

ममुत्पादोऽखिलार्थानां मानसो हि प्रजायते ।
न ह्यदृष्टदार्थानां घटना कापि दृश्यते ॥ १११ ॥
यदि वैक्रियिकं विञ्चं विद्याशक्त्या विनिर्मितम् ।
अवस्तुभूतसम्बन्धाच्च भवेत्तच्चिरन्तनम् ॥ ११२ ॥
एवं सुवर्णगर्भस्य कर्तृत्वं नोपजायते ।
अनाद्यकृत्रिमस्यास्य विञ्चस्येति विनिश्चयः ॥ ११३ ॥
चराचरमिदं विञ्चं सशैलवनसागरम् ।
कृत्वा स्वोदरमध्यस्थं संरक्षति जनार्दनः ॥ ११४ ॥
असौ सन्तिष्ठते कस्मिन् स किं लोकाद्गर्भिवः ।
तस्याङ्गनाश्च सैन्यानि क्व तिष्ठन्ति सहोदराः ॥ ११५ ॥
जानकीहरणासक्तः कृतदोषो दशाननः ।
हतो रामेण तौ स्यातां लोकान्तर्वर्तिनौ न किम् ॥ ११६ ॥
सारथ्यं पांडुपुत्रस्य कृत्वा कृष्णो निपातयेत् ।
कौरवान् निखिलांस्तेपि विञ्चान्तर्वर्तिनो न किम् ॥ ११७ ॥
मायेयं तस्य तद्रूपमनन्तं निर्विकारकम् ।
तस्मात्तस्योदरे माति विञ्चं तु मानगोचरम् ॥ ११८ ॥
विञ्चगर्भमनन्तं स्याद्व्योमैकं तदचेतनम् ।
अस्मावप्यनया युक्त्या विष्णुर्भवत्यचेतनः ॥ ११९ ॥
दशगर्भाश्रितं जन्म निर्विकारस्य जायते ।
असंभाव्यं भवत्येतद्व्या पुत्रानुकारिणाम् ॥ १२० ॥
अनेन हेतुनाऽकिञ्चित्करः स्यान्मधुमूदनः ।
तस्मान्न संभवत्यस्य विञ्चरक्षाधिकारिता ॥ १२१ ॥

भस्मसात्कुरुते रुद्रस्त्रैलोक्यं स्वल्पचिन्तया ।
 तदा संवसति कासौ गंगागौरीसमन्वितः ॥ १२२ ॥
 दहत्येकतरं ग्रामं स पापी भण्यते जनैः ।
 यो विश्वं निर्दहेत् सर्वं स कथं याति पूज्यताम् ॥ १२३ ॥
 अनन्यसंभवीशक्तियुक्तस्य प्रथिवीपतेः ।
 पापं न विद्यते यस्मात्पापहन्ता स एव हि ॥ १२४ ॥
 शम्भोर्न विद्यते पापं चेत्कथं भ्रमते भुवि ।
 प्रतितीर्थं करालघ्नब्रह्मशीर्षस्य हानये ॥ १२५ ॥
 भ्रमन्प्राप्तः पलाशाख्यं ग्रामं यावत्कपालभृत् ।
 वत्सेन तत्र शृंगाभ्यां विदार्य मारितो द्विजः ॥ १२६ ॥
 तत्पापात् स्वतनुं कृष्णं दृष्ट्वा सोऽथ विनिर्ययौ ।
 निजमातरमापृच्छथ तत्पापोच्छेदनेच्छया ॥ १२७ ॥
 गतोऽनुमार्गतस्तस्य वृषभस्य महेश्वरः ।
 गांगं हृदं प्रविष्टौ द्वौ त्यक्तपापौ बभूवतुः ॥ १२८ ॥
 वृषभस्योपदेशेन गंगातोयावगाहनात् ।
 जातस्त्यक्तकपालोऽपि कपालीत्युच्यते जनैः ॥ १२९ ॥
 यदि यः स्वकृतं पापं निर्नाशयितुमक्षमः ।
 सोऽन्येषां कल्मषापाये स्वामी स्यादिति कौतुकम् ॥ १३० ॥
 ईदृक्पुराणसंदोहं श्रुत्वा युक्तिविवर्जितम् ।
 विभ्रमन्ति जनाः स्वैरं संसारगहने वने ॥ १३१ ॥
 महास्कन्धस्य लोकस्य कर्ता हर्ता च रक्षकः ।
 न कोऽपि विद्यते तस्माद्विपरीतमिदं वचः ॥ १३२ ॥

इत्येतद्विपरीतात्ममिथ्यात्वं कथितं मया ।

अतश्च क्षणिकैकान्तं मिथ्यात्वं तन्निगद्यते ॥ १३३ ॥

इति वेदान्तोक्तं विपरीतं मिथ्याचम् ।

क्षणिकैकान्तमिथ्यात्वव्यादीं चोद्धो वदन्यतैः ।

उत्पन्नश्च प्रतिध्वंसी भवत्यात्मा प्रतिक्षणम् ॥ १३४ ॥

क्षणिके स्वीकृते जीवे क्षणाद्ध्वंसभावतः ।

पुण्यं पापं च तत्रापि कः प्राप्नोति पुगतनम् ॥ १३५ ॥

संयमो नियमो दानं कारुण्यं व्रतभावना ।

सर्वथा घटते तेषां नित्यक्षणिकवादिनाम् ॥ १३६ ॥

तेषां बन्धो विना बन्धं देहो देहं विना तथा ।

नास्ति मोक्षस्ततो नूनं नास्तिकत्वं प्रसज्यते ॥ १३७ ॥

ज्ञानं यदि क्षणध्वंसि बालत्वे चेष्टितं च यत् ।

इदं पुत्रकलत्राद्यं ममेति स्मर्यते कथम् ॥ १३८ ॥

स्मर्यते दृष्टिमात्रेण मैत्री वैरं पुरातनम् ।

निर्गतेन निजावासं पुनरागम्यते कथम् ॥ १३९ ॥

अन्यच्च क्षणिकैकान्ते वर्तन्ते स्वेच्छया जनाः ।

सुरामांसाशनेनैते मन्यन्ते मोक्षमायनम् ॥ १४० ॥

पात्रे यत्पतितं सर्वं भक्षाभक्षं च सेव्यते ।

अस्मच्छास्त्रे प्रयुक्तत्वाद्वास्मिन् विचारणा मता ॥ १४१ ॥

सुरामांसाशनात्स्वर्गं मोक्षं च गम्यते यदि ।

दुःसहं नारकं भीमं प्राप्यते केन हेतुना ॥ १४२ ॥

अन्ये धीवरशौण्डाद्याः मूनकारादयो जनाः ।

मुक्तिभाजो भवन्त्येते यदि तथ्येदृशी श्रुतिः ॥ १४३ ॥

जीवो नित्यस्तु पर्याया अनित्यास्तु तदाश्रयात् ।

अनित्यत्वं हि जीवस्य कथंचिद्दृष्टमर्हता ॥ १४४ ॥

अतस्तत्तत्क्षणिकैकान्तमिध्यात्वस्यापसारणम् ।

कृत्वा सम्यक्त्वहेतूनां प्रयत्नं क्रियतामिति ॥ १४५ ॥

इति नित्यक्षणिकैकान्तमिध्यात्वम् ।

सत्तावबोधचैतन्यलक्षणो यः सनातनः ।

तस्याभावं वदत्येवं चार्वाको मानवर्जितः ॥ १४६ ॥

अचेतनानि भूतानि जीवः स्याच्चेतनात्मकः ।

कथं भवेद्विजातिभ्यः सचेतनस्य संभवः^१ ॥ १४७ ॥

भूतयोगात्मिका शक्तिश्चैतन्यमभिधीयते ।

पिष्टोदकगुडादिभ्यो मदशक्तिर्यथा भवेत् ॥ १४८ ॥

गर्भादिर्मरणपर्यन्तं तस्यावस्थानसंभवः ।

ततो नास्त्यन्यजीवत्वं विना तेनान्यलोकता ॥ १४९ ॥

मुक्त्वेह लौकिकं सौख्यं व्रतैः क्लिश्यन्त्यहर्निशम् ।

हाँ ! वंचितास्त एवास्मिन्नाशापाशवशीकृताः ॥ १५० ॥

अक्षसौख्याय संसेव्या भग्नी माता गुरुस्त्रियः ।

मद्याद्यं च न दोषोऽत्र जीवस्याभावतः स्फुटम् ॥ १५१ ॥

इत्येवं निगदन् दुष्टशर्वाकः किन्न विन्दति ।

सद्यः खण्डीकृतां जिह्वां प्रत्यक्षं चासिधारया ॥ १५२ ॥

१ मतस्य ह्यपसारणं. ख. २ इति. ख-पुस्तके नास्ति । ३ अस्मादग्रे परः इति ख-पाठः, तस्यार्थः पर आहेति । ४ मृत्यु. ख. १ ५ हि. ख. ।

अचेतनानि भूतानि नोपादानानि चेतने ।
 मिथ्येति गोमयादिभ्यो वृश्चिकाद्युपदर्शनात् ॥ १५३ ॥
 स्वसंवेदनवेद्यत्वात् सुखदुःखादिवद्भ्रुवम् ।
 जीवसिद्धिं कथं नैते मन्यन्ते दुष्टवादिनः ॥ १५४ ॥
 तावत्संवर्धते देहो यावज्जीवोपनिष्ठते ।
 तस्याभावे न सा वृद्धिर्देहो विलयमाप्नुयात् ॥ १५५ ॥
 पञ्चभूतात्मिके देहे देहिना वर्जिते न हि ।
 संभूतिर्गमनादीनां प्रत्यक्षे भूतसंचये ॥ १५६ ॥
 मृत्वायमभवद्रक्षो बन्धुर्वा जनको परः ।
 नासन्यं जातु संभूयात् प्रसिद्धमिति गर्वतः ॥ १५७ ॥
 जात्यनुस्मरणार्ज्जीवो गतागतविनिश्चयात् ।
 पृथक्करणसादृश्याज्जीवोस्तीति विनिश्चयः ॥ १५८ ॥
 नास्ति जीव इति व्यक्तं यद्वदन्तीह दृष्टियः ।
 तन्मिथ्यात्वं परित्याज्यं सम्यक्त्वभावनावलान् ॥ १५९ ॥
 इति नास्तिकवादनिराकरणम् ।

तापसाः प्रवदंत्येवं सर्वे जीवाः शिवात्मकाः ।
 ततस्तेषां प्रकुर्वीत विनयो मोक्षमाधकः ॥ १६० ॥
 यद्यंगिनः शिवात्मानो बन्दकः किन्न तद्विधः ।
 तस्मात्कः केन बन्धः स्याद्दृष्टयोः मान्यं शिवन्वयोः ॥ १६१ ॥
 कर्मोपाधिविनिर्मुक्तः तद्रूपं शैवमुच्यते ।
 यत्कर्मस्तोमसंयुक्तमशुद्धात्मकमित्यतः ॥ १६२ ॥

यो न वेत्ति परं स्वं च शुद्धाशुद्धस्वभावकम् ।
 कथं तेनाप्यते मोक्षः सर्वेषां विनयादिह ॥ १६३ ॥
 विनयो यदि सर्वेषां योग्यायोग्यक्रमादते ।
 किं न वन्द्याः खराद्याश्च मातङ्गाद्याः शिवाप्तये ॥ १६४ ॥
 वन्दना क्रियते मूढैः पुत्रभार्याभिवाञ्छया ।
 यक्षाद्यखिलदेवानां तुच्छानां कुत्सितात्मनाम् ॥ १६५ ॥
 भुक्तिमात्रप्रदानेन स्वस्मै तृप्त्यभिलाषिणाम् ।
 तेषां कौतस्कुती शक्तिर्वाञ्छितार्थप्रदायिनी ॥ १६६ ॥
 पूर्वभार्याजिता व्राप्तिर्जायते सुखदुःखयोः ।
 देहिनां किं प्रकुर्वन्ति यक्षाद्याः देवताधमाः ॥ १६७ ॥
 शैवाचार्या वदन्त्येके काले कल्पशते गते ।
 मुक्तिं गतेषु जीवेषु लोकः शून्यो भवेदिति ॥ १६८ ॥
 मुक्तिं गता पुनर्जीवाः पतन्तीश्वरचिन्तया ।
 चतुर्गत्यात्मके भीमे संसारे दुःखसंकुले ॥ १६९ ॥
 वन्धिः काष्ठसमुद्भूतः पुनः काष्ठं भवेद्यदि ।
 तदा मुक्तिं गता जीवाः पुनः प्रयान्ति संसृतिम् ॥ १७० ॥
 यस्य प्रयत्नमन्येषां पातनाय शिवात्मनाम् ।
 परस्परविरुद्धत्वात् स शिवो वंद्यते कथम् ॥ १७१ ॥
 कल्याणं परमं सौख्यं निर्वाणं पदमच्युतम् ।
 साधितं येन देवेन स शिवः स्तूयते ब्रुवैः ॥ १७२ ॥
 एवं वैनयिकं नाम मिथ्यात्वं दुर्गतेः पदम् ।
 तमुत्सृज्य समाराध्यं शिवं रत्नत्रयात्मकम् ॥ १७३ ॥

इति विनयमिथ्यात्वम् ।

ज्ञाता दृष्टा पदार्थानां त्रैलोक्योदरवर्तिनाम् ।
 तस्याज्ञानस्य भावत्वं ब्रूते सांग्म्यो निरीश्वरः ॥ १७४ ॥
 तस्य मतानुसारित्वमङ्गीकृत्य प्रकल्पितम् ।
 मस्करीपूरणेनेह वीरनाथस्य संयदि ॥ १७५ ॥
 जिनेन्द्रस्य ध्वनिग्राहिभाजनाभावतस्ततः ।
 शक्रेणात्र समानीतो ब्राह्मणो गौतमामिश्रः ॥ १७६ ॥
 सद्यः सदीक्षितस्तत्र य ध्वनेः पात्रतां ययौ ।
 ततो देवसभां त्यक्त्वा निर्ययौ मस्करी मुनिः ॥ १७७ ॥
 मन्त्यस्मदादयोऽप्यत्र मुनयः श्रुतधारिणः ।
 तांस्त्यक्त्वा य ध्वनेः पात्रसज्जानी गौतमोऽभवत् ॥ १७८ ॥
 संचिन्त्येवं बुद्ध्या तेन दुर्विदग्धेन जल्पितम् ।
 मिथ्यात्वकर्मणः पाप्मादज्ञानत्वं हि देहिनाम् ॥ १७९ ॥
 हेयोपादेयविज्ञानं देहिनां नास्ति जातुचित् ।
 तस्मादज्ञानतो मोक्ष इति शास्त्रस्य निश्चयः ॥ १८० ॥
 यत्कालान्तरितं वस्तु दृष्टपूर्वमनेकधा ।
 यद्यज्ञानी कथं तस्य चेत्त्वं दृश्यतेऽङ्गिनः ॥ १८१ ॥
 अयं बन्धुः पिता सुनुमतेयं भगिनी मित्रा ।
 एषां पृथक्कथा तन्व ज्ञानहीनस्य दुर्वदा ॥ १८२ ॥
 पंचाक्षविषयाः सर्वैः सेव्यन्ते ज्वेच्छदा कथम् ।
 पापणस्तंभवत्तस्य न काचित् कर्तृता मता ॥ १८३ ॥
 ज्ञानं विना न चाग्निं तद्विना ध्यानभावनम् ।
 ध्यानं विना कथं मोक्षस्तस्माज्ज्ञानं मतां मतम् ॥ १८४ ॥

गृहीत्वा चीवरं दण्डं भिक्षापात्रं च कंबलम् ।
 भिक्षाशनं समानीय स्वावासे युज्यते सदा ॥ १९५ ॥
 क्रियत्काले गतेऽप्येवं जाता सुभिक्षता ततः ।
 भणितं संघमाहृत्य शान्तिना गणधारिणा ॥ १९६ ॥
 त्यजध्वं कुल्यिताचारं भजध्वं शुद्धसदृशम् ।
 कुरुध्वं गर्हणं निन्दां गृहीध्वं मद्भृतं पुनः ॥ १९७ ॥
 आकर्ष्येत्यग्रजः शिष्यो जिनचन्द्रो ब्रवीद्विदम् ।
 नो शक्यतेऽधुना धर्तुं जिनैराचारिणं व्रतम् ॥ १९८ ॥
 ब्रह्मचर्यमचेलत्वं नग्रत्वं स्थितिभोजनम् ।
 भूतले शयनं मौनं द्विमासं वेशलुञ्चनम् ॥ १९९ ॥
 एकस्थानमलाभत्वं सर्वाङ्गमलधारणम् ।
 असह्यान्यन्तरायाणि भिक्षानियतकालिकी ॥ २०० ॥
 न शक्या मनसा सोढुं द्वाविंशतिपरीपहाः ।
 इत्याद्यनेकधा दुःखमधुना केन मत्तते ॥ २०१ ॥
 इदानीं तनमाचारं सुखसाध्यं न शक्यते ।
 तत्परित्यक्तुमस्माभिस्तन्मान्मानं भजस्व हि ॥ २०२ ॥
 ततोऽभाषि गणी नैवं सुन्दरं चत्वर्योदितम् ।
 स्वोदरपूर्तये हेतुर्नो हेतुर्मांक्षसाधने ॥ २०३ ॥
 तद्रोपात्पापिना मूर्ध्नि हन्वा दण्डेन मारितः ।
 मृत्वा चैत्यगृहे तस्मिन्नाचार्यो व्यंतगेऽभवद् ॥ २०४ ॥
 ततः शिष्यमुख्यं यावन्ध्वयं भूत्वा गणाग्रणीः ।
 तावत्भिक्षां पुनर्दातुं प्रारंभे व्यन्तगमरः ॥ २०५ ॥

भीतेन तस्य शान्त्यर्थं काष्ठमष्टांगुलायतम् ।
 चतुरस्रं च स एवायमिति संकल्प्य पूजितः ॥ २०६ ॥
 श्वेताम्बरैः परिस्थाप्य समर्चितो यथाविधि ।
 ततस्तेन परित्यक्तं चेष्टितं विक्रियात्मकम् ॥ २०७ ॥
 समभूत् कुलदेवोऽग्नौ पर्युषामनसंज्ञकः ।
 अद्यापि जलगन्धाद्यैः प्रपूज्यतेऽतिभक्तितः ॥ २०८ ॥
 अन्तरे श्वेतसद्वस्त्रं धृत्वा तस्यार्चनं कृतम् ।
 तस्माद्भूदिदं लोके श्वेताम्बरमतामिधम् ॥ २०९ ॥
 समुत्पन्नेऽपि कैवल्ये भुनक्ति केवली जिनः ।
 नारीणां तद्भवे मोक्षः साधूनां ग्रन्थसंयुजाम् ॥ २१० ॥
 ईदृशं शास्त्रसंदोहं विपरीतं जिनोक्तितः ।
 संविधाय वदत्येव गुरुद्रोही निरंकुशः ॥ २११ ॥
 यस्यानन्तसुखं तस्य नास्त्याहारप्रसंगता ।
 यद्यस्त्यनन्तसौख्यानां व्याघातो जायते ध्रुवम् ॥ २१२ ॥
 नास्ति क्षुधां विनाहारः क्षुन्मुख्या दोषसंहतिः ।
 इति हेतौर्जिनेन्द्रस्य सदोषत्वं प्रसज्यते ॥ २१३ ॥
 वेदनीयस्य सद्भावे बुभुक्षाद्यं प्रजायते ।
 तस्मात्केवलिनां भुक्तिर्न भवेदोषकारिणी ॥ २१४ ॥
 दग्धरज्जुसमं वेद्यं स्वशक्तिपरिवर्जितम् ।
 असमर्थं स्वकार्यस्य कर्तृत्वे क्षीणमोहिनि ॥ २१५ ॥
 मोहमूलं भवेद्वेद्यं मोहविच्छेदमीयुपि ।
 तद्वेतोर्निष्फलं वेद्यं छिन्नमूलतरुयथा ॥ २१६ ॥

बुभुक्षा भोक्तुमिच्छा स्यादिच्छापि मोहजा स्मृता ।
तत्क्षये वीतरागस्य भोजनान् स्यान्मदोपता ॥ २१७ ॥
तद्यथा—

अक्षार्थेषु विरक्तस्य गुप्तित्रयोपसंयुजः ।
साधोः सम्पद्यते ध्यानं निश्चलं कर्मणां रिपुः ॥ २१८ ॥
ध्यानान्तरसंस्मरतीभावस्तन्मात्स्वान्मन्यवस्थितिः ।
ततस्तु कुरुते नूनं निःशेषं मोहनंक्षयम् ॥ २१९ ॥
भून्वाथ क्षीणमोहान्मा शुक्लध्याने द्वितीयये ।
स्थित्वा घातिक्षयं कृत्वा केवली प्रभवन्त्यनो ॥ २२० ॥
दशाष्टदोषनिर्मुक्तो लोकालोकप्रकाशकः ।
अनन्तसुखसंतुप्तः कथं भुनक्ति केवली ॥ २२१ ॥
सन्ति क्षुधादयो दोषाः कियन्तश्चेज्जिनेशिनः ।
निर्दोषो वीतरागोऽर्था परमात्मा कथं भवेत् ॥ २२२ ॥
अर्थादासीन्ययुक्तानां साधूनां भोजनादिकम् ।
कुर्वतां वीतरागत्वं सर्वेषां नस्मृतं मताम् ॥ २२३ ॥
मिथ्यात्वज्वरसम्पन्नतीव्रदायवृत्तामवर् ।
प्रलापस्तूपचारणं वीतरागा तस्मा यतः ॥ २२४ ॥
विनाहारं न च क्वापि दृश्यतेऽत्र तदुत्थितिः ।
तन्मात्रेऽवलिभिर्नृत्तमाहारं पृथक्ते मदा ॥ २२५ ॥
नोऽवर्मवर्मनामा च लेपाहागोऽयं नात्मनः ।
ओजश्च कवलाहारश्चेत्याहारो हि पट्टिश्च ॥ २२६ ॥

एवमनेकधाहारो देहस्य स्थितिकारणम् ।
 तन्मध्ये क्वलाहारो वान्यो देहस्थितौ भवेत् ॥ २२७ ॥
 नो कर्मकर्मनामानमाहारं गृह्यतोऽर्हतः ।
 देहस्थितिर्भवत्येतदस्माकमपि सम्मतम् ॥ २२८ ॥
 आहोश्वित्क्वलाहारपूर्विका स्यात्तनुस्थितिः ।
 त्वयैवं भण्यते तत्र प्रसिद्धा व्यभिचारिता ॥ २२९ ॥
 एकेन्द्रियेषु जीवेषु लेपाहारः प्रजायते ।
 आहारो मानसो देवसमूहेष्वखिलेष्वपि ॥ २३० ॥
 इति हेतोर्जिनेन्द्रस्य क्वलाहारपूर्विका ।
 देहस्थितिर्न वक्तव्या त्वया स्वप्नेऽपि दुर्मते ! ॥ २३१ ॥
 एकादश जिने सन्ति बुभुक्षाद्याः परीपहाः ।
 तस्मात्केवलानां भुक्तिरनिवार्या भवाद्दृशैः ॥ २३२ ॥
 किमेवं क्रियते मूढ ! पुनश्चर्वितचर्वणम् ।
 क्षुत्पिपासादयो दोषा यस्मात्पूर्वं निराकृताः ॥ २३३ ॥
 क्षुत्पिपासादयो यस्मान्न समर्था मोहसंक्षये ।
 द्रव्यकर्माश्रयात्तेषामस्तित्वमुपचारतः ॥ २३४ ॥
 अस्तु वा तस्य वेद्योत्थबुभुक्षाया विचारणा ।
 अनेकजीवहिंसाद्यं पश्यन् भुंक्ते कथं जिनः ॥ २३५ ॥
 यस्माच्छुद्धमशुद्धं वा स्वल्पज्ञानयुता जनाः ।
 कुर्वन्ति भोजनं तद्वत् केवली कुहते कथम् ॥ २३६ ॥

१ अस्याग्रेऽयं पाठः ख-पुस्तके । उक्तं चान्यत्र—

णोकम्मं तित्थयरे कम्मं णारेय माणसो अमरे ।

णरपसुकवलाहारो पक्खी ओजो णगे लेओ ॥ १ ॥

२ हेते ख. ।

अन्तरायान् विना तस्य प्रवृत्तिर्भोजने यदि ।
 श्रावकेभ्योऽतिनीचत्वं निन्दास्पदं प्रजायते ॥ २३७ ॥
 करोति चान्तरायांश्च दृष्टे चायोग्यवस्तुनि ।
 तदा सर्वज्ञभावस्य दत्तस्तेन जलाञ्जलिः ॥ २३८ ॥
 तथापि क्वलाहारं ये वदन्ति जिनेशिनः ।
 सुरास्वादमदोन्मत्ता जल्पन्ति घृणिता इव ॥ २३९ ॥
 इति केवलिभुक्तिनिराकरणम् ।

अथ स्त्रीणां भवे तस्मिन् मोक्षोऽस्तीति वदन्ति ये ।
 ते भवन्ति महामोहग्रहग्रस्ता जना इव ॥ २४० ॥
 यद्यपि कुरुते नारी तपोऽप्यत्यन्तदुःसहम् ।
 तथापि तद्भवे तस्या मोक्षो दूरतरो हि सः ॥ २४१ ॥
 तस्या जीवो न किं जीवो जीवमात्रोऽथवा स्मृतः ।
 मोक्षा वाप्तिर्न जायेत नारीणां केन हेतुना ॥ २४२ ॥
 जीवसामान्यतो मुक्तिर्यद्यस्ति चेतप्रजायताम् ।
 मातंगिन्याद्यशेषाणां नारीणामविशेषतः ॥ २४३ ॥
 सदैवाशुद्धता योनौ गलन्मलाश्रयत्वतः ।
 रजःस्खलनमेतासां मासं प्रति प्रजायते ॥ २४४ ॥
 उत्पद्यन्ते सदा स्त्रीणां योनौ कक्षादिमन्धिषु ।
 मूक्षमापर्याप्तका मर्त्यास्तद्देहस्य स्वभावतः ॥ २४५ ॥
 स्वभावः कुत्सितस्तासां लिंगं चात्यन्तकुत्सितम् ।
 तस्मान्न प्राप्यते साक्षाद्देहा संयमभावना ॥ २४६ ॥

उत्कृष्टसंयमं मुक्त्वा शुक्लध्याने न योग्यता ।
 नो मुक्तिस्तद्विना तस्मात्तासां मोक्षोऽति दूरगः ॥ २४७ ॥
 सप्तमं नरकं गन्तुं शक्तिर्यासां न विद्यते ।
 आद्यसंहननाभावान्मुक्तिस्तासां कुतस्तनी ॥ २४८ ॥
 योपित्स्वरूपतीर्थेशां तल्लिंगस्तनभूषिताः ।
 अर्चाः प्रतिष्ठिताः कापि विद्यन्ते चैत्प्रकथ्यताम् ॥ २४९ ॥
 न सन्ति चेन्मताभावः सन्ति चेद्भण्डिमास्पदम् ।
 एवं दोषद्वयासंगान्मोक्षो न घटते स्त्रियः ॥ २५० ॥
 कुलीनः संयमी धीरो निःसंगो विजितेन्द्रियः ।
 संग्राप्नोति पुमानेव मुक्तिकान्तासमागमम् ॥ २५१ ॥

इति स्त्रीमोक्षनिराकरणम् ।

मुक्त्वा निर्ग्रन्थसन्मार्गं मोक्षैकसाधनं नृणाम् ।
 सग्रन्थत्वेन मोक्षोऽस्ति प्रवदन्तीति दुर्द्वियः ॥ २५२ ॥
 सग्रन्थत्वेन मोक्षस्य यद्यस्ति साधनं परम् ।
 आदीश्वरेण साम्राज्यं राज्यं त्यक्तं कथं वद ॥ २५३ ॥
 आद्यसंहननोपेतः कुलजोऽपि न सिद्धयति ।
 विना निर्ग्रन्थलिंगेन नरः सर्वांगसुन्दरः ॥ २५४ ॥
 न ह्येवं चीवरं दण्डं भिक्षापात्रादिसंयुतम् ।
 इत्युपकरणं साधु गृह्यते मोक्षकाम्यया ॥ २५५ ॥

१-२४७ तमश्लोकस्योत्तरार्द्धं २४८ तम श्लोकस्य पूर्वार्धं ख-पुस्तकादृतं ।
 २ मुक्त्वा निर्ग्रन्थसन्मार्गं इत्यादि श्लोकादुत्तरं 'स्त्रीनिर्वाणनिराकरणं' इति पाठः
 क-पुस्तके ।

लिखायुक्ताश्रयस्थानं वस्त्रादीनां परिग्रहः ।
 तस्यादानविनिक्षेपात् क्षालनादङ्गिनां वधः ॥ २५६ ॥
 वस्त्रयाचनया दैन्यं प्राप्तौ व्यामोहता भवेत् ।
 तस्मात्संयमहानिः स्यान्निर्मलत्वं च दूरगम् ॥ २५७ ॥
 ततोऽन्तर्वाह्यभेदाभ्यां ग्रन्थाभ्यां परिवर्जितम् ।
 जिनेन्द्रकथितं लिंगं सम्यक्त्वं तस्य भावना ॥ २५८ ॥
 ससम्यक्त्वस्य जीवस्य चारित्रं मोक्षसाधकम् ।
 तस्मान्निर्ग्रन्थ्यतायुक्तं जिनलिंगं प्रशस्यते ॥ २५९ ॥
 संयमोऽयं हि दुःसाध्यो जिनकल्पात्मिकोऽयुना ।
 ततः स्थविरकल्पस्य वृत्तमस्माभिराश्रितम् ॥ २६० ॥
 जिनकल्पोऽस्ति दुःसाध्यः सर्वसंगपरिच्युतः ।
 तस्मात्त्वयैव नैर्ग्रन्थ्यं प्रमाणीकृतमञ्जसा ॥ २६१ ॥
 नैवं परिग्रहाः सन्ति कल्पे स्थविरसंज्ञके ।
 तस्याश्रयेऽपि तद्वाक्यं त्वयैव विफलीकृतम् ॥ २६२ ॥
 अर्थतत्कथ्यते वृत्तं जिनकल्पाभिधानकम् ।
 यस्मान्मुक्तिवधूसंगो भव्यानां जायते ध्रुवम् ॥ २६३ ॥
 शुद्धसम्यक्त्वसंयुक्ता विजिताक्षकपायकाः ।
 श्रुतमेकादशाङ्गं ये जानन्त्येकाक्षरं यथा ॥ २६४ ॥
 पादयोः कण्ठकं लंघं नेत्रयो रजसंगमे ।
 स्वयं नापनयन्त्यन्यैः स्फोटिते मौनधारणम् ॥ २६५ ॥
 आद्यसंहननोपेताः संततं मौनधारिणः ।
 गुहायां पर्वतेऽरण्ये वसन्ति निम्नगातटे ॥ २६६ ॥

वर्षासु मासपट्टं हि मार्गे जातेऽङ्गिसंकुले ।
 निराहारा वितिष्ठन्ते कायोत्सर्गेण निस्पृहाः ॥ २६७ ॥
 सन्मोक्षसाधने निष्ठा रत्नत्रयविभूषिताः ।
 निःसंगा निरता वाढं ध्यानयोर्धर्मशुक्लयोः ॥ २६८ ॥
 मुनयोऽनियतावासा विहरन्ति जिना यथा ।
 ततस्ते गणिभिः प्रोक्ता जिनकल्पाभिधानकाः ॥ २६९ ॥
 अन्ये स्थविरकल्पस्था यतयो जिनलिङ्गिनः ।
 सम्यक्त्वामलदुग्धाम्बुनिमग्रीकृतचेतसः ॥ २७० ॥
 अष्टाविंशतिसंख्याकैः पञ्चमहाव्रतादिभिः ।
 मूलगुणैः समायुक्ता ध्यानाध्ययनतत्पराः ॥ २७१ ॥
 शीलव्रतेषु संसक्ता दशधाधर्मतत्पराः ।
 अन्तर्ब्राह्मणतपोनिष्ठाः पञ्चाचारसमन्विताः ॥ २७२ ॥
 जीर्णे तृणे सुवर्णादौ मित्रे शत्रुसमागमे ।
 दुःखोत्पत्तौ च सौख्ये च यतयः समबुद्धयः ॥ २७३ ॥
 वदन्ति धर्मशास्त्रार्थमन्यथा मौनधारिणः ।
 निःस्पृहा निरहंकाराः सर्वसत्वदयापराः ॥ २७४ ॥
 केचिच्छुतार्णवोत्तीर्णा मनःपर्ययबोधनाः ।
 अवधिज्ञानिनः केचिदनागारा यतीश्वराः ॥ २७५ ॥
 अवधेः प्राक् प्रगृह्णन्ति मृदुपिच्छं यथागतम् ।
 यत्स्वयं पतितं भूमिप्रतिलेखनशुद्ध्ये ॥ २७६ ॥

१ च तिष्ठन्ति ख—पाठः । २ पञ्चभिश्च महाव्रतैः ख. । ३ जीर्णतृणे त. ।
 ४ शास्त्रोपदेशादन्यसमये । ५ योः क. ।

स्थविरादिगणत्राणपोषणाहितमानसाः ।
 ततः स्थविरकल्पस्था भण्यन्ते गणनायकैः ॥ २७७ ॥
 संप्रति दुःपमे काले नीचसंहननाश्रयात् ।
 संजाता नगरग्रामजिनावासनिवासिनः ॥ २७८ ॥
 नीचसंहननं कालो दुसहश्चपलं मनः ।
 तथापि संयमोद्युक्ता महाव्रतधुरंधराः ॥ २७९ ॥
 पुस्तकं च यथायोग्यं गृह्णन्ति संयमार्थिनः ।
 अनवद्यं विशुद्धं यद्विना याचनयागतम् ॥ २८० ॥
 गृह्णन्ति यतयो वस्तु दर्शनाद्यविधातकम् ।
 न तद्विरोधि वस्त्रादि यत्र मावद्यसंभवः ॥ २८१ ॥
 ईदृक्स्थविरकल्पः स्यात्सर्वसंगपरिच्युतः ।
 अन्यो गृहस्थकल्पोऽयं यत्र वस्त्रादिसंग्रहः ॥ २८२ ॥
 अयं गृहस्थकल्पस्तु निर्दिष्टः श्वेतवासिंसां ।
 इन्द्रियातिहरस्तेषां मुक्तये नैव जायते ॥ २८३ ॥
 इत्येतन्मतमालम्ब्य ये वर्तन्ते यदृच्छया ।
 मिथ्यात्वान्धतमस्तोमपटलावृतलोचनाः ॥ २८४ ॥
 ये चान्ये काष्ठसंघाद्या मिथ्यात्वस्य प्रवर्तनान् ।
 आयत्यां प्राप्नुयुर्दुःखं चतुर्गतिषु सन्ततम् ॥ २८५ ॥
 इति सप्रन्थमोक्षमार्ग-श्वेताम्बरमतनिर्गकरणम् ।

१ संवाद. ख. । प्रानादक्षेपः । २ वास्तव्य ख. । ३ ख—पुस्तकेऽयं श्लोको नास्ति ।

मिथ्यात्वालंबनापाकात् प्रयान्ति नारकीं गतिम् ।
 यत्रास्ति दुःखमत्युग्रमन्योन्योर्दारितं महत् ॥ २८६ ॥
 तस्मान्निर्गत्य तैरर्थां गतिं प्राप्यानुभूयते ।
 भारातिवाहनाद्यं यद्भीमं दुःखमनेकधा ॥ २८७ ॥
 कथंचिन्मानुषं जन्म प्राप्तं तत्रापि सद्यते ।
 अर्थार्जनविहीनत्वाद्दुःखं स्वोदरपूर्तये ॥ २८८ ॥
 काकतालीयकन्यायाद्गतिर्देवी समाप्यते ।
 तत्रास्ति मानसं दुःखं हीनाधिकविभूतितः ॥ २८९ ॥
 एवमनेकधा दुःखं दुःखं दुःखं पुनः पुनः ।
 ततो मिथ्यात्वमुत्सृज्य सम्यक्त्वे भावनां कुरु ॥ २९० ॥
 इत्येवं पंचधा प्रोक्तं मिथ्यादृष्ट्यभिधानकम् ।
 नोपादेयमिदं सर्वं मिथ्यात्वविपदोपतः ॥ २९१ ॥
 इति^३ प्रथमं मिथ्यात्वं गुणस्थानम् ।

अतः सासादनं नाम गुणस्थानद्वितीयकम् ।
 निगद्यतेऽत्र मुख्यो हि भावः स्यात्पारिणामिकः ॥ २९२ ॥
 सम्यक्त्वासादने नाम वर्तनं यस्य विद्यते ।
 सासादन इति प्राहुर्मुनयो भाववेदिनः ॥ २९३ ॥
 अनादिकालसंभूतमिथ्याकर्मापशान्तितः ।
 स्यादौपशमिकं नाम सम्यक्त्वमादिमं हि तत् ॥ २९४ ॥
 संत्यज्य वेदकं याति प्रशान्तात्मिकया दृशम् ।
 गत्वा वा सादिमिथ्यात्वं द्वितीया सा दृगुच्यते ॥ २९५ ॥

१ सुखं. ख. । २ अयं पाठः ख—पुस्तके २९२ श्लोकादुत्तरं । स च 'इत्याद्यः-
 मिथ्यात्वं गुणस्थानं प्रथमं' इत्येवं रूपः । ३ मिति. ख. । ४ प्रशान्तात्मिकयोर्दृशं क ।

आद्योपशमसम्यक्त्वात् प्रच्युतो याति वामताम् ।
च्युतोऽथवा द्वितीयं स्यान्मिथ्यात्वं याति वा न वा ॥२९६॥

द्विकलम्—

आद्योपशमसम्यक्त्वरत्नाद्रेर्वा परिच्युतः ।
एकतरोदये जाते मध्येऽनन्तानुबन्धिनाम् ॥ २९७ ॥
समयादावर्लापट्टकं कालं यावन्न गच्छति ।
मिथ्यात्वभूतलं जीवस्तावत्सासादनो भवेत् ॥ २९८ ॥
अपूर्णञ्चभ्रजीवेषु लब्धपर्याप्तजन्तुषु ।
सर्वेष्वपि न जायेत सासादनो विनिश्चितम् ॥ २९९ ॥
आहारकद्वयं तीर्थकर्तृत्वनामकर्म च ।
सासादनो न बध्नाति सम्यक्त्वस्य विराधनात् ॥ ३०० ॥
भव्यत्वोदयता तस्य सम्यक्त्वग्रहणाद्विदुः ।
तद्ग्रहणस्य सामर्थ्यात्क्रियत्कालेन सिद्धयति ॥ ३०१ ॥
पश्य सम्यक्त्वमाहात्म्यं क्रियत्कालापिसंभवम् ।
ततोऽत्र भावना भव्य ! कर्तव्यार्हनिशं त्वया ॥ ३०२ ॥
सासादनगुणस्थानं व्यवहारात्प्रकथयते ।
क्षायोपशमिको भावो मुख्यत्वेनेह जायते ॥ ३०३ ॥

इति^१ द्वितीयं सासादनं गुणस्थानम् ।

१ द्वितीयरत्नात् क. । २ श्लोकऽर्थे ख-पुनरेकं नस्ति । ३ 'सासादनगुण-
स्थानं द्वितीयं' इति ख-पाठः ।

अथ मिश्रगुणस्थानं प्रकथ्यते यथागमम् ।
 क्षायोपशमिको भावो मुख्यत्वेनेह जायते ॥ ३०४ ॥
 मिश्रकर्मोदयाज्जीवे पर्यायः सर्ववातिजः ।
 न सम्यक्त्वं न मिथ्यात्वं भावोऽसौ मिश्र उच्यते ॥३०५॥
 अहिंसालक्षणो धर्मो यज्ञादिलक्षणोऽथवा ।
 मन्यते समभावेन मिश्रकर्मविपाकतः ॥ ३०६ ॥
 जिनोक्तिं मन्यते यद्वदन्योक्तिं मन्यते तथा ।
 देवे दोषोज्झिते भक्तिस्तथैव दोषसंयुते ॥ ३०७ ॥
 निग्रन्था यतयो वन्द्यास्तथैव द्विजतापसाः ।
 यत्रैषा जायते बुद्धिर्मिश्रं स्यात्तद्गुणास्पदम् ॥ ३०८ ॥
 गोदुग्धे चार्कदुग्धे वा समताविलबुद्धयः ।
 हेयोपादेयतत्त्वेषु यथैते विकलाशयाः ॥ ३०९ ॥
 जैनभावो वदन्त्येवं ममैताः कुलदेवताः ।
 चंडिकाराममाताद्या महालक्ष्मीर्महालयाः ॥ ३१० ॥
 अर्चन्ति परया भक्त्या प्रनृत्यन्ति तद्ग्रतः ।
 ऐहिकाशामहामोहोह्याकुलीकृतचेतसः ॥ ३११ ॥
 मोहार्त्तः कुरुते श्राद्धं पितृणां तृप्तिहेतवे ।
 अजानन् जीवसद्भावगतिस्थित्यादिवर्तनम् ॥ ३१२ ॥
 इत्येतद्वर्तनं सर्वं मिश्रभावसमाश्रितम् ।
 येषां ते मिश्रभावाढ्या भ्रमन्ति भवपद्धतौ ॥ ३१३ ॥
 सम्यग्मिथ्यात्वयोर्मध्ये यदेकतरभावना ।
 तथा स्यात्तस्य तन्नाम मिश्रं स्थानं ततो न हि ॥३१४ ॥

न ह्येवं सुप्रसिद्धोऽस्ति भावान्तरसमुद्भवः ।
 सर्वशास्त्रेषु सर्वत्र बालगोपालसम्मतः ॥ ३१५ ॥
 जाल्यन्तरसमुद्भूतिर्वडवाखरयोर्यथा ।
 गुडदध्नोः समायोगे रसान्तरं यथा भवेत् ॥ ३१६ ॥
 तथा धर्मद्वये श्रद्धा जायते समबुद्धितः ।
 मिश्रोऽसौ भण्यते तस्माद्भावो जाल्यन्तरात्मकः ॥ ३१७ ॥
 सकलाणुव्रते न स्तो नायुर्वन्धो भवेत्कश्चित् ।
 मारणान्तं समुद्घातं न कुर्यान्मिश्रभावतः ॥ ३१८ ॥
 मृत्युं न लभते जीवो मिश्रभावं समाश्रितः ।
 सदृष्टिर्वामदृष्टिर्वा भूत्वा मरणमश्नुते ॥ ३१९ ॥
 सम्यग्मिथ्यात्वयोर्मध्ये येनायुरजितं पुरा ।
 अश्रियते तेन भावेन गतिं यान्ति तदाश्रिताम् ॥ ३२० ॥
 मिश्रभावमिमं त्यक्त्वा सम्यक्त्वं भज सन्मते ! ।
 मुक्तिकान्तासुखावाप्त्यै यद्यस्ति विपुला मतिः ॥ ३२१ ॥

इति तृतीयं मिश्रगुणस्थानम् ।

असंयतगुणस्थानमतो वक्ष्ये चतुर्थकम् ।
 सौपानमादिमं मोक्षप्राप्तादमधिरोहताम् ॥ ३२२ ॥
 तत्रौपशमिको भावः क्षायोपशमिकावहयः ।
 क्षायिकश्चेति विद्यन्ते त्रयो भावा जिनोदिताः ॥ ३२३ ॥

अक्षेपु विरतो नैव न स्थावरे वराङ्गिषु ।
 द्वितीयानां कृपायाणां विषाकाद्व्रतो यतः ॥ ३२४ ॥
 श्रद्धानं कुरुते भव्यो ह्याज्ञयाधिगमेन वा ।
 द्रव्यादीनां यथाम्नायं सम्यग्दृष्टिरसंयतः ॥ ३२५ ॥
 परिच्छित्तौ पदार्थानां हर्षोल्लसितचेतसि ।
 या रुचिर्जायते साध्वी तच्छ्रद्धानमिति स्मृतम् ॥ ३२६ ॥
 आप्तागमयतीशानां तत्वानामल्पबुद्धितः ।
 जिनाज्ञयैव विश्वासो भवत्याज्ञा हि सा परा ॥ ३२७ ॥
 घातिकर्मक्षयोद्भूतकेवलज्ञानरश्मिभिः ।
 प्रकाशकः पदार्थानां त्रैलोक्योदरवर्तिनाम् ॥ ३२८ ॥
 सर्वज्ञः सर्वतो व्यापी त्यक्तदोषो ह्यवंचकः ।
 देवदेवेन्द्रवन्द्यांहिराम्नोऽसौ परिकीर्तितः ॥ ३२९ ॥
 पूर्वापरविरुद्धात्मदोषसंघातवर्जितः ।
 यथावद्वस्तुनिर्णीतिर्यत्र स्यादागमो हि सः ॥ ३३० ॥
 विराजतेऽष्टविंशत्या शुद्धैर्मूलगुणैः सदा ।
 भेदाभेदनयाक्रान्तो रत्नत्रयविभूषणैः ॥ ३३१ ॥
 ऐहिकाशापरित्यक्तो धर्मशास्त्रार्थतत्परः ।
 रागद्वेषविनिमुक्तो दशधर्मसमन्वितः ॥ ३३२ ॥
 निःशल्यो निरहंकारः परिग्रहपरिच्युतः ।
 पक्षपातोऽज्ज्ञतः शान्तः स मुनिर्वन्द्यते मया ॥ ३३३ ॥
 सूक्ष्मे जिनोदिते तत्त्वे नास्ति चेन्महती मतिः ।
 आप्नोदितं यथाम्नायं श्रद्धानं क्रियते तथा ॥ ३३४ ॥

एवमाज्ञाभवो भावः प्ररूपितः समासतः ।

अतोऽधिगमभावस्य लक्षणं कथ्यते यथा ॥ ३३५ ॥

निश्चीयते पदार्थानां लक्षणं नयभेदतः ।

सोऽधिगमोऽभिमन्तव्यः सम्यग्ज्ञानविलोचनैः ॥ ३३६ ॥

द्रव्याणि पट्टप्रकाराणि जीवोऽथ पुद्गलस्तथा ।

धर्माधर्मनभःकाला अतस्तेषां प्ररूपणम् ॥ ३३७ ॥

जीवो हि सौपयोगान्मा कर्ता भोक्ता तनुप्रमः ।

स्वभावेनोर्ध्वगोऽमूर्तः संगारी निद्रिनायकः ॥ ३३८ ॥

जीवितो दशभिः प्राणैर्जीविष्यति च जीवति ।

स जीवः कथ्यते सद्भिर्जीवतत्वविदां वरैः ॥ ३३९ ॥

जन्तोर्भावो हि वस्त्वर्थ उपयोगः स च द्विधा ।

साकारोऽनिराकारो ज्ञानदर्शनभेदतः ॥ ३४० ॥

उपयोगो हि साकारो ज्ञानलक्षणलक्षितः ।

स चाष्टधा भवेन्मिथ्यासम्यग्ज्ञानप्रभेदतः ॥ ३४१ ॥

कुमतिः कुश्रुतज्ञानं विभङ्गाख्योऽवधिस्तथा ।

अज्ञानत्रितयं चेति मिथ्याकर्मफलोद्भवम् ॥ ३४२ ॥

मतिः श्रुतावधी स्वान्तः केवलं चेति पंचधाः ।

सम्यग्ज्ञानं भवेत्तस्य वर्तनं स्वार्थगोचरम् ॥ ३४३ ॥

स्याद्दर्शनोपयोगस्तु चतुर्भेदमुपागतः ।

निराकारो हि तस्यास्ति स्थितिरान्तर्मुहूर्तिश्च ॥ ३४४ ॥

चक्षुर्दर्शनमाद्यं स्यादचक्षुर्दर्शनं ततः ।
 अवध्याख्यं च कैवल्यं चतुर्थेति प्रचक्ष्यते ॥ ३४५ ॥
 अक्षैर्मनोवधिभ्यां वा विशिष्टवस्तुदर्शनम् ।
 तद्दर्शनं भवेत्स्वात्मसंवित्तिः केवलं परम् ॥ ३४६ ॥
 स्वयं कर्म करोत्युच्चैः शुभाशुभविकल्पतः ।
 कर्ताऽसौ कथ्यते सद्भिर्व्यवहारनयाश्रयात् ॥ ३४७ ॥
 तत्फलं च स्वयं भुङ्क्ते तस्माद्भोक्तेति भण्यते ।
 प्रविस्तारोपसंहाराद्भवत्यङ्गी तनुप्रमः ॥ ३४८ ॥
 स्वभावेनोर्ध्वगा शक्तिस्तस्माद्भवेत्तदात्मकः ।
 वर्णादिभिर्विहीनत्वादमूर्तो जायते हि सः ॥ ३४९ ॥
 पञ्चविधेऽत्र संसारे जीवः संसरति स्वयम् ।
 तस्माद्भवति संसारी कृतकर्मप्रचोदितः ॥ ३५० ॥
 प्राप्य द्रव्यादिसामग्रीं भस्मसात्कुर्वते स्वयम् ।
 कर्मेन्धनानि सर्वाणि तस्मात्सिद्ध इति स्मृतः ॥ ३५१ ॥
 अवस्थाभेदतो जीवः पुनस्त्रेधा प्रचक्ष्यते ।
 बहिरात्मान्तरात्मा च परमात्मेति तत्त्वतः ॥ ३५२ ॥
 हेयोपादेयवैकल्यान्न च वेत्त्यहितं हितम् ।
 निमग्नो विषयाक्षेषु बहिरात्मा विमूढधीः ॥ ३५३ ॥
 अन्तरात्मा त्रिधा क्लिष्टमध्यमोत्कृष्टभेदतः ।
 असंयतो जघन्यः स्यान्मध्यमौ द्वौ तदुत्तरौ ॥ ३५४ ॥
 अप्रमत्तादयः सर्वे यावत्क्षीणकपायकाः ।
 उत्तमा यतयः शान्ताः प्रभवन्त्युत्तरोत्तरम् ॥ ३५५ ॥

परमात्मा द्विधा सूत्रे सकलो निकलः स्मृतः ।
 सकलो भण्यते सद्भिः केवली जिनसत्तमः ॥ ३५६ ॥
 निष्कलो मुक्तिकान्तेश्चिदानन्दैकलक्षणः ।
 अनंतसुखसंतृप्तः कर्माष्टकविवर्जितः ॥ ३५७ ॥
 जीवैः ।

वर्णमेकं रसं गन्धं स्पर्शयुग्मं च गाहते ।
 पुद्गलाणुः परः प्रोक्तो गलनपूरणात्मकः ॥ ३५८ ॥
 अणुकादिविभेदेन स्निग्धरूक्षत्वसंश्रयान् ।
 वन्धोऽन्योन्यं भवेत्तेषां वृद्धिरूपादनेकधा ॥ ३५९ ॥
 शब्दो बन्धस्तमञ्छाया मूक्षमस्थौल्यात्पद्युति ।
 भेदसंस्थानमित्येते पर्यायास्तस्य कीर्तिताः ॥ ३६० ॥
 पृथ्वी तोयं तथा च्छाया चाक्षुषो नाक्षगोचरः ।
 कर्माणि परमाण्वन्तं तेषां सौक्ष्म्यं यथोत्तरम् ॥ ३६१ ॥
 स्थूलस्थूलं तथा स्थूलं स्थूलमूक्ष्मास्ततः परम् ।
 मूक्ष्मस्थूलाश्च मूक्ष्माणि मूक्ष्ममूक्ष्मा इति क्रमात् ॥ ३६२ ॥
 पुद्गलः ।

गतिहेतुर्भवेद्धर्मो जीवपुद्गलयोर्द्वयोः ।
 यथोदकं हि मत्स्यानां भन्तिष्ठतोत्तथा न मः ॥ ३६३ ॥
 धर्मः ।

अधर्मः स्थितिदानाय हेतुर्भवति तद्द्वयोः ।
 पथिकानां यथा च्छाया गच्छतोः न न धाग्नकः ॥ ३६४ ॥

अधर्मः ।

द्रव्याणामवगाहस्य योग्यं यत्तन्नभो भवेत् ।
लोकाकाशमलोकाख्यमाकाशमिति तद्विधा ॥ ३६५ ॥

आकाशः ।

वर्णगन्धादिभिर्मुक्ता असंख्याताः सुनिश्चलाः ।
वर्तनालक्षणोपेता जीवपुद्गलयोः परम् ॥ ३६६ ॥
तिष्ठन्त्येकैकरूपेण लोकाकाशप्रदेशकान् ।
व्याप्य कालाणवो मुख्याः प्रत्येकं रत्नराशिवत् ॥ ३६७ ॥
परिणामः पदार्थानां कालास्तित्वप्रसादकः ।
अन्यथा नवजीर्णादिपर्यायज्ञानतां कथम् ॥ ३६८ ॥
नोपचारो विना मुख्यं नरसिंहोपचारवत् ।
तथोपचारमाश्रित्य कालोऽस्ति व्यावहारिकः ॥ ३६९ ॥
मुख्यकालस्य पर्यायः समयादिस्वरूपवान् ।
व्यवहारो मतः कालः कालज्ञानप्रवेदिनाम् ॥ ३७० ॥
तं कालाणुं समुल्लंघ्य मंदं गच्छति पुद्गलः ।
यावता कालमात्रेण स कालः समयात्मकः ॥ ३७१ ॥
तस्मादावलिपूर्वा ये मुहूर्ताद्याश्च पर्ययाः ।
मर्त्यक्षेत्रे प्रवर्तन्ते भानोर्गतिवशाद्भुवि ॥ ३७२ ॥

कालः ।

गुणपर्ययवद्द्रव्यसन्दोहो वर्ण्यते युद्धैः ।
 सप्तभंगीं समालिङ्ग्य स्थान्यद्रव्यस्वभावतः ॥ ३७३ ॥
 सहभूता गुणा ज्ञेयाः सुवर्णे पीतता यथा ।
 क्रमभूतास्तु पर्यायाः जीवे गन्यादयो यथा ॥ ३७४ ॥
 पर्यायाः प्रभवन्त्येते भेदद्रव्यममाश्रिताः ।
 अर्थव्यञ्जनभेदाभ्यां वदन्तीति महर्षयः ॥ ३७५ ॥
 सूक्ष्मोऽवागोचरो वेद्यः केवलज्ञानिनां न्ययम् ।
 प्रतिक्षणं विनाशी न्यात् पर्यायो व्यर्थसंज्ञिकः ॥ ३७६ ॥
 स्थूलः कालान्तरस्थायी मामान्यज्ञानगोचरः ।
 दृष्टिग्राह्यस्तु पर्यायो भवेद्यञ्जनसंज्ञकः ॥ ३७७ ॥
 द्रव्याण्यनाद्यनन्तानि द्रव्यत्वेन भवन्त्यपि ।
 ध्रौव्यव्ययसमुत्पत्तिस्वभावान्यखिलान्यपि ३७८ ॥
 कालत्रयानुयायित्वं यद्रूपं वस्तुनो भवेत् ।
 तद्द्रौव्यत्वमिति प्राहुर्दृष्टभाद्या गणाधिपाः ॥ ३७९ ॥
 पूर्वाकारान्यथाभावो विनाशो वस्तुनः पुनः ।
 अपूर्वाकारसंप्राप्तिरुत्पत्तिरिति स्वीर्यते ॥ ३८० ॥
 स्वभावेतरपर्याया जीवपुद्गलयोद्वेयाः ।
 विभावपर्यया न स्युः शेषद्रव्यचतुष्टये ॥ ३८१ ॥
 कायत्वमस्ति पञ्चानां प्रदेशतन्निर्भवात् ।
 नास्ति कालस्य कायत्वं प्रदेशतन्निर्भवात् ॥ ३८२ ॥
 धर्माधर्मैकजीवानामसंख्येयप्रदेशता ।
 पुद्गलानां त्रिधा देशा नभोजनन्तप्रदेशकम् ॥ ३८३ ॥
 जीवाजीवास्तथा बन्धसंवरौ निर्जरा तथा ।
 मोक्षश्चेति सुतन्वानि सप्त सृष्टिनशासने ॥ ३८४ ॥

चेतनालक्षणो जीवोऽमूर्तोऽनाद्यविनाशकः ।
 अजीवः पंचधा ज्ञेयः पुद्गलादिप्रभेदतः ॥ ३८५ ॥
 भावास्त्रयो भवेज्जीवो मिथ्यात्वादिचतुष्टयात् ।
 ततो द्रव्यास्त्रयो योऽसौ कर्माष्टकसमाश्रयः ॥ ३८६ ॥
 वध्यते कर्म भावेन येन तद्भाववन्धनम् ।
 जीवकर्मप्रदेशानामाश्लेषो द्रव्यवन्धनम् ॥ ३८७ ॥
 स प्रकृतिप्रदेशाख्यस्थित्यनुभागभेदभाक् ।
 योगैर्द्वावादिमौ स्यातां कपायैर्द्वौ तदुत्तरौ ॥ ३८८ ॥
 कर्मास्त्रयनिरोधात्मा चिद्भावो भावसंवरः ।
 त्रताद्यैः कर्मसंरोधः स भवेद्द्रव्यसंवरः ॥ ३८९ ॥
 हठात्कारस्वभावाभ्यां जायते कर्मनिर्जरा ।
 अविपाका स्वपाकेति द्विविधा सा यथाक्रमम् ॥ ३९० ॥
 कर्मक्षयाय यो भावो भावमोक्षो भवत्यसौ ।
 जायते द्रव्यमोक्षस्तु जीवकर्मपृथक्क्रिया ॥ ३९१ ॥
 इत्येवं सप्ततत्वानि तान्येव प्रभवन्त्यपि ।
 युक्तानि पुण्यपापाभ्यां पदार्था नव संस्मृताः ॥ ३९२ ॥
 पुरोक्तलक्षणः जीवः सम्यक्त्वव्रतभूषितः ।
 पुण्यं तद्विपरीतो यः स पापमिति कीर्त्यते ॥ ३९३ ॥
 एवं द्रव्यादिसन्दोहे श्रद्धधानं यथार्थतः ।
 अनादिकर्मसम्बन्धविच्छिन्नौ जायतेऽङ्गिनाम् ॥ ३९४ ॥
 चतुर्गतिभवो भव्यः संज्ञी पूर्णः सुलेश्यकः ।
 जागरी लब्धिमान् शुद्धो ज्ञानी सम्यक्त्वमर्हति ॥ ३९५ ॥

वारणं तस्य चत्वारो ये चानन्तानुग्रन्धिनः ।

सिध्यात्त्रिसिध्मस्यक्तं चेति द्दुमोहसप्तकम् ॥ ३९६ ॥

इत्यासां प्रकृतीनां तु सप्तानामुपशान्तिनः ।

प्रोक्तोपशमिका दृष्टिः प्रशान्तपंकतोयवद् ॥ ३९७ ॥

सर्वज्ञस्पर्धकानां यः पाकाभावात्मकः क्षयः ।

सत्तात्मोपशमो यत्र क्षायोपशमिकं हि तन् ॥ ३९८ ॥

उदितास्ते क्षयं याताः स्पर्धकाः सर्वधानकाः ।

शेषाः प्रशमिताः सन्ति क्षायोपशमिकं ततः ॥ ३९९ ॥

यद्वेद्यते चलागाढमालिन्येन पृथक् पृथक् ।

सम्यक्त्वप्रकृतेः पाकात् तस्मात्तद्वेदकाव्ययम् ॥ ४०० ॥

एतत्संसारविच्छित्त्यै जायते देहिनां खलु ।

मौढ्यादिदोषनिर्मुक्तं निःशंकाद्यङ्गसंयुतम् ॥ ४०१ ॥

सूर्यार्धो वन्दिहसत्कारो गोमूत्रस्य निषेवणम् ।

तत्पृष्ठान्तनमस्कारो भृगुपातादिस्नायनम् ॥ ४०२ ॥

देहलिंगेहरत्नाव्यगजशस्त्रादिपूजनम् ।

नदीहृदसमुद्रेषु मज्जनं पुण्यहेतवे ॥ ४०३ ॥

संक्रान्तौ च तिलस्नानं दानं च ग्रहणादिषु ।

सन्ध्यायां मौनमित्यादि त्यज्यतां लोकमूढताम् ॥ ४०४ ॥

ऐहिवाशावशित्त्वेन कृत्स्नतो देवतागणः ।

पूज्यते भक्तितो वाटं सा देवमूढता मता ॥ ४०५ ॥

दृष्ट्वा मंत्रादिनामर्घ्यं पापिपापण्डिचारिणाम् ।

उपास्तिः क्रियते तेषां ना न्यान्पापण्डिमूढता ॥ ४०६ ॥

ज्ञानं पूजा तपो वित्तं कुलं जातिर्वलं वपुः ।
 एतानाश्रित्य गर्हित्वं तन्मदाष्टकमिष्यते ॥ ४०७ ॥
 कुदेवः कुमतालम्बी कुशाक्षं कुत्सितं तपः ।
 कुशास्त्रज्ञः कुलिङ्गीति स्युरनायतनानि षट् ॥ ४०८ ॥
 समीचीनमिदं रूपं कुदेवस्येति जल्पनम् ।
 इत्यादिभावना भव्यैस्त्याज्यानायतनात्मिका ॥ ४०९ ॥
 इदमेवेदंशं तत्त्वं जिनोक्तं तन्न चान्यथा ।
 इत्यकम्पा रुचिर्यासौ निःशंकाङ्गं तदुच्यते ॥ ४१० ॥
 संसारेन्द्रियभोगेषु सर्वेषु भंगुरात्मसु ।
 निरीहभावना यत्र सा निष्कांक्षा स्मृता बुधैः ॥ ४११ ॥
 स्वभावमलिने देहे रत्नत्रयपवित्रिते ।
 जुगुप्सारहितो भावो सा स्यान्निर्विचिकित्सिता ॥ ४१२ ॥
 दोषदृष्टेषु^१ शास्त्रेषु तपस्विदेवतादिषु ।
 चित्तं न मुह्यते कापि तदमूढत्वं निगद्यते ॥ ४१३ ॥
 रत्नत्रयोपयुक्तस्य जनस्य कस्यचित्कचित् ।
 गोपनं प्राप्तदोषस्य तद्भवत्युपगूहनम् ॥ ४१४ ॥
 दर्शनार्ज्जुनानतो वृत्ताच्चलतां गृहमेधिनाम् ।
 यतीनां स्थापनं तद्वत्स्थितीकरणमुच्यते ॥ ४१५ ॥
 रोगार्दितश्रमार्तानां साधूनां गृहिणामपि ।
 यथायोग्योपचारस्तद्वात्सल्यं धर्मकाम्यया ॥ ४१६ ॥
 मिथ्यातमस्त्वपाकृत्य सद्वर्मोद्योतनं परम् ।
 क्रियते शक्तितो वाढं सैषा प्रभावना मता ॥ ४१७ ॥

एवमष्टांगसंयुक्तं सम्यक्त्वं स्याद्भवापहम् ।
 साधकः सर्वकार्येषु संत्रः पूर्णाक्षरो यथा ॥ ४१८ ॥
 दग्मोहक्षयसंभूतो यच्छूद्रानमनुत्तरं ।
 भवेत्तत्क्षायिकं नित्यं कर्मसंघातघातकम् ॥ ४१९ ॥
 नानावाग्भिर्ब्रह्मपायैर्भीष्मरूपैश्च दुर्धरैः ।
 त्रिदशाद्यैर्न चालयेत् तत्सम्यक्त्वं कदाचन ॥ ४२० ॥
 क्षायिकीदृक्त्रयारम्भी केवलिक्रमननिर्धो ।
 कर्मक्षमाजो नरस्तत्र कश्चिन्निष्ठापको भवेत् ॥ ४२१ ॥
 लब्धमृत्युर्नरः कश्चिद्ब्रह्मायुष्कः प्रगच्छति ।
 यस्यां गतो हि तत्रैव पूर्णतां कुस्ते ध्रुवम् ॥ ४२२ ॥
 इत्येकेनैव संयुक्तः स्याद्भव्योऽसंयमाच्छ्रयः ।
 द्वितीयानां कषायाणासुदयादत्रतो हि सः ॥ ४२३ ॥
 प्रशमास्तिवयसंवेगाः सहानुकम्पया गुणाः ।
 विद्यन्ते हृदये यस्य स स्यात्सम्यक्त्वभूपितः ॥ ४२४ ॥
 ततस्तु व्रतहीनोऽपि प्राणिघाताय नोद्यमी ।
 प्राणिघातनशीलः स्यात्सम्यक्त्वस्यातिदूरगः ॥ ४२५ ॥
 काकतालीयकन्यायात् सम्यक्त्वं जातमात्रकम् ।
 जीवस्थानन्तसंसारं संख्यात्मिकां स्थितिं नयेत् ॥ ४२६ ॥
 भावनादित्रिषु स्त्रीषु पटस्वधःश्वभ्रभूनिषु ।
 अवस्थायामपूर्णायां न हि सम्यक्त्वमंभवः ॥ ४२७ ॥
 यस्य सम्यक्त्वसम्भूतिरायुर्वन्वैऽथ दुर्गतौ ।
 गतिच्छेदो न तस्यास्ति तथाप्यल्पतरा स्थितिः ॥ ४२८ ॥

आयुर्वन्धे चतुर्गत्यां यदि सम्यक्त्वसंभवः ।
 देवायुर्वन्धनं मुक्त्वा नाप्येतेऽणुमहाव्रते ॥ ४२९ ॥
 क्षयोपशमसद्दृष्टिः पदं प्राप्नोति दुर्लभम् ।
 सुदैवं स्वर्गलोकेषु मानुषं कर्मभूमिषु ॥ ४३० ॥
 लब्ध्वा क्षायिकसम्यक्त्वमेकतृतीयतुर्यके ।
 भवे मुक्तिं प्रयात्यङ्गी नास्त्यतोऽन्यभवाश्रयः ॥ ४३१ ॥
 आर्त्तरौद्रं भवेद्द्वयानं तत्र मन्दत्वमागतम् ।
 आर्त्तं चतुर्विधं प्रोक्तं रौद्रध्यानं च तद्विधम् ॥ ४३२ ॥
 अनिष्टयोगसम्भूतिरिष्टार्थस्य वियोगता ।
 अप्राप्तिरिच्छितार्थस्य चतुर्थं स्यान्निदानकम् ॥ ४३३ ॥
 आर्त्तध्यानवशाज्जीवः करोत्यशुभवन्धनम् ।
 बद्धायुष्को मृतिं लब्ध्वा तैरश्वीं गतिमश्नुते ॥ ४३४ ॥
 हिंसानन्दो मृपानन्दः स्तेयानन्दस्तृतीयकः ।
 तुर्यः संरक्षणानन्दो रौद्रध्यानस्य पर्ययाः ॥ ४३५ ॥
 रौद्रध्यानेऽथ जीवेन कपायविपमोहिना ।
 आद्यैश्वभावनौ जन्म बद्धायुष्केण लभ्यते ॥ ४३६ ॥
 गौणवृत्त्या भवेत्तस्य धर्मध्याने कथंचन ।
 आप्तोपज्ञस्य शास्त्रस्य चिन्तनश्रवणात्मकम् ॥ ४३७ ॥

उक्तं च—

मनः सदर्थ्याधिगमे प्रवृत्तं वाक्पाठयोगे नयने च वर्णे ।
 श्रुती श्रुतौ निश्चलविगृहश्च ध्यानेऽपि त्रैकाग्र्यमिहापि सौम्यं ॥२॥

१ रीप्सितार्थस्य. ख. । २ ध्यानेन जीवेन. ख. । ३ आद्यः ख. । ४ धर्म-
 ध्यानस्य पर्ययः ख. । ५ शाम्यं ख. ।

असंयतो निजात्मानमेकवारं दिनं प्रति ।

ध्यायत्यनियतं कालं नो चेत्सम्यक्त्वदूरयः ॥ ४३८ ॥

उक्तं च प्रवचनतिलके—

अविरिच्यस्वप्रादृष्टी णिरमियवेलाद्रियं ण कुव्वंतो ।

पडि पडि दिणमिगिचारं लो ज्ञायदि अप्पणं तुळ्ळं ॥ १ ॥

ईदृशं भेदसम्यक्त्यं साधकं निश्चयात्मनः ।

निश्चयात्म्यं निजात्सैव तत्साध्यं म्यान्मनीपिभिः ॥ ४३९ ॥

असंयतगुणस्थानं चतुर्थं प्रतिपादितम् ।

देशसंयमिनो धाम पंचमं कथ्यतेऽधुना ॥ ४४० ॥

इति चतुर्थमसंयतगुणस्थानम् ।

अतो देशव्रताभिख्ये गुणस्थाने हि पंचमे ।

भावास्त्रयोऽपि विद्यन्ते पूर्वोक्तलक्षणा इह ॥ ४४१ ॥

प्रत्याख्यानोदयाज्जीवो नो धत्तेऽखिलसंयमम् ।

तथापि देशसंत्यागात्संयतासंयतो मतः ॥ ४४२ ॥

विरतिस्त्रयधातस्य मनोवाक्काययोगतः ।

स्थावराङ्गिविधातस्य प्रवृत्तिस्तस्य कुत्रचित् ॥ ४४३ ॥

१ तुल्लं ख., २ अस्या अग्ने इमे अस्वष्टे गाथे ख—पुस्तके । तथा चोक्तं
दशवैकालिकग्रन्थे—

जो पुच्चरत्तचरत्तकाले संपिक्कत्तई अप्परागमप्पमेगं ।

किमेकदं किच्चमकिच्चमेसं किं सक्कणिजं णुमदागरामि ॥ १ ॥

किं मेसरो पस्सइ किं व अप्पा दोमागयं किं ण विवज्जयामि ।

इच्चैव सम्मं अणुपस्समागो अग(णा)मयं णो पट्टिदंथ कुज्जा ॥ २ ॥

विरताविरतस्तस्मान्द्रण्यते देशसंयमी ।
 प्रतिमालक्षणास्तस्य भेदा एकादश स्मृताः ॥ ४४४ ॥
 आद्यो दर्शनिकस्तत्र त्रतिकः स्यात्ततः परम् ।
 सामायिकत्रती चाथ सप्तोपधोषवासकृत् ॥ ४४५ ॥
 सचित्ताहारसंत्यागी दिवास्त्रीभजनोज्झितः ।
 ब्रह्मचारी निरारम्भः परिग्रहपरिच्युतः ॥ ४४६ ॥
 तस्मादनुमतोदिष्टविरतौ द्वाविति क्रमात् ।
 एकादशविकल्पाः स्युः श्रावकाणां क्रमादमी ॥ ४४७ ॥
 गृही दर्शनिकस्तत्र सम्यक्त्वगुणभूषितः ।
 संसारभोगनिर्विण्णो ज्ञानी जीवदयापरः ॥ ४४८ ॥
 माक्षिकामिपमद्यं च सहोदुम्बरपंचकैः ।
 वेश्या पराङ्गना चौर्यं द्यूतं नो भजते हि सः ॥ ४४९ ॥
 दर्शनिकः प्रकुर्वीत निशि भोजनवर्जनम् ।
 यतो नास्ति दयाधर्मो रात्रौ भुक्तिं प्रकुर्वतः ॥ ४५० ॥
 दर्शनप्रतिमा ।

स्थूलहिंसानृतस्तेयपरस्त्री चाभिकांक्षता ।
 अणुव्रतानि पंचैव तस्यागात्स्यादणुव्रती ॥ ४५१ ॥
 योगत्रयस्य सम्बन्धात्कृतानुमतकारितैः ।
 न हिनस्ति त्रसान् स्थूलमहिंसाव्रतमादिमम् ॥ ४५२ ॥
 न वदत्यनृतं स्थूलं न परान् वादयत्यपि ।
 जीवपीडाकरं सत्यं द्वितीयं तदणुव्रतम् ॥ ४५३ ॥
 अदत्तपरवित्तस्यः निक्षिप्तविस्मृतादितः ।
 तत्परित्यजनं स्थूलमचौर्यं व्रतसूचिरे ॥ ४५४ ॥

मातृवत्परनारीणां परित्यागत्रिशुद्धितः ।
 न स्यात्पराङ्मनात्यागो गृहिणां शुद्धचेतसाम् ॥ ४५५ ॥
 धनधान्यादिवस्तूनां संख्यानं मुह्यतां विना ।
 तदणुव्रतमित्याहुः पंचमं गृहमेधिनाम् ॥ ४५६ ॥
 गीलव्रतानि तस्येह गुणव्रतत्रयं यथा ।
 शिक्षाव्रतं चतुष्कं च सप्ततानि विदुर्बुधाः ॥ ४५७ ॥
 दिग्देशानर्थदण्डानां विरतिः क्रियते तथा ।
 दिग्व्रतत्रयमित्याहुर्मुनयो व्रतधारिणः ॥ ४५८ ॥
 कृत्वा संख्यानमाशयां ततां बहिर्न गम्यते ।
 यावज्जीवं भवत्येतद्विग्रतमादिसं व्रतम् ॥ ४५९ ॥
 कृत्वा कालावधिं शक्त्या कियत्प्रदेशवर्जनम् ।
 तद्देशविरतिर्नाम व्रतं द्वितीयकं विदुः ॥ ४६० ॥
 खनित्रविपशस्त्रादेर्दानं स्याद्व्यहेतुकम् ।
 तस्यागोस्तर्थादण्डानां वर्जनं तत्पृतीवकम् ॥ ४६१ ॥
 सामायिकं च प्रोषधविधिं च भोगोपभोगसंन्ययानम् ।
 अतिधीनां तत्कारो वा शिक्षाव्रतचतुष्कं स्यात् ॥ ४६२ ॥
 नामायिकं प्रकुर्वीत कालत्रये दिनं प्रति ।
 श्रावणो हि जितेन्द्रस्य जितहृत्तापुःसरम् ॥ ४६३ ॥
 वाः पूज्यः पूजकन्तत्र पूजा च कीदृशी सता ।
 पूज्यः जितेन्द्रवन्द्यांजिनिर्दोषः केदकी जितः ॥ ४६४ ॥
 भव्यात्मना पूजकः शान्तो देव्यादिवरपताञ्जितः ।
 ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः स गृहो वा सुर्माण्डवान् ॥ ४६५ ॥

१. यथा स. । २. भावसंग्रहः क. । ३. शक्तिः क. वि. । ४-सुन्दरः । ५. विदुः-
 दो वा' इति सुभाति । ६. इन्द्रो स. ।

उक्तं च जिनसंहितायां—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः स शूद्रो वा सुशालवान् ॥ १ ॥

अन्येषां नाधिकारित्वं ततस्तैः प्रविधीयताम् ।
 जिनपूजां विना सर्वा दूरा सामायिकी क्रिया ॥ ४६६ ॥
 जिनपूजा प्रकर्तव्या पूजाशास्त्रोदितक्रमात् ।
 यया संप्राप्यते भव्यैर्मोक्षसौख्यं निरन्तरम् ॥ ४६७ ॥
 तावत्प्रातः समुत्थाय जिनं स्मृत्वा विधीयताम् ।
 प्राभातिको विधिः सर्वः शौचाचमनपूर्वकम् ॥ ४६८ ॥
 ततः पौर्वाहिकीं सन्ध्याक्रियां समाचरेत्सुधीः ।
 शुद्धक्षेत्रं समाश्रित्य मंत्रवच्छुद्धवारिणा ॥ ४६९ ॥
 पश्चात् स्नानविधिं कृत्वा धौतवस्त्रपरिग्रहः ।
 मंत्रस्नानं व्रतस्नानं कर्तव्यं मंत्रवत्ततः ॥ ४७० ॥
 एवं स्नानत्रयं कृत्वा शुद्धित्रयसमन्वितः ।
 जिनावासं विशेषमन्त्री समुच्चार्य निषेधिकाम् ॥ ४७१ ॥
 कृत्वेर्यापथसंशुद्धिं जिनं स्तुत्वातिभक्तितः ।
 उपविश्य जिनस्याग्रे कुर्याद्विधिमिमां पुरा ॥ ४७२ ॥
 तत्रादौ शोपणं स्वांगे दहनं प्लावनं ततः ।
 इत्येवं मंत्रविन्मन्त्री स्वकीयाङ्गं पवित्रयेत् ॥ ४७३ ॥
 हस्तशुद्धिं विधायाथ प्रकुर्याच्छकलीक्रियाम् ।
 कूटबीजाक्षरैर्मन्त्रैर्दशदिग्ग्रन्धनं ततः ॥ ४७४ ॥

पूजापात्राणि सर्वाणि समीपीकृत्य सादरम् ।
 भूमिशुद्धिं विधायोच्चैर्दर्भाग्निज्वलनादिसिः ॥ ४७५ ॥
 भूमिपूजां च निर्वृत्य ततस्तु नागतर्पणम् ।
 आग्नेयदिशि संस्थाप्य क्षेत्रपालं प्रनृप्य च ॥ ४७६ ॥
 स्नानपीठं दृढं स्थाप्य प्रक्षाल्य शुद्धवारिणा ।
 श्रीबीजं च विलिख्यात्र गन्धाद्यैस्तन्प्रपूजयेत् ॥ ४७७ ॥
 परितः स्नानपीठस्य सुखापित्तमपल्लवान् ।
 पूरितांस्तूर्थसत्तोर्यैः कलशांश्चतुरो न्यसेत् ॥ ४७८ ॥
 जिनेश्वरं समभ्यर्च्य मूलपीठोपरिस्थितम् ।
 कृत्वाव्धानविधिं सम्यक् प्रापयेन्द्धानपीठिकांम् ॥ ४७९ ॥
 कुर्यात्संस्थापनं तत्र सन्निधानविधानकम् ।
 नीराजनैश्च निर्वृत्य जलगन्धादिसिर्जनेन ॥ ४८० ॥
 इन्द्राद्यष्टदिशापालान् दिशाष्टसु निशापतिम् ।
 रक्षोवरुणयोर्मध्ये शेषमीशानशक्रयोः ॥ ४८१ ॥
 न्यस्याव्धानादिकं कृत्वा क्रमेणैतान् मुदं नयेत् ।
 वलिप्रदानतः तेषां स्वस्वमंत्रैर्यथादिशम् ॥ ४८२ ॥
 ततः कुम्भं समुद्धार्य तोयत्रौचैस्तुभद्रमैः ।
 नदपृथक् ततो दुग्धैर्दधिसिः स्थापयेज्जिनम् ॥ ४८३ ॥
 तोयैः प्रक्षाल्य स्रच्छर्षैः कुर्यादुद्धर्त्तन्निद्राम् ।
 पुनर्नागजनं कृत्वा स्नानं कृत्वास्वारिणिः ॥ ४८४ ॥
 चतुष्कोणस्थितैः कुम्भैस्ततो गन्धास्तुष्टुग्निः ।
 अग्निपैकं प्रहृत्वाग्निं जिनेश्वरं सुखापिनः ॥ ४८५ ॥

उक्तं च जिनसंहितायां—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः स शूद्रो वा सुशालवान् ॥ ३ ॥

अन्येषां नाधिकारित्वं ततस्तैः प्रविधीयताम् ।

जिनपूजां विना सर्वा दूरा सामायिकी क्रिया ॥ ४६६ ॥

जिनपूजा प्रकर्तव्या पूजाशान्त्वोदितक्रमात् ।

यथा संप्राप्यते भव्यैर्मोक्षसौख्यं निरन्तरम् ॥ ४६७ ॥

तावत्प्रातः समुत्थाय जिनं स्मृत्वा विधीयताम् ।

प्राभातिको विधिः सर्वः शौचाचमनपूर्वकम् ॥ ४६८ ॥

ततः पौर्वाहिकीं सन्ध्याक्रियां समाचरेत्सुधीः ।

शुद्धक्षेत्रं समाश्रित्य मंत्रवच्छुद्धवारिणा ॥ ४६९ ॥

पश्चात् स्नानविधिं कृत्वा धौतवस्त्रपरिग्रहः ।

मंत्रस्नानं व्रतस्नानं कर्तव्यं मंत्रवर्ततः ॥ ४७० ॥

एवं स्नानत्रयं कृत्वा शुद्धित्रयसमन्वितः ।

जिनावासं विशेषमन्त्री समुच्चार्य निषेधिकाम् ॥ ४७१ ॥

कृत्वेर्यापथसंशुद्धिं जिनं स्तुत्वातिभक्तितः ।

उपविश्य जिनस्याग्रे कुर्याद्विधिमिमां पुरा ॥ ४७२ ॥

तत्रादौ शोषणं स्वांगे दहनं प्लावनं ततः ।

इत्येवं मंत्रविन्मन्त्री स्वकीयाङ्गं पवित्रयेत् ॥ ४७३ ॥

हस्तशुद्धिं विधायथ प्रकुर्याच्छकलीक्रियाम् ।

कूटबीजाक्षरैर्मन्त्रैर्दशदिग्ग्रन्धनं ततः ॥ ४७४ ॥

१ उक्तं चार्धश्लोकेन जिनसंहितायां ख-पाठः । २ सच्छूद्रो वा इत्यनेन पाठेन भाव्यं । ३ वि. ख. ।

पूजापात्राणि सर्वाणि नमीपीकृत्य सादरम् ।
 भूमिशुद्धिं विधायोच्चैर्दक्षिणैश्चलनादिभिः ॥ ४७५ ॥
 भूमिपूजां च निर्वृत्य ततस्तु नागतर्पणम् ।
 आग्नेयदिशि संस्थाप्य क्षेत्रपालं प्रनृष्य च ॥ ४७६ ॥
 स्नानपीठं दृढं स्थाप्य प्रक्षाल्य शुद्धवारिणा ।
 श्रीबीजं च विलिख्यात्प्र गन्वाद्यैस्सन्प्रपूजयेत् ॥ ४७७ ॥
 परितः स्नानपीठस्य सुव्यापिनमपहृष्यात् ।
 पूरितांस्तीर्थसत्तोयैः कलशांश्चतुरो न्यसेत् ॥ ४७८ ॥
 जिनेश्वरं समभ्यर्च्य मूलपीठापरिस्थितम् ।
 कृत्वाब्धानविधिं मन्थ्य च प्रापयेन्स्नानपीठिकाम् ॥ ४७९ ॥
 सुर्यात्संस्थापनं तत्र मन्निधानविधानकम् ।
 नीराजनेश्च निर्वृत्य जलगन्धादिभिर्यजेत् ॥ ४८० ॥
 इन्द्राद्यष्टदिशापालान् दिशाष्टसु निशापतिम् ।
 रक्षोवरुणयोर्मध्ये शेषर्षीशानशत्रयोः ॥ ४८१ ॥
 न्यस्थाब्धानादिकं कृत्वा क्रमेणैतान् मुदं नयेत् ।
 बलिप्रदानतः सर्वान् स्वस्वसंश्रयेथादिसम् ॥ ४८२ ॥
 ततः कुम्भं समुदायि तोयचोपेक्षुसद्व्रजेः ।
 नदपृथक् ततो दुर्घटैर्द्विभिः स्थापयेज्जिनम् ॥ ४८३ ॥
 तोयैः प्रक्षाल्य मन्त्र्यैः कुर्याद्दृष्टवैतश्चिदात् ।
 पुनर्नीराजनं कृत्वा स्नानं कलशवारिभिः ॥ ४८४ ॥
 चतुष्पदीपरिस्थितः कुम्भेनैततो गन्धान्मुहूर्तिः ।
 अग्निपंकं शकुबीण्ड जिनेश्वर सुव्यापिनः ॥ ४८५ ॥

स्वोत्तमाङ्गं प्रसिञ्च्याथ जिनाभिपेकवारिणा ।
 जलगन्धादिभिः पश्चादर्चयेद्विंशमर्हतः ॥ ४८३ ॥
 स्तुत्वा जिनं विसर्ज्यापि दिगीशादिमरुद्गणान् ।
 आर्चिते मूलपीठेऽथ स्थापयेज्जिननायकम् ॥ ४८७ ॥
 तोर्यैः कर्मरजःशान्त्यै गन्धैः सौगन्धसिद्धये ।
 अक्षतैरक्षयावाप्त्यै पुष्पैः पुष्पशरच्छिदे ॥ ४८८ ॥
 चरुभिः सुखसंवृद्धयै देहदीप्त्यै प्रदीपकैः ।
 सौभाग्यावाप्तये धूपैः फलैर्मोक्षफलाप्तये ॥ ४८९ ॥
 घण्टाद्यैर्मंगलद्रव्यैर्मंगलावाप्तिहेतवे ।
 पुष्पाञ्जलिप्रदानेन पुष्पदन्ताभिदीप्तये ॥ ४९० ॥
 तिसृभिः शान्तिधाराभिः शान्तये सर्वकर्मणाम् ।
 आराधयेज्जिनाधीशं मुक्तिश्रीवनितापतिम् ॥ ४९१ ॥
 इत्येकादशधा पूजां ये कुर्वन्ति जिनेशिनाम् ।
 अष्टौ कर्माणि सन्दह्य प्रयान्ति परमं पदम् ॥ ४९२ ॥
 अष्टोत्तरशतैः पुष्पैः जापं कुर्याज्जिनाग्रतः ।
 पूज्यैः पञ्चनमस्कारैर्यथावकाशमञ्जसा ॥ ४९३ ॥
 अथवा सिद्धचक्राख्यं यंत्रमुद्धार्य तत्त्वतः ।
 सत्पचपरमेष्ठ्याख्यं गणभृद्ब्रलयक्रमम् ॥ ४९४ ॥
 यंत्रं चिन्तामणिर्नाम सम्यग्शास्त्रोपदेशतः ।
 संपूज्यात्र जपं कुर्यात् तत्तन्मंत्रैर्यथाक्रमम् ॥ ४९५ ॥
 तद्यंत्रगन्धतो भाले विरचय्य विशेषकम् ।
 सिद्धशेषां प्रसंगृह्य न्यसेन्मूर्ध्नि समाहितः ॥ ४९६ ॥
 चैत्यभक्त्यादिभिः स्तूयाज्जिनेन्द्रं भक्तिनिर्भरः ।
 कृत्कृत्यं स्वमात्मानं मन्यमानोऽद्य जन्मनि ॥४ ९७ ॥

संक्षेपज्ञानशास्त्रोक्तविधिना चाभिपिच्य तम् ।

कुर्यादष्टविधां पूजां तोयगन्धाक्षतादिभिः ॥ ४९८ ॥

अन्तर्मुहूर्तमात्रं तु ध्यायेत् स्वस्थेन चेतसा ।

ग्यंदहस्यं निजात्मानं चिदानन्दकलक्षणम् ॥ ४९९ ॥

विधायैवं जिनेशस्य यथावकाशतोऽर्चनम् ।

नमुत्थाय पुनः स्तुत्वा जिनचैन्यालयं व्रजेत् ॥ ५०० ॥

कृत्वा पूजां नमस्कृत्य देवदेवं जिनैश्वरम् ।

श्रुतं संपूज्य मद्भक्त्या तोयगन्धाक्षतादिभिः ॥ ५०१ ॥

संपूर्णं चरणौ साधोर्नमस्कृत्य यथाविधिम् ।

आर्याणासायिकीणां च कृत्वा विनयमंजना ॥ ५०२ ॥

इच्छाकारवचः कृत्वा मिथः साधर्मिकैः नमम् ।

उपविश्य गुरोरन्ते सद्धर्मं शृणुयाद्बुधः ॥ ५०३ ॥

देयं दानं यथास्तथा जैनदर्शनवर्तिनाम् ।

कृपादानं च वर्तव्यं दयागुणविहृदये ॥ ५०४ ॥

एवं सामायिकं सम्बन्धः करोति गृहाश्रमी ।

दिनैः कतिपर्यन्तं न त्वान्मुक्तिश्रियः पतिः ॥ ५०५ ॥

भासं प्रति चतुर्विधं पर्वस्वाहाएवर्जनम् ।

सहस्रोजनसेवा वा काञ्जिकाहारसेवकम् ॥ ५०६ ॥

एवं शयन्नुत्तमारेण क्रियते मनभावतः ।

न प्रोषधो विधिः प्रोक्तो मुनिभिर्धर्मवत्सलैः ॥ ५०७ ॥

भुक्त्वा संत्यज्यते वस्तु स भोगः परिकीर्त्यते ।
 उपभोगोऽसकृद्द्वारं भुज्यते च तयोर्मितिः ॥ ५०८ ॥
 संविभागोऽतिथीनां यः किञ्चिद्विशिष्यते हि सः ।
 न विद्यते तिथिर्यस्य सोऽतिथिः पात्रतां गतः ॥ ५०९ ॥
 अधिकाराः स्युश्चत्वारः संविभागेऽतीशिनाम् ।
 कथ्यमाना भवन्त्येते दाता पात्रं विधिः फलम् ॥ ५१० ॥
 दाता शान्तो विशुद्धात्मा मनोवाक्कायकर्मसु ।
 दक्षस्त्यागी विनीतश्च प्रभुः पङ्गुणभूपितः ॥ ५११ ॥
 ज्ञानं भक्तिः क्षमा तुष्टिः सत्त्वं च लोभवर्जनम् ।
 गुणा दातुः प्रजायन्ते पडेते पुण्यसाधने ॥ ५१२ ॥
 पात्रं त्रिविधं प्रोक्तं सत्पात्रं च कुपात्रकम् ।
 अपात्रं चेति तन्मध्ये तावत्पात्रं प्रकथ्यते ॥ ५१३ ॥
 उत्कृष्टमध्यमक्लिष्टभेदात् पात्रं त्रिधा स्मृतम् ।
 तत्रोत्तमं भवेत्पात्रं सर्वसंगोज्झितो यतिः ॥ ५१४ ॥
 मध्यमं पात्रमुद्दिष्टं मुनिभिर्देशसंयमी ।
 जघन्यं प्रभवेत्पात्रं सम्यग्दृष्टिरसंयतः ॥ ५१५ ॥
 रत्नत्रयोज्झितो देही करोति कुत्सितं तपः ।
 ज्ञेयं तत्कुत्सितं पात्रं मिथ्याभावसमाश्रयान् ॥ ५१६ ॥
 न व्रतं दर्शनं शुद्धं न चास्ति नियतं मनः ।
 यस्य चास्ति क्रिया दुष्टा तदपात्रं बुधैः स्मृतम् ॥ ५१७ ॥

मुक्त्वात्र कुत्सितं पात्रमपात्रं च विशेषतः ।
 पात्रदानविधिस्तत्र प्रकथ्यते यथाक्रमम् ॥ ५१८ ॥
 स्थापनमासनं योग्यं चरणक्षालनार्चने ।
 नत्तिस्त्रियोगशुद्धिश्च नवम्याहारशुद्धिता ॥ ५१९ ॥
 नवविधं विधिः प्रोक्तः पात्रदाने मुनीश्वरैः ।
 तथा षोडशभिर्दोषैरुद्गमाद्यैर्विवर्जितः ॥ ५२० ॥
 उद्दिष्टं विक्रयानीतमुद्धारस्वीकृतं तथा ।
 परिवर्त्य समानीतं देशान्तरात्समागतम् ॥ ५२१ ॥
 अप्रासुकेन सम्मिश्रं भुक्तिभाजनमिश्रता ।
 अधिकापाकसंवृद्धिर्मुनिवृन्दे समागतेः ॥ ५२२ ॥
 समीपीकरणं पंक्तौ संयतासंयतात्मनाम् ।
 पाकभाजनतोऽन्यत्र निक्षिप्यानयनं तथा ॥ ५२३ ॥
 निर्वापितं समुत्क्षिप्य दुग्धमण्डादिकं च यत् ।
 नीचजात्यार्पितार्थं च प्रतिहस्तात्सर्पितम् ॥ ५२४ ॥
 यक्षादिवलिशेषं च आनीय चोर्ध्वसद्भानि ।
 ग्रन्थिमुद्भिद्य यद्दत्तं कालातिक्रमतोऽर्पितम् ॥ ५२५ ॥
 राजादीनां भयाद्दत्तमित्येषा दोषसंहतिः ।
 वर्जनीया प्रयत्नेन पुण्यसाधनसिद्धये ॥ ५२६ ॥
 आहारं भक्तित्तो दत्तं दात्रा योग्यं यथाविधि ।
 स्वीकर्तव्यं विशोध्यैतद्वीतरागयतीशिना ॥ ५२७ ॥
 योग्यकालागतं पात्रं मध्यमं वा जघन्यकम् ।
 यथावत्प्रतिपत्या च दानं तस्मै प्रदीयताम् ॥ ५२८ ॥

यदि पात्रमलब्धं चेदेवं निन्दां करोत्यसौ ।
 वासरोऽयं वृथा यातः पात्रदानं विना मम ॥ ५२९ ॥
 इत्येवं पात्रदानं यो विदधाति गृहाश्रमी ।
 देवेन्द्राणां नरेन्द्राणां पदं संप्राप्य सिद्धयति ॥ ५३० ॥
 अणुव्रतानि पंचैव सप्तशीलगुणैः सह ।
 प्रपालयति निःशल्यः भवेद्ब्रतिको गृही ॥ ५३१ ॥

व्रतप्रतिमा ।

चतुर्हयावर्तसंयुक्तश्चतुर्नमस्क्रिया सह । ?
 द्विनिपद्यो यथाजातो मनोवाक्कायशुद्धिमान् ॥ ५३२ ॥
 चैत्यभक्त्यादिभिः स्तूयाज्जिनं सन्ध्यात्रयेऽपि च ।
 कालातिक्रमणं मुक्त्वा स स्यात्सामायिकव्रती ॥ ५३३ ॥

सामायिकप्रतिमा ।

मासं प्रत्यष्टमीमुख्यचतुष्पर्वदिनेष्वपि ।
 चतुरभ्यवहार्याणां विदधाति विसर्जनम् ॥ ५३४ ॥
 पूर्वापरदिने चैकाभुक्तिस्तदुत्तमं विदुः ।
 मध्यमं तद्विना क्लिष्टं यत्राम्बु सेव्यते क्वचित् ॥ ५३५ ॥
 इत्येकमुपवासं यो विदधाति स्वशक्तितः ।
 श्रावकेषु भवेत्तुर्यः प्रोषधोऽनशनव्रती ॥ ५३६ ॥

प्रोषधप्रतिमा ।

फलमूलाम्बुपत्राद्यं नाशनात्यप्रासुकं सदा ।
सचित्तविरतो गेही^१ दयांमूर्तिर्भवत्यसौ ॥ ५३७ ॥
सचित्तप्रतिमा ।

मनोवाक्कायसंशुद्ध्या दिवा नो भजतेऽङ्गनाम् ।
भण्यतेऽसौ दिवाब्रह्मचारीति ब्रह्मवेदिभिः ॥ ५३८ ॥
रात्रौ मुक्तिप्रतिमा ।

स्त्रीयोनिस्थानसंभूतजीवघातभयादसौ ।
स्त्रियं नो रमते त्रेधा ब्रह्मचारी भवत्यतः ॥ ५३९ ॥
ब्रह्मचर्यप्रतिमा ।

यैः सेवाकृपिवाणिज्यव्यापारत्यजनं भजेत् ।
प्राण्यभिघातसंत्यागादारम्भविरतो भवेत् ॥ ५४० ॥
आरंभरहितप्रतिमा ।

दशधा ग्रन्थमुत्सृज्य निर्मसत्वं भजेन् सदा ।
सन्तोषामृतसंतृप्तः स स्यात्परिग्रहोज्झितः ॥ ५४१ ॥
अपरिग्रहप्रतिमा ।

ददात्यनुमतिं नैव सर्वेष्वैहिककर्मणु ।
भवत्यनुमतत्यागी देशसंयमिनां वरः ॥ ५४२ ॥

१ योगी । २ ततो वाक्का. ख. । ३ यत्. ख. । ४ प्रणामिघात. ख. ।
५ भजेत्. ख. ।

अनुमतत्यागप्रतिमा ।

नोदिष्टां सेवते भिक्षामुदिष्टविरतो गृही ।
 द्वैवेको ग्रन्थसंयुक्तस्त्वन्व्यः कौपीनधारकः ॥ ५४३ ॥
 आद्यो विदधते (ति) क्षौरं प्रावृणोत्येकवाससम् ।
 पंचभिक्षासनं भुंक्ते पठते गुरुसन्निधौ ॥ ५४४ ॥
 अन्यः कौपीनसंयुक्तः कुरुते केशलुञ्चनम् ।
 शौचोपकरणं पिच्छं मुक्त्वान्यग्रन्थवर्जितः ५४५ ॥
 मुनीनामनुमार्गेण चर्यायै सुग्रगच्छति ।
 उपविश्य चरेद्भिक्षां करपात्रेऽङ्गसंवृतः ॥ ५४६ ॥
 नास्ति त्रिकालयोगोऽस्य प्रतिमा चार्कसम्मुखा ।
 रहस्यग्रन्थसिद्धान्तश्रवणे नाधिकारिता ॥ ५४७ ॥
 वीरचर्या न तस्यास्ति वस्त्रखण्डपरिग्रहात् ।
 एवमेकादशो गेही सोत्कृष्टः प्रभवत्यसौ ॥ ५४८ ॥

उदिष्टत्यागप्रतिमा ।

स्थानेष्वेकादशस्वेवं स्वगुणाः पूर्वसद्गुणैः ।
 संयुक्ताः प्रभवन्त्येते श्रावकाणां यथाक्रमम् ॥ ५४९ ॥
 आत्तराद्रं भवेद्द्वयानं मन्दभावसमाश्रितम् ।
 मुख्यं धर्म्यं न तस्यास्ति गृहव्यापरसंश्रयात् ॥ ५५० ॥
 गौणं हि धर्मसद्धानमुत्कृष्टं गृहमेधिनः ।
 भद्रध्यानात्मकं धर्म्यं शेषाणां गृहचारिणाम् ॥ ५५१ ॥

जिनेज्यापात्रदानादिस्तत्र कालोचितो विधिः ।
 भद्रध्यानं स्मृतं तद्धि गृहधर्माश्रयाद्बुधैः ॥ ५५२ ॥
 पूजा दानं गुरुपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः ।
 आवश्यकानि कर्माणि पठेतानि गृहाश्रमे ॥ ५५३ ॥
 नित्या चतुर्मुखाख्या च कल्पद्रुमाभिधानका ।
 भवत्याष्टान्हिकी पूजा दिव्यध्वजेति पंचधा ॥ ५५४ ॥ ॥
 स्वगेहे चैत्यगेहे वा जिनेन्द्रस्य महामहः ।
 निर्माप्यते यथाम्नायं नित्यपूजा भवत्यसौ ॥ ५५५ ॥
 नित्या ।

नृपैर्भुक्तवद्बाधैः सन्मंडपे चतुर्मुखे ।
 विधीयते महापूजा स स्याच्चतुर्मुखो महः ॥ ५५६ ॥
 चतुर्मुखा ।

कल्पद्रुमैरिवाशेषजगदाशा प्रपूर्यते ।
 चक्रिभिर्यत्र पूजायां सा स्यात्कल्पद्रुमामिथा ॥ ५५७ ॥
 कल्पद्रुमा ।

नन्दीश्वरेषु देवेन्द्रैर्द्वीपे नन्दीश्वरे महः ।
 दिनाटकं विधीयेत सा पूजाष्टान्हिकी मता ॥ ५५८ ॥
 अष्टान्हिका ।

अकृत्रिमेषु चैत्येषु कल्याणेषु च पंचसु ।

सुरैर्विनिर्मिता पूजा भवेत्सेन्द्रध्वजात्मिका ॥ ५५९ ॥

इन्द्रध्वजा ।

महोत्सवमिति ग्रीत्या प्रपंचयति पंचधा ।

स स्यान्मुक्तिवधूनेत्रप्रेमपात्रं पुमानिह ॥ ५६० ॥

पूजा ।

दानमाहारभैषज्यशास्त्राभयविकल्पतः ।

चतुर्धा तत्पृथक् त्रेधा त्रिधापात्रसमाश्रयात् ॥ ५६१ ॥

एपणाशुद्धितो दानं त्रिधा पात्रे प्रदीयते ।

भवत्याहारदानं तत्सर्वदानेषु चोत्तमम् ॥ ५६२ ॥

आहारदानमेकं हि दीयते येन देहिना ।

सर्वाणि तेन दानानि भवन्ति विहितानि वै ॥ ५६३ ॥

नास्ति क्षुधासमो व्याधिर्भेषजं वास्य शान्तये ।

अन्नमेवेति मन्तव्यं तस्मात्तदेव भेषजम् ॥ ५६४ ॥

विनाहारैर्वलं नास्ति जायते नो वलं विना ।

सच्छास्त्राध्ययनं तस्मात्तदानं स्यात्तदात्मकम् ॥ ५६५ ॥

अभयं प्राणसंरक्षा बुभुक्षा प्राणहारिणी ।

क्षुन्निवारणमन्नं स्यादन्नमेवाभयं ततः ॥ ५६६ ॥

अन्नस्याहारदानस्य तृप्तिर्भाजां शरीरिणाम् ।
 रत्नभूस्वर्णदानानि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ५६७ ॥
 सद्दृष्टिः पात्रदानेन लभते नाकिनां पदम् ।
 ततो नरेन्द्रतां प्राप्य लभते पदसक्षयम् ॥ ५६८ ॥
 संसाराब्धौ महाभीमे दुःखकल्लोलसंकुले ।
 तारकं पात्रमुत्कृष्टमनायासेन देहिनाम् ॥ ५६९ ॥
 सत्पात्रं तारयत्युच्चैः स्वदातारं भवार्णवे ।
 यानपात्रं समीचीनं तारयत्यम्बुधौ यथा ॥ ५७० ॥
 भद्रमिथ्यादृशो जीवा उत्कृष्टपात्रदानतः ।
 उत्पद्य भुंजते भोगानुत्कृष्टभोगभूतले ॥ ५७१ ॥
 ते चार्पितप्रदानेन मध्यमाधमपात्रयोः ।
 मध्यमाधमभोगेभ्यो लभन्ते जीवितं महत् ॥ ५७२ ॥
 मधुवाद्याङ्गदीपाङ्गा वस्त्रभाजनमाल्यदाः ।
 ज्योतिर्भूपागृहाङ्गाश्च दशधा कल्पपादपाः ॥ ५७३ ॥
 पुण्योपचितसाहारं मनोज्ञं कल्पितं यथा ।
 लभन्ते कल्पवृक्षेभ्यस्तत्रत्या देहधारिणः ॥ ५७४ ॥
 दानं हि वामदृग्दीक्ष्य कुपात्राय प्रयच्छति ।
 उत्पद्यते कुदेवेषु तिर्यक्षु कुनरेष्वपि ॥ ५७५ ॥
 मानुषोत्तरवाह्ये ह्यसंख्यद्वीपवार्धिषु ।
 तिर्यक्त्वं लभते नृत्वं देही कुपात्रदानतः ॥ ५७६ ॥
 निन्द्यांसु भोगभूमीषु पत्यग्रमितजीविनः ।
 नशाश्च विकृताकारा भवन्ति वामदृष्टयः ॥ ५७७ ॥

१ अस्यान्नाहारदानस्य. ख. । २ भाज ख. । ३ दानादि कलां नार्हति । ४ सदा ।
 ५७२-५७३ श्लोकौ पूर्वापरीभूता. ख-पुस्तके. ५ निन्द्याः कुभोगभूमीषु. ख. ।

उक्तं च जिनसंहितायां—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः स शूद्रो वा सुशालवान् ॥ १ ॥

अन्येषां नाधिकारित्वं ततस्तैः प्रविधीयताम् ।

जिनपूजां विना सर्वा दूरा सामायिकी क्रिया ॥ ४६६ ॥

जिनपूजा प्रकर्तव्या पूजाशास्त्रोदितक्रमात् ।

यथा संप्राप्यते भव्यैर्मोक्षसौख्यं निरन्तरम् ॥ ४६७ ॥

तावत्प्रातः समुत्थाय जिनं स्मृत्वा विधीयताम् ।

प्राभातिको विधिः सर्वः शौचाचमनपूर्वकम् ॥ ४६८ ॥

ततः पौर्वाहिकीं सन्ध्याक्रियां समाचरेत्सुधीः ।

शुद्धक्षेत्रं समाश्रित्य मंत्रवच्छुद्धवारिणा ॥ ४६९ ॥

पश्चात् स्नानविधिं कृत्वा धौतवस्त्रपरिग्रहः ।

मंत्रस्नानं व्रतस्नानं कर्तव्यं मंत्रवत्ततः ॥ ४७० ॥

एवं स्नानत्रयं कृत्वा शुद्धित्रयसमन्वितः ।

जिनावसं विशेषमन्त्री समुच्चार्य निषेधिकाम् ॥ ४७१ ॥

कृत्वेर्यापथसंशुद्धिं जिनं स्तुत्वातिभक्तितः ।

उपविश्य जिनस्याग्रे कुर्याद्विधिमिमां पुरा ॥ ४७२ ॥

तत्रादौ शोषणं स्वांगे दहनं प्लावनं ततः ।

इत्येवं मंत्रविन्मन्त्री स्वकीयाङ्गं पवित्रयेत् ॥ ४७३ ॥

हस्तशुद्धिं विधायथ प्रकुर्याच्छकलीक्रियाम् ।

कूटबीजाक्षरैर्मन्त्रैर्दशदिग्बन्धनं ततः ॥ ४७४ ॥

१ उक्तं चार्धश्लोकेन जिनसंहितायां ख-पाठः । २ सच्छूद्रो वा इत्यनेन पाठेन भाव्यं । ३ वि. ख. ।

पूजापात्राणि सर्वाणि समीपीकृत्य सादरम् ।
 भूमिशुद्धिं विधायोच्चैर्दर्भाग्निज्वलनादिभिः ॥ ४७५ ॥
 भूमिपूजां च निर्वृत्य ततस्तु नागतर्पणम् ।
 आग्नेयदिशि संस्थाप्य क्षेत्रपालं प्रतृप्य च ॥ ४७६ ॥
 स्नानपीठं दृढं स्थाप्य प्रक्षाल्य शुद्धवारिणा ।
 श्रीबीजं च विलिख्यात्र गन्धाद्यैस्तन्त्रपूजयेत् ॥ ४७७ ॥
 परितः स्नानपीठस्य सुखापिंतमपल्लवान् ।
 पूरितांस्तीर्थसत्तोर्यैः कलशांश्चतुरो न्यसेत् ॥ ४७८ ॥
 जिनेश्वरं समभ्यर्च्य मूलपीठोपरिस्थितम् ।
 कृत्वाव्हानविधिं सम्यक् प्रापयेन्स्नानपीठिकाम् ॥ ४७९ ॥
 कुर्यात्संस्थापनं तत्र सन्निधानविधानकम् ।
 नीराजनैश्च निर्वृत्य जलगन्धादिभिर्यजेत् ॥ ४८० ॥
 इन्द्राद्यष्टदिशापालान् दिशाष्टसुःनिशापतिम् ।
 रक्षोवस्त्रयोर्मध्ये शेषमीशानशक्रयोः ॥ ४८१ ॥
 न्यस्याव्हानादिकं कृत्वा क्रमेणैतान् मुदं नयेत् ।
 वलिप्रदानतः सर्वान् स्वस्वमंत्रैर्वधादिभ्यम् ॥ ४८२ ॥
 ततः कुम्भं समुद्धार्य तोयत्रोचैःसुमद्रसैः ।
 नदपृथक् ततो दुग्धैर्दधिभिः स्थापयेज्जितम् ॥ ४८३ ॥
 तोयैः प्रक्षाल्य सञ्चरणैः कुर्याद्दृढनिश्चिन्नाम् ।
 पुनर्नीगजतं कृत्वा स्नानं कदाचकारिभिः ॥ ४८४ ॥
 चतुष्कोणस्थितं कुम्भंस्ततो मन्थान्दृष्टिभिः ।
 अग्निपंकं प्रहृत्वाग्निं जितेश्वरं सुधादिभिः ॥ ४८५ ॥

उक्तं च जिनसंहितायां—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः स शूद्रो वा सुशीलवान् ॥ ३ ॥

अन्येषां नाधिकारित्वं ततस्तैः प्रविधीयताम् ।

जिनपूजां विना सर्वा दूरा सामायिकी क्रिया ॥ ४६६ ॥

जिनपूजा प्रकर्तव्या पूजाशास्त्रोदितक्रमात् ।

यया संप्राप्यते भव्यैर्मोक्षसौख्यं निरन्तरम् ॥ ४६७ ॥

तावत्प्रातः समुत्थाय जिनं स्मृत्वा विधीयताम् ।

प्राभातिको विधिः सर्वः शौचाचमनपूर्वकम् ॥ ४६८ ॥

ततः पौर्वाहिकीं सन्ध्याक्रियां समाचरेत्सुधीः ।

शुद्धक्षेत्रं समाश्रित्य मंत्रवच्छुद्धचारिणा ॥ ४६९ ॥

पश्चात् स्नानविधिं कृत्वा धौतवस्त्रपरिग्रहः ।

मंत्रस्नानं व्रतस्नानं कर्तव्यं मंत्रवत्ततः ॥ ४७० ॥

एवं स्नानत्रयं कृत्वा शुद्धित्रयसमन्वितः ।

जिनावासं विशेषमन्त्री समुच्चार्य निषेधिकाम् ॥ ४७१ ॥

कृत्वेर्यापथसंशुद्धिं जिनं स्तुत्वातिभक्तितः ।

उपविश्य जिनस्याग्रे कुर्याद्विधिमिमां पुरा ॥ ४७२ ॥

तत्रादौ शोषणं स्वांगे दहनं प्लावनं ततः ।

इत्येवं मंत्रविन्मन्त्री स्वकीयाङ्गं पवित्रयेत् ॥ ४७३ ॥

हस्तशुद्धिं विधायाथ प्रकुर्याच्छकलीक्रियाम् ।

कूटबीजाक्षरैर्मन्त्रैर्दशदिग्बन्धनं ततः ॥ ४७४ ॥

१ उक्तं चार्धश्लोकेन जिनसंहितायां ख-पाठः । २ सच्छूद्रो वा इत्यनेन पाठेन भाव्यं । ३ वि. ख. ।

पूजापात्राणि सर्वाणि नमीपीकृत्य सादरम् ।
 भूमिशुद्धिं विधायोच्चैर्दूर्गाग्निज्वलनादियिः ॥ ४७५ ॥
 भूमिपूजां च निर्वृत्य ततस्तु नागतर्पणम् ।
 आग्नेयदिशि संस्थाप्य क्षेत्रपालं प्रनृप्य च ॥ ४७६ ॥
 स्नानपीठं दृढं स्थाप्य प्रक्षाल्य शुद्धवारिणा ।
 श्रीबीजं च विलिख्यात् नन्याद्यैस्तन्प्रपूजयेन् ॥ ४७७ ॥
 परितः स्नानपीठस्य सुखापिनमपहृद्यान ।
 पूरितांस्तीर्थसत्तोयैः कलशांधतुरो न्यसेन् ॥ ४७८ ॥
 जिनेश्वरं समभ्यर्च्य मूलपीठापरिस्थितम् ।
 कृत्वाब्धानविधिं नम्यन् प्रापयेन्स्नानपीठिकाम् ॥ ४७९ ॥
 सुर्यात्संस्थापनं तत्र सन्निधानविधानकम् ।
 तीराजनेश्च निर्वृत्य जलगन्धादिभिर्यजेत् ॥ ४८० ॥
 इन्द्राद्यष्टदिशापालान् दिशाष्टसु निशापनिम् ।
 रक्षोवरुणयोर्मध्ये शेषर्माज्ञानमात्रयोः ॥ ४८१ ॥
 न्यस्थाब्धानादिवं कृत्वा क्रमेणैतान् मुदं नयेत् ।
 बलिप्रदानतः सर्वान् स्वस्वसंश्रयेथादिसम् ॥ ४८२ ॥
 ततः कुम्भं समुदायि तोयचोपेतुमद्रभैः ।
 नदपृथक् ततो दुग्धैर्दधिमिः स्वापयेज्जिनम् ॥ ४८३ ॥
 तोयैः प्रक्षाल्य सञ्चर्यैः कृत्वाद्दृष्टमन्त्रिद्वारम् ।
 पुनर्नीराजनं कृत्वा स्नानं कस्यप्यवारिभिः ॥ ४८४ ॥
 चतुष्कोणस्थितैः कुम्भैस्ततो गन्धान्मुहुर्गतिः ।
 अनिपेक्षं प्रकृषीत् जिनैस्तान् सुखादिभिः ॥ ४८५ ॥

स्वोत्तमाङ्गं प्रसिञ्च्याथ जिनाभिपेकवारिणा ।
 जलगन्धादिभिः पश्चादर्चयेद्विंशमर्हतः ॥ ४८६ ॥
 स्तुत्वा जिनं विसर्ज्यापि दिगीशादिमरुद्गणान् ।
 आर्चिते मूलपीठेऽथ स्थापयेज्जिननायकम् ॥ ४८७ ॥
 तोयैः कर्मरजःशान्त्यै गन्धैः सौगन्धसिद्धये ।
 अक्षतैरक्षयावाप्त्यै पुष्पैः पुष्पशरच्छिदे ॥ ४८८ ॥
 चरुभिः सुखसंवृद्धयै देहदीप्त्यै प्रदीपकैः ।
 सौभाग्यावाप्तये धूपैः फलैर्मोक्षफलाप्तये ॥ ४८९ ॥
 घण्टाद्यैर्मंगलद्रव्यैर्मंगलावाप्तिहेतवे ।
 पुष्पाञ्जलिप्रदानेन पुष्पदन्ताभिर्दीप्तये ॥ ४९० ॥
 तिसृभिः शान्तिधाराभिः शान्तये सर्वकर्मणाम् ।
 आराधयेज्जिनाधीशं मुक्तिश्रीवनितापतिम् ॥ ४९१ ॥
 इत्येकादशधा पूजां ये कुर्वन्ति जिनेशिनाम् ।
 अष्टौ कर्माणि सन्दद्य प्रयान्ति परमं पदम् ॥ ४९२ ॥
 अष्टोत्तरशतैः पुष्पैः जापं कुर्याज्जिनाग्रतः ।
 पूज्यैः पञ्चनमस्कारैर्यथावकाशमञ्जसा ॥ ४९३ ॥
 अथवा सिद्धचक्राख्यं यंत्रमुद्धार्य तत्त्वतः ।
 सत्पत्रपरमेष्ठ्याख्यं गणभृद्भ्रूलयक्रमम् ॥ ४९४ ॥
 यंत्रं चिन्तामणिर्नाम सम्यग्शास्त्रोपदेशतः ।
 संपूज्यात्र जपं कुर्यात् तत्तन्मंत्रैर्यथाक्रमम् ॥ ४९५ ॥
 तद्यंत्रगन्धतो भाले विरचय्य विशेषकम् ।
 सिद्धशेषां प्रसंगृह्य न्यसेन्मूर्ध्नि समाहितः ॥ ४९६ ॥
 चैत्यभक्त्यादिभिः स्तूयाज्जिनेन्द्रं भक्तिनिर्भरः ।
 कृत्कृत्यं स्वमात्मानं मन्यमानोऽद्य जन्मनि ॥ ४९७ ॥

संक्षेपस्नानशास्त्रोक्तविधिना चांभिपिंच्य तम् ।
 कुर्यादष्टविधां पूजां तोयगन्धाक्षतादिभिः ॥ ४९८ ॥
 अन्तर्मुहूर्तमात्रं तु ध्यायेत् स्वस्थेन चेतसा ।
 ग्वदंहस्यं निजात्मानं चिदानन्दैकलक्षणम् ॥ ४९९ ॥
 विधायैवं जिनेशस्य यथावकाशतोऽर्चनम् ।
 नमुत्थाय पुनः स्तुत्वा जिनचैत्यालयं व्रजेत् ॥ ५०० ॥
 कृत्वा पूजां नमस्कृत्य देवदेवं जिनेश्वरम् ।
 श्रुतं संपूज्य मद्भक्त्या तोयगन्धाक्षतादिभिः ॥ ५०१ ॥
 संपूज्यं चरणौ साधोर्नमस्कृत्य यथाविधिम् ।
 आर्याणामार्यिकाणां च कृत्वा चिनयमंजना ॥ ५०२ ॥
 इच्छाकारवचः कृत्वा मिथः साधर्मिकैः नमम् ।
 उपविश्य गुरोरन्ते सद्वर्षं शृणुयाद्बुधः ॥ ५०३ ॥
 देयं दानं यथास्तथा जैनदर्शनवर्तिनाम् ।
 कृपादानं च कर्तव्यं दयागुणविबुद्धये ॥ ५०४ ॥
 एवं सामाजिकं सम्यग्यः करोति गृहाश्रमी ।
 दिनैः कतिपर्यन्तं न त्वान्दृष्टिश्चिदः इति ॥ ५०५ ॥
 मासं प्रति चतुर्वेदं पर्वस्त्राहारवर्जनम् ।
 सवृद्धोजनसेवा वा काञ्जिकाहारसेवनम् ॥ ५०६ ॥
 एवं श्रवणनुसारेण क्रियते मनभावतः ।
 न प्रोषधो विधिः प्रोक्तो मुनिभिर्दर्मवन्दनैः ॥ ५०७ ॥

भुक्त्वा संत्यज्यते वस्तु स भोगः परिकीर्त्यते ।
 उपभोगोऽसकृद्द्वारं भुज्यते च तयोर्मितिः ॥ ५०८ ॥
 संविभागोऽतिथीनां यः किञ्चिद्विशिष्यते हि सः ।
 न विद्यते तिथिर्यस्य सोऽतिथिः पात्रतां गतः ॥ ५०९ ॥
 अधिकाराः स्युश्चत्वारः संविभागेः यतीशिनाम् ।
 कथ्यमाना भवन्त्येते दाता पात्रं विविः फलम् ॥ ५१० ॥
 दाता शान्तो विशुद्धात्मा मनोवाकायकर्मसु ।
 दक्षस्त्यागी विनीतश्च प्रभुः पङ्गुणभूपितः ॥ ५११ ॥
 ज्ञानं भक्तिः क्षमा तुष्टिः सत्यं च लोभवर्जनम् ।
 गुणा दातुः प्रजायन्ते पडेते पुण्यसाधने ॥ ५१२ ॥
 पात्रं त्रिविधं प्रोक्तं सत्पात्रं च क्षुपात्रकम् ।
 अपात्रं चेति तन्मध्ये तावत्पात्रं प्रकथ्यते ॥ ५१३ ॥
 उत्कृष्टमध्यमक्लिष्टभेदात् पात्रं त्रिधा स्मृतम् ।
 तत्रोत्तमं भवेत्पात्रं सर्वसंगोज्झितो यतिः ॥ ५१४ ॥
 मध्यमं पात्रमुद्दिष्टं मुनिभिर्देशसंयमी ।
 जघन्यं प्रभवेत्पात्रं सम्यग्दृष्टिरसंयतः ॥ ५१५ ॥
 रत्नत्रयोज्झितो देही करोति कुत्सितं तपः ।
 ज्ञेयं तत्कुत्सितं पात्रं मिथ्याभावसमाश्रयान् ॥ ५१६ ॥
 न व्रतं दर्शनं शुद्धं न चास्ति नियतं मनः ।
 यस्य चास्ति क्रिया दुष्टा तदपात्रं बुधैः स्मृतम् ॥ ५१७ ॥

मुक्त्वात्र कुत्सितं पात्रमपात्रं च विशेषतः ।
 पात्रदानविधिस्तत्र प्रकथ्यते यथाक्रमम् ॥ ५१८ ॥
 स्थापनमासनं योग्यं चरणक्षालनार्चने ।
 नत्स्त्रियोगशुद्धिश्च नवम्याहारशुद्धिता ॥ ५१९ ॥
 नवविधं विधिः प्रोक्तः पात्रदाने मुनीश्वरैः ।
 तथा षोडशभिर्दोषैरुद्गमाद्यैर्विवर्जितः ॥ ५२० ॥
 उद्दिष्टं विक्रयानीतमुद्धारस्वीकृतं तथा ।
 परिवर्त्य समानीतं देशान्तरात्समागतम् ॥ ५२१ ॥
 अप्रासुकेन सम्मिश्रं भुक्तिभाजनमिश्रता ।
 अधिकापाकसंवृद्धिर्मुनिवृन्दे समागतेः ॥ ५२२ ॥
 समीपीकरणं पंक्तौ संयतासंयतात्मनाम् ।
 पाकभाजनतोऽन्यत्र निक्षिप्यानयनं तथा ॥ ५२३ ॥
 निर्वापितं समुत्क्षिप्य दुग्धमण्डादिकं च यत् ।
 नीचजात्यापितार्थं च प्रतिहस्तात्समर्पितम् ॥ ५२४ ॥
 चक्षादिवलिशेषं च आनीय चोर्ध्वसद्गनि ।
 ग्रन्थिमुद्भिद्य यदत्तं कालातिक्रमतोऽर्पितम् ॥ ५२५ ॥
 राजादीनां भयाद्दत्तमित्येषा दोषसंहतिः ।
 वर्जनीया प्रयत्नेन पुण्यसाधनसिद्धये ॥ ५२६ ॥
 आहारं भक्तित्तो दत्तं दात्रा योग्यं यथाविधि ।
 स्वीकर्तव्यं विशोध्यैतद्वीतरागयतीशिना ॥ ५२७ ॥
 योग्यकालागतं पात्रं मध्यमं वा जघन्यकम् ।
 यथावत्प्रतिपत्या च दानं तस्मै प्रदीयताम् ॥ ५२८ ॥

यदि पात्रमलब्धं चेदेवं निन्दां करोत्यसौ ।
 वासरोऽयं वृथा यातः पात्रदानं विना मम ॥ ५२९ ॥
 इत्येवं पात्रदानं यो विदधाति गृहाश्रमी ।
 देवेन्द्राणां नरेन्द्राणां पदं संप्राप्य सिद्धयति ॥ ५३० ॥
 अणुव्रतानि पंचैव सप्तशीलगुणैः सह ।
 प्रपालयति निःशयः भवेद्ब्रतिको गृही ॥ ५३१ ॥

व्रतप्रतिमा ।

चतुर्ह्यावर्तसंयुक्तश्चतुर्नमस्क्रिया सह । ?
 द्विनिपद्यो यथाजातो मनोवाक्कायशुद्धिमान् ॥ ५३२ ॥
 चैत्यभक्त्यादिभिः स्तूयाज्जिनं सन्ध्यात्रयेऽपि च ।
 कालातिक्रमणं मुक्त्वा स स्यात्सामायिकव्रती ॥ ५३३ ॥

सामायिकप्रतिमा ।

मासं प्रत्यष्टमीमुख्यचतुष्पर्वदिनेष्वपि ।
 चतुरभ्यवहार्याणां विदधाति विसर्जनम् ॥ ५३४ ॥
 पूर्वापरदिने चैकाभुक्तिस्तदुत्तमं विदुः ।
 मध्यमं तद्विना क्लिष्टं यत्राम्बु सेव्यते क्वचित् ॥ ५३५ ॥
 इत्येकमुपवासं यो विदधाति स्वशक्तितः ।
 श्रावकेषु भवेत्तुर्यः प्रोषधोऽनशनव्रती ॥ ५३६ ॥

प्रोषधप्रतिमा ।

फलमूलाम्बुपत्राद्यं नाश्नात्यप्रासुकं सदा ।
सचित्तविरतो गेही^१ दयांमूर्तिर्भवत्यसौ ॥ ५३७ ॥
सचित्तप्रतिमा ।

मनोवाक्कायसंशुद्ध्या दिवा नो भजतेऽङ्गनाम् ।
भण्यतेऽसौ दिवाब्रह्मचारीति ब्रह्मवेदिभिः ॥ ५३८ ॥
रात्रौ भुक्तिप्रतिमा ।

स्त्रीयोनिस्थानसंभूतजीवघातभयाद्सौ ।
स्त्रियं नो रमते त्रेधा ब्रह्मचारी भवत्यतः ॥ ५३९ ॥
ब्रह्मचर्यप्रतिमा ।

यैः सेवाकृपिवाणिज्यव्यापारत्यजनं भजेत् ।
प्राण्यभिघातसंत्यागादारम्भविरतो भवेत् ॥ ५४० ॥
आरंभरहितप्रतिमा ।

दशधा ग्रन्थमुत्सृज्य निर्मसत्वं भजेन् सदा ।
सन्तोषामृतसंतुष्टः स स्यात्परिग्रहोज्झितः ॥ ५४१ ॥
अपरिग्रहप्रतिमा ।

ददात्यनुमतिं नैव सर्वेष्वैहिककर्मसु ।
भवत्यनुमतत्यागी देशसंयमिनां वरः ॥ ५४२ ॥

१ योगी । २ ततो वाक्का. ख. । ३ यत्. ख. । ४ प्रणाभिघात. ख. ।
५ भजेत्. ख. ।

अनुमतत्यागप्रतिमा ।

नोद्दिष्टां सेवते भिक्षामुद्दिष्टविरतो गृही ।
 द्वैधैको ग्रन्थसंयुक्तस्त्वन्यः कौपीनधारकः ॥ ५४३ ॥
 आद्यो विदधते (ति) क्षौरं प्रावृणोत्येकवाससम् ।
 पंचभिक्षासनं भुंक्ते पठते गुरुसन्निधौ ॥ ५४४ ॥
 अन्यः कौपीनसंयुक्तः कुरुते केशलुञ्चनम् ।
 शौचोपकरणं पिच्छं मुक्त्वान्यग्रन्थवर्जितः ५४५ ॥
 मुनीनामनुमार्गेण चर्यायै सुप्रगच्छति ।
 उपविश्य चरेद्भिक्षां करपात्रेऽङ्गसंवृतः ॥ ५४६ ॥
 नास्ति त्रिकालयोगोऽस्य प्रतिमा चार्कसम्मुखा ।
 रहस्यग्रन्थसिद्धान्तश्रवणे नाधिकारिता ॥ ५४७ ॥
 वीरचर्या न तस्यास्ति वस्त्रखण्डपरिग्रहात् ।
 एवमेकादशो गेही सोत्कृष्टः प्रभवत्यसौ ॥ ५४८ ॥
 उद्दिष्टत्यागप्रतिमा ।

स्थानेप्वेकादशस्वेवं स्वगुणाः पूर्वसद्गुणैः ।
 संयुक्ताः प्रभवन्त्येते श्रावकाणां यथाक्रमम् ॥ ५४९ ॥
 आत्तराद्रं भवेद्द्वयानं मन्दभावसमाश्रितम् ।
 मुख्यं धर्म्यं न तस्यास्ति गृहव्यापरसंश्रयात् ॥ ५५० ॥
 गौणं हि धर्मसद्द्वयानमुत्कृष्टं गृहमेधिनः ।
 भद्रध्यानात्मकं धर्म्यं शेषाणां गृहचारिणाम् ॥ ५५१ ॥

जिनेज्यापात्रदानादिस्तत्र कालोचितो विधिः ।
 भद्रध्यानं स्मृतं तद्धि गृहधर्माश्रयाद्बुधैः ॥ ५५२ ॥
 पूजा दानं गुरुपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः ।
 आवश्यकानि कर्माणि पठेतानि गृहाश्रमे ॥ ५५३ ॥
 नित्या चतुर्मुखाख्या च कल्पद्रुमामिधानका ।
 भवत्याष्टान्हिकी पूजा दिव्यध्वजेति पंचधा ॥ ५५४ ॥ ॥
 स्वगेहे चैत्यगेहे वा जिनेन्द्रस्य महामहः ।
 निर्माप्यते यथाम्नायं नित्यपूजा भवत्यसौ ॥ ५५५ ॥

नित्या ।

नृपैर्भुक्तवद्बाधैः सन्मंडपे चतुर्मुखे ।
 विधीयते महापूजा सा स्याच्चतुर्मुखो महः ॥ ५५६ ॥
 चतुर्मुखा ।

कल्पद्रुमैरिवाशेषजगदाशा प्रपूर्यते ।
 चक्रिभिर्यत्र पूजायां सा स्यात्कल्पद्रुमामिधा ॥ ५५७ ॥
 कल्पद्रुमा ।

नन्दीश्वरेषु देवेन्द्रैर्द्वीपे नन्दीश्वरे सहः ।
 दिनाष्टकं विधीयेत सा पूजाष्टान्हिकी मता ॥ ५५८ ॥
 अष्टान्हिकी ।

अकृत्रिमेषु चैत्येषु कल्याणेषु च पंचसु ।

सुरैर्विनिर्मिता पूजा भवेत्सेन्द्रध्वजात्मिका ॥ ५५९ ॥

इन्द्रध्वजा ।

महोत्सवमिति ग्रीत्या ग्रपंचयति पंचधा ।

स स्यान्मुक्तिवधूनेत्रप्रेमपात्रं पुमानिह ॥ ५६० ॥

पूजा ।

दानमाहारभैषज्यशास्त्राभयविकल्पतः ।

चतुर्धा तत्पृथक् त्रेधा त्रिधापात्रसमाश्रयात् ॥ ५६१ ॥

एपणाशुद्धितो दानं त्रिधा पात्रे प्रदीयते ।

भवत्याहारदानं तत्सर्वदानेषु चोत्तमम् ॥ ५६२ ॥

आहारदानमेकं हि दीयते येन देहिना ।

सर्वाणि तेन दानानि भवन्ति विहितानि वै ॥ ५६३ ॥

नास्ति क्षुधासमो व्याधिर्भेषजं वास्य शान्तये ।

अन्नमेवेति मन्तव्यं तस्मात्तदेव भेषजम् ॥ ५६४ ॥

विनाहारैर्वलं नास्ति जायते नो बलं विना ।

सच्छास्त्राध्ययनं तस्मात्तदानं स्यात्तदात्मकम् ॥ ५६५ ॥

अभयं प्राणसंरक्षा बुभुक्षा प्राणहारिणी ।

क्षुन्निवारणमन्नं स्यादन्नमेवाभयं ततः ॥ ५६६ ॥

अन्नस्याहारदानस्य तृप्तिर्भाजं शरीरिणाम् ।
 रत्नभूस्वर्णदानानि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ५६७ ॥
 सदृष्टिः पात्रदानेन लभते नाकिनां पदम् ।
 ततो नरेन्द्रतां प्राप्य लभते पदसक्षयम् ॥ ५६८ ॥
 संसारान्धौ महाभीमे दुःखकल्लोलसंकुले ।
 तारकं पात्रमुत्कृष्टमनायासेन देहिनाम् ॥ ५६९ ॥
 सत्पात्रं तारयत्युच्चैः स्वदातारं भवार्णवे ।
 यानपात्रं समीचीनं तारयत्यस्त्रुधौ यथा ॥ ५७० ॥
 भद्रमिथ्यादृशो जीवा उत्कृष्टपात्रदानतः ।
 उत्पद्य भुञ्जते भोगानुत्कृष्टभोगभूतले ॥ ५७१ ॥
 ते चार्पितप्रदानेन मध्यमाधमपात्रयोः ।
 मध्यसाधमभोगेभ्यो लभन्ते जीवितं महत् ॥ ५७२ ॥
 मधुवाद्याङ्गदीपाङ्गा वस्त्रभाजनमाल्यदाः ।
 ज्योतिर्भूपागृहाङ्गाश्च दशधा कल्पपादपाः ॥ ५७३ ॥
 पुण्योपचितमाहारं मनोज्ञं कल्पितं यथा ।
 लभन्ते कल्पवृक्षेभ्यस्तत्रत्या देहधारिणः ॥ ५७४ ॥
 दानं हि वामदृग्दीक्ष्य कुपात्राय प्रयच्छति ।
 उत्पद्यते ह्रुदेवेषु तिर्यक्षु कुनरेष्वपि ॥ ५७५ ॥
 मानुषोत्तरवाह्ये ह्यसंख्यद्वीपवार्धिषु ।
 तिर्यक्त्वं लभते नूनं देही कुपात्रदानतः ॥ ५७६ ॥
 निन्द्यांसु भोगभूमीषु पत्यप्रमितजीविनः ।
 नग्नाश्च विकृताकारा भवन्ति वामदृष्टयः ॥ ५७७ ॥

१ अस्यान्नाहारदानस्य. ख. । २ भाज खः । ३ दानादि कलां नार्हति । ४ सदा ।
 ५७२-५७३ श्लोकौ पूर्वापरीभूता. ख-पुस्तके । ५ निन्द्याः कुभोगभूमीषु. ख. ।

लवणाब्धेस्तटं त्यक्त्वा शतघ्नीं पंचयोजनीम् ।
 दिग्बिदिक्षु चतसृषु पृथक्कुभोगभूमयः ॥ ५७८ ॥
 सैकोरुकाः सशृङ्गाश्च लांगुलिनश्च झूक्तिनः ।
 चतुर्दिक्षु वसन्त्येते पूर्वादिक्रमतो यथा ॥ ५७९ ॥
 विदिक्षु शशकर्णाख्याः सन्ति सङ्कुलिकर्णिनः ।
 कर्णप्रावरणाश्चैव लम्बकर्णाः- कुमानुपाः ॥ ५८० ॥
 शतानि पंच सार्धानि सन्त्यज्य वारिधेस्तटम् ।
 अन्तरस्थदिशास्वष्टौ कुत्सिता भोगभूमयः ॥ ५८१ ॥
 सिंहाश्च महिपोलकव्याघ्रशूकरगोमुखाः ।
 कपिवक्त्रा भवन्त्यष्टौ दिशानामन्तरे स्थिताः ॥ ५८२ ॥
 वेधायाः पट्टच्छतीं त्यक्त्वा द्वौ द्वावुभयोर्दिशोः ।
 हिमाद्रिविजयार्धाद्रिताराद्रिशिखर्यद्रिषु ५८३ ॥
 हिमवद्विजर्यार्धस्य पूर्वापरविभागयोः ।
 मत्स्यकालमुखा मेघविद्युन्मुखाश्च मानवाः ॥ ५८४ ॥
 विजर्यार्धशिखर्यद्रिषार्श्वयोरुभयोरपि ।
 हस्त्यादर्शमुखामेघमण्डलाननसन्निभाः ॥ ५८५ ॥
 चतुर्विंशतिसंख्याका भवन्ति मिलिता इमाः ।
 तावन्त्यो धातकीखण्डनिकटे लवणार्णवे ॥ ५८६ ॥
 एवं स्युद्वर्चनपंचाशल्लवणाब्धितटद्वयोः ।
 कालोदजलधौ तद्वद्द्वीपाः पण्णवतिः स्मृताः ॥ ५८७ ॥
 एकोरुका गुहावासाः स्वादुमृन्मयभोजनाः ।
 शेषास्तरुतलावासाः पत्रपुष्पफलाशिनः ॥ ५८८ ॥

न जातु विद्यते येषां कृतदोपनिर्कृतनम् ।

उत्पादोऽत्र भवेत्तेषां कपायवशगात्मनाम् ॥ ५८९ ॥

त्रिकलं—

सूतकाशुचिदुर्भावव्याकुलादिम(त्व)संयुताः ।

पात्रे दानं प्रकुर्वन्ति मूढा वा गर्विताशयाः ॥ ५९० ॥

पंचाग्निना तपोनिष्ठा मौनहीनं च भोजनम् ।

प्रीतिश्चान्यविवादेषु व्यसनेष्वतितीव्रता ॥ ५९१ ॥

दानं च कुत्सिते पात्रे येषां प्रवर्तते सदा ।

तेषां प्रजायते जन्म क्षेत्रेष्वेतेषु निश्चितम् ॥ ५९२ ॥

उत्पद्यन्ते ततो मृत्वा भावनादिसुरत्रये ।

सन्दकपायसद्भावात् स्वभावार्जवभावतः ॥ ५९३ ॥

मिथ्यात्वभावनायोगात्तदश्च्युत्वा भवार्णवे ।

वराकाः सम्पतन्त्येव जन्मनक्रकुलाकुले ॥ ५९४ ॥

अपात्रे विहितं दानं यत्नेनापि चतुर्विधम् ।

व्यर्थीभवति तत्सर्वं भस्मन्याज्याहुतिर्यथा ॥ ५९५ ॥

अवधौ निमज्जयत्याशु स्वमन्यान्नौर्द्विपन्मयी ।

संसारवधावपात्रं तु तादृशं विद्धि सन्मते ! ॥ ५९६ ॥

पात्रे दानं प्रकर्तव्यं ज्ञात्वैवं शुद्धदृष्टिभिः ।

यस्मात्सम्पद्यते सौख्यं दुर्लभं त्रिदशेशिनाम् ॥ ५९७ ॥

दानम् ।

१ क-पुस्तके अस्मात् ५८९. श्लोकात्पूर्वं द्विकलमिति पाठः । ख-पुस्तके तु ५९० श्लोकात्पूर्वं त्रिकलमिति । २ वक्रतादिमसंयुताः ख-पाठः ।

निरालंघं तु यद्व्यानमप्रमत्तयतीशिनाम् ।
 बहिर्व्यापारमुक्तानां निर्ग्रन्थजिनलिंगिनाम् ॥ ६०६ ॥
 गृहव्यापारयुक्तस्य मुख्यत्वेनेह दुर्घटम् ।
 निर्विकल्पचिदानन्दं निजात्मचिन्तनं परम् ॥ ६०७ ॥
 गृहव्यापारयुक्तेन शुद्धात्मा चिन्त्यते यदा ।
 प्रस्फुरन्ति तदा सर्वे व्यापारा नित्यभाविताः ॥ ६०८ ॥
 अथ चेन्निश्चलं ध्यानं विधातुं यः समीहते ।
 ढिंकुलीसन्निभं तद्धि जायते तस्य देहिनः ॥ ६०९ ॥
 पुण्यहेतुं परित्यज्य शुद्धध्याने प्रवर्तते ।
 तत्र नास्त्यधिकारित्वं ततोऽसावुभयोज्झितः ॥ ६१० ॥
 त्यक्तपुण्यस्य जीवस्य पापास्रवो भवेद्भ्रुवम् ।
 पापत्रन्धो भवेत्तस्मात् पापत्रन्धाच्च दुर्गतिः ॥ ६११ ॥
 पुण्यहेतुस्ततो भव्यैः प्रकर्तव्यो मनीषिभिः ।
 यस्मात्प्रगम्यते स्वर्गमायुर्वन्धोज्झितैर्जनैः ॥ ६१२ ॥
 तत्रानुभूय संत्सौख्यं सर्वाक्षार्थप्रसाधकम् ।
 ततश्च्युत्वा कर्मभूमौ नरेन्द्रत्वं प्रपद्यते ॥ ६१३ ॥
 लक्षाश्चतुरशीतिः स्युरष्टादश च कोटयः ।
 लक्षं चतुःसहस्रानं गजाश्चान्तःपुराणि च ॥ ६१४ ॥
 निधयो नव रत्नानि प्रभवन्ति चतुर्दश ।
 पट्खण्डभरतेशित्वं चक्रिणां स्युर्विभूतयः ॥ ६१५ ॥
 जरत्तृणमिवाशेषां संत्यज्य राज्यसम्पदम् ।
 अत्युत्कृष्टतपोलक्ष्मीमेवं प्राप्नोति शुद्धदृक् ॥ ६१६ ॥

त्यक्तग्रन्थेषु बाह्येषु पुनर्मुह्यन्ति दुर्धियः ।
 समानास्ते भवन्त्युच्चैरुद्गीर्णाहारभोजिनाम् ॥ ६२७ ॥
 हास्यादिपट्टसु दोषेषु प्रसक्ता जिनलिंगिनः ।
 मूढास्ते पुष्पनाराचैर्विभिद्यन्ते यथेप्सितम् ॥ ६२८ ॥
 धृत्वा जैनेश्वरं लिंगं वैपरीत्येन वर्तनम् ।
 मिथ्यात्वं तद्भवेत्तेषां दुर्गतौ गमने सखा ॥ ६२९ ॥
 धूर्णन्ते विषयव्यालैर्भिद्यन्ते मारमार्गणैः ।
 वेदरागवशीभूता दहन्ते दुःखवन्हिना ॥ ६३० ॥
 न शक्नुवन्ति ये जेतुं कपायराक्षसां गणम् ।
 वराकाः कार्मणं सैन्यं न ते जेष्यन्ति जातुचित् ॥ ६३१ ॥
 रसे रसायने स्तम्भे शाकिनीग्रहनिग्रहे ।
 वश्योच्चाटनविद्वेषे भोगीन्द्रविषविष्णवे ॥ ६३२ ॥
 इत्यादिषु प्रवर्तन्ते निष्पृषा ऐहिकाशयाः ।
 यतित्वं जीवनोपायं भवेत्तेषां विनिश्चितम् ॥ ६३३ ॥
 निःशल्या निरहंकारा निर्मोहा मदविच्युताः ।
 पक्षपातारिसंत्यक्ता निष्कपाया जितेन्द्रियाः ॥ ६३४ ॥
 अन्तर्वाह्यतपोनिष्ठाश्चारित्रव्रतभाजिनः ।
 दशधर्मरताः शान्ता ध्यानाध्ययनतत्पराः ॥ ६३५ ॥
 भेदाभेदनयाक्रान्तरत्नत्रयविभूषिताः ।
 इत्यादिगुणभूपाढ्या जगद्वन्द्या यतीश्वराः ॥ ६३६ ॥
 ध्यायन्ति गौणभावाढ्यं धर्म्यमालम्बनान्वितम् ।
 मुख्यं धर्म्यं निरालम्बमग्रमत्तमुनीश्वराः ॥ ६३७ ॥

आवश्यकान् परित्यज्य निश्चलं ध्यानमाश्रयेत् ।
 नासौ वेत्त्यागमं जैनं मिथ्यादृष्टिर्भवत्यतः ॥ ६४९ ॥
 तस्मादावश्यकैः कुर्यात्प्राप्तदोपनिवृन्तनम् ।
 यावन्नाप्नोति सद्द्वयानं निरालम्बं सुनिश्चलम् ॥ ६५० ॥
 सम्यग्जिनागमं ज्ञात्वा प्रोक्ततद्द्वयानसाधनात् ।
 क्षपकश्रेणिमारुह्य मुक्तेः सन्न प्रपद्यते ॥ ६५१ ॥
 इति षष्ठं प्रमत्तगुणस्थानम् ।

अप्रमत्तगुणस्थानमतो वक्ष्ये समासतः ।
 भवन्त्यत्र त्रयो भावाः पट्टस्थानोदिता यथा ॥ ६५२ ॥
 संज्वलनकपायाणां जाते मन्दोदये सति ।
 भवेत् प्रमादहीनत्वादप्रमत्तो महाव्रती ॥ ६५३ ॥
 नष्टशेषप्रमादात्मा व्रतशीलगुणान्वितः ।
 ज्ञानध्यानपरो मौनी शमनक्षपणोन्मुखः ॥ ६५४ ॥
 एकविंशतिभेदात्ममोहस्योपशमाय च ।
 क्षपणाय करोत्येष सद्द्वयानसाधनं यमी ॥ ६५५ ॥
 मुख्यवृत्त्या भवत्यत्र धर्मध्यानं जिनोदितम् ।
 तत्र तावद्भवेद् ध्याता ध्येयं ध्यानं फलं क्रमात् ॥ ६५६ ॥
 आहारासननिद्राणां विजयो यस्य जायते ।
 पंचानामिन्द्रियाणां च परीपहसहिष्णुता ॥ ६५७ ॥
 गिरीन्द्र इव निष्कम्पो गम्भीरस्तोयराशिवत् ।
 अशेषशास्त्रविद्वीरो ध्याताऽसौ कथ्यते बुधैः ॥ ६५८ ॥

अप्रमत्तं गुणस्थानं संक्षेपेणेह वर्णितम् ।

अतो वक्ष्येऽष्टमं स्थानं श्रेणिद्वयसमाश्रितम् ॥ ६७० ॥

इति सप्तममप्रमत्तगुणस्थानम् ।

अतोऽपूर्वादिनामानि गुणस्थानान्युदीरयेत् ।

भवत्युपशमश्रेणी येभ्यश्च क्षपकावलिः ॥ ६७१ ॥

तत्रापूर्वगुणस्थानमपूर्वगुणसंभवात् ।

भावानामनिवृत्तित्वादननिवृत्तिगुणास्पदम् ॥ ६७२ ॥

अस्तित्वात्सूक्ष्मलोभस्य भवेत्सूक्ष्मकपायकम् ।

प्रशान्तरागयुक्तत्वादुपशान्तकपायकम् ॥ ६७३ ॥

तत्रापूर्वगुणस्थाने प्रथमांशे प्रजायते ।

बन्धविच्छेदनं सम्यङ्निद्राप्रचलयोर्द्वयोः ॥ ६७४ ॥

आरोहति ततः श्रेणिमादिमामुपशामकैः ।

सत्यायुष्युपशान्त्याग्निं प्रापयेद्वृत्तमोहनम् ॥ ६७५ ॥

क्षपकः क्षपयत्युच्चैश्चारित्रमोहपर्वतम् ।

आरुह्य क्षपकश्रेणिमुपर्युपरि शुद्धितः ॥ ६७६ ॥

प्रभवत्युपशमश्रेण्यां भावो ह्युपशमात्मकः ।

चारित्र्यं तद्विधं ज्ञेयं वृत्तमोहोपशान्तितः ॥ ६७७ ॥

स्यादुपशमसम्यक्त्वं प्रशमाद् दृष्टिमोहतः ।

केषांचिन् क्षायिकं प्रोक्तं दृष्टिघ्नकर्मणः क्षयान् ॥ ६७८ ॥

तत्रार्थं शुद्धसद्ब्रह्मचानं न ध्यायत्युपशामकैः ।

पूर्वज्ञः शुद्धिमान् युक्तो त्वाद्यैः संहननैर्द्विभिः ॥ ६७९ ॥

तद्वचानयोगतो योगी परां शुद्धिं प्रगच्छति ।
 प्रापयन्नुपशान्ताग्निं वृत्तमोहं महारिपुम् ॥ ६८० ॥
 वृत्तमोहोदयं प्राप्य पुनः प्रच्यवते यतिः ।
 अधःकृतमलं तोयं पुनर्म्लानं भवेद्यथा ॥ ६८१ ॥
 ऊर्ध्वमेकं च्युतौ वामं सप्तमं यान्ति देहिनः ।
 इति त्रयमपूर्वाद्यास्त्रयो यान्त्युपशामकाः ॥ ६८२ ॥
 उपशान्तकपायस्य न ह्यस्त्यूर्ध्वगुणाश्रयः ।
 ततोऽसौ वामतां याति सप्तमं वा गुणास्पदम् ॥ ६८३ ॥
 उपशान्तगुणश्रेण्यां येषां मृत्युः प्रजायते ।
 अहमिन्द्रा भवन्त्येते सर्वार्थसिद्धिसन्नानि ॥ ६८४ ॥
 चतुर्वारं शमश्रेणिं रोहत्याश्रयते यमम् ।
 द्वात्रिंशद्वारमाक्षीणकर्माशा यान्ति निर्वृतिम् ॥ ६८५ ॥
 औसंसारं चतुर्वारमेव स्याच्छमनोवला ? ।
 जीवस्यैकभवे वारद्वयं सा यदि जायते ॥ ६८६ ॥

उक्तं चान्यत्र ग्रन्थान्तरे—

चत्वारि वारमुवसमसेहिं समरुहदि खविदकमंसो ।
 वत्तीसं वाराइं सजम गहदि पुणो लहदि णिग्वाणं ॥ १ ॥
 ईत्युपशमश्रेणिगुणस्थानचतुष्टयम् ।

अतो वक्ष्ये समासेन क्षपकश्रेणिलक्षणम् ।
 योगी कर्मक्षयं कर्तुं यामारुह्य प्रवर्तते ॥ ६८७ ॥

१ गाः ख. । २ श्लोकोऽयं नास्ति ख-पुस्तके । ३ प्राकृतपंचसंग्रहे तु
 “संजममुवलहिय णिग्वादि” इति पाठः । ४ इति ख-पुस्तके नास्ति ।

आयुर्वन्धविहीनस्य क्षीणकर्मांशदेहिनः ।

असंयतगुणस्थाने नरकार्युः क्षयं व्रजेत् ॥ ६८८ ॥

तिर्यगायुः क्षयं याति गुणस्थाने तु पंचमे ।

सप्तमे त्रिदशायुश्च दृष्टिमोहस्य सप्तकम् ॥ ६८९ ॥

एतानि दश कर्माणि क्षयं नीत्वाथ शुद्धधीः ।

धर्मध्याने कृताभ्यासः समारोहति तत्पदम् ॥ ६९० ॥

मुख्यत्वेनेह साधूनां भावो हि क्षायिको मतः ।

सम्यक्त्वं क्षायिकं शुद्धं दृष्टिमोहारिसंक्षयात् ॥ ६९१ ॥

तत्रापूर्वगुणस्थाने शुक्लसद्ब्रह्मानमादिमम् ।

ध्यातुं प्रक्रमते साधुराद्यसंहननान्वितः ॥ ६९२ ॥

ध्यानस्य विघ्नकारीणि त्यक्त्वा स्थानान्यशेषतः ।

विशुद्धानि मनोज्ञानि ध्यानसिद्धयर्थमाश्रयेत् ॥ ६९३ ॥

द्विकलं—

निष्प्रकम्पं विधायाथ दृढपर्यर्कमासनम् ।

नासाग्रे दत्तसन्नेत्रः किञ्चिन्निमीलितेक्षणः ॥ ६९४ ॥

विकल्पवागुराजालाद्दूरोत्सारितमानसः ।

संसारच्छेदनोत्साहः स योगी ध्यातुमर्हति ॥ ६९५ ॥

अपानद्वारमार्गेण निःसरन्तं यथेच्छया ।

निरुद्धचोर्ध्वप्रचाराग्निं प्रापयत्यनिलं मुनिः ॥ ६९६ ॥

द्वादशाङ्गुलपर्यन्तं समाकृष्य समीरणम् ।

पूरयत्यतियत्नेन पूरकध्यानयोगतः ॥ ६९७ ॥

कुम्भवत्कुम्भकं योगी ज्वसनं नाभिपंकजे ।
 कुम्भकध्यानयोगेन सुस्थिरं कुरुते क्षणम् ॥ ६९८ ॥
 निःसार्यते ततो यत्नान्नाभिपद्मोदराच्छनैः ।
 योगिना योगसामर्थ्याद्रेचकाख्यः प्रभंजनः ॥ ६९९ ॥
 इत्येवं गन्धवाहानामाकुंचनविनिर्गमौ ।
 संसाध्य निश्चलं धत्ते चित्तमेकाग्रचिन्तने ॥ ७०० ॥
 सवितर्कं सवीचारं सपृथक्त्वमुदाहृतम् ।
 त्रियोगयोगिनः साधोः शुक्लमाद्यं सुनिर्मलम् ॥ ७०१ ॥
 श्रुतं चिंता वित्तर्कः स्याद्वीचारः संक्रमो मतः ।
 पृथक्त्वं स्यादनेकत्वं भवत्येतत्त्रयात्मकम् ॥ ७०२ ॥
 तद्यथा—

स्वशुद्धात्मानुभूत्यात्मभावानामवलंबनात् ।
 अन्तर्जल्पो वितर्कः स्याद्यस्मिंस्तत्सवितर्कजम् ॥ ७०३ ॥
 अर्थादर्थान्तरे शब्दाच्छब्दान्तरे च संक्रमः ।
 योगाद्योगान्तरे यत्र सवीचारं तदुच्यते ॥ ७०४ ॥
 द्रव्याद् द्रव्यान्तरं याति गुणाद्गुणान्तरं व्रजेत् ।
 पर्यायादन्यपर्यायं सपृथक्त्वं भवत्यतः ॥ ७०५ ॥
 इति त्रयात्मकं ध्यानं ध्यायन् योगी समाहितः ।
 संप्राप्नोति परां शुद्धिं मुक्तिश्रीवनितासखीम् ॥ ७०६ ॥
 यद्यपि प्रतिपात्येतच्छुद्ध्यान् प्रजायते ॥
 तथाप्यतिविशुद्धत्वादूर्ध्वास्पदं समीहते ॥ ७०७ ॥

इत्यष्टमं क्षपकापूर्वकरणगुणस्थानम् ।

अनिवृत्तिगुणस्थानं ततः समधिगच्छति ।
 भावं क्षायिकमाश्रित्य सम्यक्त्वं च तथाविधम् ॥ ७०८ ॥
 गुणस्थानस्य तस्यैव भागेषु नवसु क्रमात् ।
 नश्यन्ति तानि कर्माणि तेनैव ध्यानयोगतः ॥ ७०९ ॥
 गतिः श्वाश्री च तैरश्री तच्चानुपूर्विकाद्वयम् ।
 साधारणत्वमुद्योतः सूक्ष्मत्वं विकलत्रयम् ॥ ७१० ॥
 एकेन्द्रियत्वमातापस्त्यानगृह्यादिकत्रयम् ।
 आद्यांशे स्थावरत्वेन सहितान्येतानि षोडश ॥ ७११ ॥
 अष्टौ मध्यकपायाश्च द्वितीयेऽथ तृतीये ।
 पंडत्वं तुर्यके स्त्रीत्वं नोकपाया पट्टपंचमे ॥ ७१२ ॥
 पुंवेदश्च ततः क्रोधो मानो माया विनश्यति ।
 चतुर्ष्वंशेषु शेषेषु यथाक्रमेण निश्चितम् ॥ ७१३ ॥
 कर्माण्येतानि पट्टत्रिंशत्क्षयं नीत्वा तदन्तिमे ।
 समये स्थूललोभस्य सूक्ष्मत्वं प्रापयेन्मुनिः ॥ ७१४ ॥
 इति नवमं क्षपकानिवृत्तिगुणस्थानम् ।

आरोहति ततः सूक्ष्मसांपरायगुणारूपदम् ।
 सूक्ष्मलोभं निगृह्णाति तत्रासावाद्यशुद्धतः ॥ ७१५ ॥
 इति दशमं क्षपकसूक्ष्मकपायगुणस्थानम् ।

भूत्वाथ क्षीणमोहात्मा वीतरागो महाद्युतिः ।
 पूर्ववद्भावसंयुक्तो द्वितीयं ध्यानमाश्रयेत् ॥ ७१६ ॥

अपृथक्त्वमवीचारं सवितर्कगुणान्वितम् ।

संध्यायत्येकयोगेन शुक्लध्यानं द्वितीयकम् ॥ ७१७ ॥

तद्यथा—

यद्द्रव्यगुणपर्यायपरावर्तविवर्जितम् ।

चिन्तनं तदवीचारं स्मृतं सद्ब्रह्मानकोविदैः ॥ ७१८ ॥

निजशुद्धात्मनिष्ठत्वाद् भावश्रुतावलम्बनात् ।

चिन्तनं क्रियते यत्र सवितर्कस्तदुच्यते ॥ ७१९ ॥

निजात्मद्रव्यमेकं वा पर्यायमथवा गुणम् ।

निश्चलं चिन्त्यते यत्र तदेकत्वं विदुर्वुधाः ॥ ७२० ॥

इत्येकत्वमवीचारं सवितर्कमुदाहृतम् ।

तस्मिन् समरसीभावं धत्ते स्वात्मानुभूतितः ॥ ७२१ ॥

इत्येतद्ब्रह्मानयोगेन प्रोष्यत्कर्मेन्धनोत्करम् ।

निद्राप्रचलयोर्नाशं करोत्युपान्तिमक्षणे ॥ ७२२ ॥

अन्त्ये दृष्टिचतुष्कं च दशकं ज्ञानविघ्नयोः ।

एवं षोडशकर्माणि क्षयं गच्छत्यशेषतः ॥ ७२३ ॥

एतत्कर्मरिपून् हत्वा क्षीणमोहो मुनीश्वरः ।

उत्पाद्य केवलज्ञानं सयोगी समभूत्तदा ॥ ७२४ ॥

इति द्वादशं क्षीणकपायगुणस्थानम् ।

ततस्त्रयोदशे स्थाने देवदेवः सनातनः ।

राजते ध्यानयोगस्य फलादेवाप्तवैभवः ॥ ७२५ ॥

भावोऽत्र क्षायिकः शुद्धः सम्यक्त्वं क्षायिकं परम् ।
 यथाख्यातं हि चारित्रं निर्ममत्वस्य जायते ॥ ७२६ ॥
 यदौदारिकमङ्गं तु सप्तधातुसमन्वितम् ।
 अन्यथा तदभूत्तस्मात्परमौदारिकं स्मृतम् ॥ ७२७ ॥
 तेजोमूर्तिमयं दिव्यं सहस्रार्कसमप्रभम् ।
 विनष्टाङ्गप्रतिच्छायं नष्टकेशादिवर्धनम् ॥ ७२८ ॥
 यदार्हन्त्यं पदं प्राप्य देवेशो देवपूजितः ।
 जन्ममृत्युजरातङ्कविच्युतः प्रभवत्यसौ ॥ ७२९ ॥
 ज्ञानदृष्ट्यावृतेस्त्यागात्केवलज्ञानदर्शने ।
 उदयं प्राप्नुतस्तस्य जिनेन्द्रस्यातिनिर्मले ॥ ७३० ॥
 अनन्तसुखसम्भूतिर्जाता मोहारिसंक्षयात् ।
 विप्लवादन्तरायस्य कर्मणोऽनन्तवीर्यता ॥ ७३१ ॥
 चराचरमिदं विश्वं हस्तस्थामलकोपमम् ।
 प्रत्यक्षं भासते तस्य केवलज्ञानभास्वतः ॥ ७३२ ॥
 विशुद्धं दर्शनं ज्ञानं चारित्रं भेदवर्जितम् ।
 प्रव्यक्तं समभूत्तस्य जिनेन्द्रस्यामितद्युतेः ॥ ७३३ ॥
 द्विकलं—

प्रातिहार्याष्टकोपेतः सर्वातिशयभूषितः ।
 मुनिवृन्दैः समाराध्यो देवदेवार्चितक्रमः ॥ ७३४ ॥
 विहरन् सकलां पृथ्वीं भव्यवृन्दान् विबोधयन् ।
 कुर्वन् धर्मामृतासारं राजते देवसंसदि ॥ ७३५ ॥
 कतिचिद्दिनशेषायुर्निष्ठाप्य योगवैभवम् ।
 अन्तर्मुहूर्तशेषायुस्तृतीयं ध्यानमर्हति ॥ ७३६ ॥

पण्मासायुस्थितेरन्ते यस्य स्यात्केवलोद्गमः ।
 करोत्यसौ समुद्रातमन्ये कुर्वन्ति वा न वा ॥ ७३७ ॥
 यस्यास्त्यघातिनां मध्ये किञ्चिन्न्यूनायुषः स्थितिः ।
 तत्समीकरणावाप्त्यै समुद्राताय चेष्टते ॥ ७३८ ॥
 दण्डाकारं कपाटात्म्यं प्रतरात्म्यं ततो जगत्—
 पूरणं कुरुते साक्षाच्चतुर्भिः समयैर्द्रुतं ॥ ७३९ ॥
 युगलं—

एवमात्मप्रदेशानां प्रसारणविधानतः ।
 आयुःसमानि कर्माणि कृत्वा शेषाणि तत्क्षणे ॥ ७४० ॥
 ततो निवर्तते तद्वल्लोकपूरणतः क्रमात् ।
 चतुर्भिः समयैरेव निर्विकल्पस्वभावतः ॥ ७४१ ॥
 समुद्रातस्य तस्याद्येऽष्टमे वा समये मुनिः ।
 औदारिकाङ्गयोगः स्याद्द्विपट्टसप्तकेषु तु ॥ ७४२ ॥
 मिश्रौदारिकयोगी च तृतीयाद्येषु तु त्रिषु ।
 समयेष्वेककर्माङ्गधरोऽनाहारकश्च सः ॥ ७४३ ॥
 समुद्रातान्निवृत्तोऽथ शुक्लध्यानं तृतीयकम् ।
 सूक्ष्मक्रियं प्रपातित्ववर्जितं ध्यायति क्षणं ॥ ७४४ ॥
 ध्यातुं विचेष्टते तस्माच्छुक्लध्यानं तृतीयकम् ।
 सूक्ष्मक्रियाभिधं शुद्धं प्रतिपातित्ववर्जितम् ॥ ७४५ ॥

१ पण्मासायुषि शेषे संवृता ये जिनाः प्रकर्षण ।

ते यान्ति समुद्रातं शेषा भाज्याः समुद्राते ॥ १ ॥

२-७४२-४३-४४ एतच्छ्लोकत्रयं ख-पुस्तके नास्ति ।

३ तृतीयचतुर्थपंचमेषु त्रिषु समयेषु कामेगकाययोगी ।

आत्मस्पन्दात्मयोगानां क्रिया सूक्ष्माऽनिवर्तिका ।
 यस्मिन् प्रजायते साक्षात्सूक्ष्मक्रियानिवर्तकम् ॥ ७४६ ॥
 वादरकाययोगेऽस्मिन् स्थितिं कृत्वा स्वभावतः ।
 सूक्ष्मीकरोति वाक्चिच्चयोगयुग्मं स वादरम् ॥ ७४७ ॥
 त्यक्त्वा स्थूलं वपुर्योगं सूक्ष्मवाक्चिच्चयोः स्थितिम् ।
 कृत्वा नयति सूक्ष्मत्वं काययोगं च वादरम् ॥ ७४८ ॥
 स सूक्ष्मे काययोगेऽथ स्थितिं कृत्वा पुनः क्षणम् ।
 निग्रहं कुरुते सद्यः सूक्ष्मवाक्चिच्चयोगयोः ॥ ७४९ ॥
 ततः सूक्ष्मे वपुर्योगे स्थितिं कृत्वा क्षणं हि सः ।
 सूक्ष्मक्रियं निर्जात्मानं चिद्रूपं चिन्तयेज्जिनः ॥ ७५० ॥
 ध्यानध्येयादिसंकल्पैर्विहीनस्यापि योगिनः ।
 विकल्पातीतभावेन प्रस्फुरत्यात्मभावना ॥ ७५१ ॥
 अन्ते तद्द्व्यानसामर्थ्याद्द्वपुर्योगे स सूक्ष्मके ।
 तिष्ठन्नुर्ध्वास्पदं शीघ्रं योगातीतं समाश्रयेत् ॥ ७५२ ॥
 इति त्रयोदशं सयोगिगुणस्थानम् ।

अथायोगिगुणस्थाने तिष्ठतोऽस्य जिनेशिनः ।
 लघुपंचाक्षरोच्चारप्रमितावस्थितिर्भवेत् ॥ ७५३ ॥
 तत्रानिवृत्तिशब्दान्तं समुच्छिन्नक्रियात्मकम् ।
 चतुर्थं वर्तते ध्यानमयोगिपरमेष्ठिनः ॥ ७५४ ॥
 समुच्छिन्नक्रिया यत्र सूक्ष्मयोगात्मिका यतः ।
 समुच्छिन्नक्रियं प्रोक्तं तद्द्वारं मुक्तिसन्नतः ॥ ७५५ ॥

देहास्तित्वेऽस्त्ययोगित्वं कथं तद्घटते प्रभोः ।

देहाभावे कथं ध्यानं दुर्वटं घटते कथम् ॥ ७५६ ॥

द्विकलं—

अतिसूक्ष्मशरीरस्य ह्युपान्त्यसमयावधेः ।

कायकार्यस्य सूक्ष्मस्य स्वशक्तिविगतात्मनः ॥ ७५७ ॥

अत्यन्तस्वल्पकालेन भाविप्रक्षयसंस्थितेः ।

अकिञ्चित्करसामर्थ्यात्तस्माद्योगिता मता ॥ ७५८ ॥

तच्छरीराश्रयाद्द्वयानमस्तीति न विरुद्ध्यते ।

निजशुद्धात्मचिद्रूपनिर्भरानन्दशालिनः ॥ ७५९ ॥

आत्मानमात्मनात्मैव ध्याता ध्यायति तत्त्वतः ।

उपचारस्तदान्यो हि व्यवहारनयाश्रयः ॥ ७६० ॥

उपान्त्यसमये तत्र तच्छुद्धात्मप्रचिन्तनात् ।

द्वासप्ततिर्विलीयन्ते कर्माण्येतान्ययोगिनः ॥ ७६१ ॥

देहवन्धनसंवाताः प्रत्येकं पंच पंच च ।

आङ्गोपाङ्गत्रयं चैव पट्टकं संस्थानसंज्ञकम् ॥ ७६२ ॥

वर्णाः पंच रसाः पंच पट्टकं संहननात्मकम् ।

स्पर्शाष्टकं च गन्धौ द्वौ नीचानादेयदुर्भगम् ॥ ७६३ ॥

तथागुरुलघुत्वाख्यमुपधातोऽन्यथा ततः ।

निर्माणमपर्याप्तमुच्छ्वासस्त्वयशस्तथा ॥ ७६४ ॥

विहायगमनद्वन्द्वं शुभस्थैर्यद्वयं पृथक् ।

गतिर्देव्यानुपूर्वी च प्रत्येकं च स्वरद्वयम् ॥ ७६५ ॥

वेद्यमेकतरं चेति कर्मप्रकृतयः स्मृताः ।
 स्वामिनो विघ्नकारिण्यो मुक्तिकान्तासमागमे ॥ ७६६ ॥
 अन्ते ह्येकतरं वेद्यसादेयत्वं च पूर्णता ।
 त्रसत्वं दादरत्वं च मनुष्यायुश्च सद्यशः ॥ ७६७ ॥
 नृगतिश्चानुपूर्वी च सौभाग्यमुच्चगोत्रता ।
 पंचाक्षं च तथा तीर्थकृन्नामेति त्रयोदश ॥ ७६८ ॥
 क्षयं नीत्वाथ लोकान्तं यावत्प्रयाति तत्क्षणे ।
 ऊर्ध्वगतिस्वभावत्वाद्द्वर्मद्रव्यसहायतः ॥ ७६९ ॥
 इत्येवं लब्धसिद्धत्वपर्यायाः परमेष्ठिनः ।
 मुक्तिकान्ताधनाश्लेषसुखास्वादनलालसाः ॥ ७७० ॥
 गतिसिक्थकमूपाया आकारेणोपलक्षिताः ।
 किञ्चित्पूर्वागतौ न्यूनाः सर्वाङ्गेषु घनत्वतः ॥ ७७१ ॥
 ऊर्ध्वाभूता वसन्त्येते तनुवातान्तमस्तकाः ।
 अभावाद्द्वर्मद्रव्यस्य परतो गतिवर्जिताः ॥ ७७२ ॥
 ज्ञातारोऽखिलतत्वानां दृष्टारश्चैकहेलया ।
 गुणपर्याययुक्तानां त्रैलोक्योदरवर्तिनाम् ॥ ७७३ ॥
 विशुद्धा निश्चला नित्याः सम्यक्त्वाद्यष्टभिर्गुणैः ।
 लोकमूर्ध्नि विराजन्ते सिद्धास्तेभ्यो नमो नमः ॥ ७७४ ॥
 चक्रिणामहमिन्द्राणां त्रैकाल्यं यन्मुखं परम् ।
 तदनन्तगुणं तेषां सिद्धानां समतात्मकम् ॥ ७७५ ॥
 यद्द्वयेयं यच्च कर्तव्यं यच्च साध्यं सुदुर्लभम् ।
 चिदानन्दमयज्योतिर्जातास्ते तत्पदं स्वयम् ॥ ७७६ ॥

श्री-श्रुतमुनि-विरचिता

भाव-त्रिभङ्गी ।



भावसंग्रहापरनामा ।

(संदृष्टि-सहिता)

खविदघणघाङ्कम्मे अरहंते सुविदिदत्थणिवहे य ।

सिद्धदृगुणे सिद्धे रयणत्तयसाहगे थुवे साहू ॥ १ ॥

क्षपितघनघातिकर्मणोऽर्हतः सुविदितार्थनिवहांश्च ।

सिद्धाष्टगुणान् सिद्धान् रत्नत्रयसाधकान् स्तौमि साधून् ॥

इदि वंदिय पंचगुरू सरूवसिद्धत्थ भवियवोहत्थं ।

सुत्तुत्तं मूलुत्तरभावसरूवं पवक्खामि ॥ २ ॥

इति वन्दित्वा पंचगुरून् स्वरूपसिद्धार्थं भविकवोधार्थं ।

सूत्रोक्तं मूलोत्तरभावस्वरूपं प्रवक्ष्यामि ॥

णाणावरणचउण्हं खओवसमदो हवंति चउणाणा ।

पणणाणावरणीएखयदो दु हवेइ केवलं णाणं ॥ ३ ॥

ज्ञानावरणचतुर्णां क्षयोपशंमतो भवन्ति चतुर्ज्ञानानि ।

पंचज्ञानावरणीयक्षयतस्तु भवति केवलं ज्ञानं ॥

मिच्छत्तणउदयादो जीवाणं होदि कुमति कुमुदं च ।

वेभंगो अण्णाणति सण्णाणतियेव णियमेण ॥ ४ ॥

मिथ्यात्वानोदयाज्जीवानां भवति कुमतिः कुश्रुतं च ।

विभंगः अज्ञानत्रिकं सज्ज्ञानत्रिकमेव नियमेन ॥

दंसणवरणक्खयदो केवलदंसण सुणामभावो हु ।

चक्खुदंसणपमुहावरणीयखओवसमदो य ॥ ५ ॥

दर्शनावरणक्षयतः केवलदर्शनं सुनामभावो हि ।

चक्षुर्दर्शनप्रमुखावरणीयक्षयोपशमतश्च ॥

चक्खुअचक्खूओहीदंसणभावा हवंति णियमेण ।

पणविग्घक्खयजादा खाइयदाणादिपणभावा ॥ ६ ॥

चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनभावा भवन्ति नियमेन ।

पंचविघ्नक्षयजाताः क्षायिकदानादिपंचभावाः ॥

खाओवसमियभावो दाणं लाहं च भोगमुवभोगं ।

वीरियमेदे णेया पणविग्घखओवसमजादा ॥ ७ ॥

क्षायोपशमिकभावो दानं लाभश्च भोग उपभोगः ।

वीर्यमेते ज्ञेया पंचविघ्नक्षयोपशमजाताः ॥

दंसणमोहंति हवे मिच्छं मिस्सत्त सम्मपयडित्ती ।

अणकोहादी एदा णिदिट्ठा सत्तपयडीओ ॥ ८ ॥

दर्शनमोहमिति भवेत् मिथ्यात्वं मिश्रत्वं सम्यक्त्वप्रकृ-

तिरिति । अनक्रोधादय एता निर्दिष्टाः सत्कृतप्रकृतयः ॥

सतण्हं उवसमदो उवसमसम्मो खयादु खइयो य ।

छक्कुवसमदो सम्मत्तुदयादो वेदगं सम्मं ॥ ९ ॥

सप्तानामुपशमत उपशमसम्यक्त्वं क्षयाक्षाधिकं च ।

पद्कोपशमतः सम्यक्त्वोदयात् वेदकं सम्यक्त्वं ॥

चारित्तमोहणीए उवसमदो होदि उवसमं चरणं ।

खयदो खइयं चरणं खओवसमदो सरागचारित्तं ॥ १० ॥

चरित्रमोहनीयस्य उपशमतः भवत्युपशमं चरणं । १
 क्षयतः क्षायिकं चरणं क्षयोपशमतः सरागचारित्रं ॥
 आदिमकसायवारसखओवसम संजलणणोकसायाण ।
 उदयेण (य) जं चरणं सरागचारित्त तं जाण ॥ ११ ॥
 आदिमकप्रायद्वादशक्षयोपशमेन संज्वलननोकपायाणां ।
 उदयेन 'च' यच्चरणं सरागचारित्रं तज्जानीहि ॥
 मज्झिमकसायअडउवसमे हु संजलणणोकसायाणं ।
 खइउवसमदो होदि हु तं चेव सरागचारित्तं ॥ १२ ॥
 मध्यमकप्रायाष्टोपशमे हि संज्वलननोकपायाणां ।
 क्षयोपशमतो भवति हि तच्चैव सरागचारित्रं ॥
 जीवदि जीविस्सदि जो हि जीविदो वाहिरेहिं पाणेहिं ।
 अब्भंतरेहिं णियमा सो जीवो तस्स परिणामो ॥ १३ ॥
 जीवति जीविष्यति यो हि जीवितः वाह्यैः प्राणैः ।
 अभ्यन्तरैः नियमात् स जीवस्तस्य परिणामः ॥
 रयणत्तयसिद्धीएऽणंतचउट्टयसरूवगो भविदुं ।
 जुगो जीवो भव्वो तच्चिवरीओ अभव्वो हु ॥ १४ ॥
 रत्नत्रयसिद्धयाऽनन्तचतुष्टयस्वरूपको भवितुं ।
 योग्यो जीवो भव्यः तद्विपरीतोऽभव्यस्तु ॥
 जीवाणं मिच्छुदया अणंउदयादो अतच्चसद्दणं ।
 हवदि हु तं मिच्छत्तं अणंतसंसारकारणं जाणे ॥ १५ ॥
 जीवानां मिध्यात्वोदयादनोदयतोऽतत्वश्रद्धानं ।
 भवति हि तन्मिध्यात्वं अनंतसंसारकारणं जानीहि ॥

अपचक्खाणुदयादो असंजमो पढमचऊगुणद्वाणे ।

पच्चक्खाणुदयादो देसजमो होदि देसगुणे ॥ १६ ॥

अप्रत्याख्यानोदयात् असंयमः प्रथमचतुर्गुणस्थाने ।

प्रत्याख्यानोदयाद्देशयमो भवति देशगुणे ॥

गदिणामुदयादो(चउ)गदिणामा वेदतिदयउदयादो ।

लिंगत्तयभाव(वो)पुण कसायैजोगप्पवित्तिदो लेस्सा ॥१७॥

गतिनामोदयात् गतिनामा वेदत्रिकोदयात् ।

लिंगत्रयभावः पुनः कषाययोगप्रवृत्तितो लेश्याः ॥

जाव दु केवलणाणस्सुदओ ण हवेदि ताव अण्णाणं ।

कम्माण विप्पमुक्को जाव ण ताव दु असिद्धत्तं ॥ १८ ॥

यावत्तु केवलज्ञानस्योदयो न भवति तावदज्ञानं ।

कर्मणां विप्रमोक्षो यावन्न तावत्तु असिद्धत्वं ॥

कोहादीणुदयादो जीवाणं होंति चउकसाया हु ।

इदि सव्वुत्तरभावुप्पत्तिसरूवं वियाणाहि ॥ १९ ॥

क्रोधादीनामुदयात् जीवानां भवन्ति चतुष्कषाया हि ।

इति सर्वोत्तरभावोत्पत्तिस्वरूपं विजानीहि ॥

उवसमसरागचरियं खइया भावा य णव य मणपज्जं ।

रयणत्तयसंपत्तेसुत्तममणुवेसु होंति खलु ॥ २० ॥

उपशमसरागचारित्रं क्षायिका भावाश्च नव च मनःपर्ययः ।

रत्नत्रयसम्प्राप्तेषु मनुष्येषु भवन्ति खलु ॥

१ नामकदेशे नाम प्रवर्तते इति न्यायादप्रत्याख्यानशब्देनाप्रत्याख्यानान्वर-
णाख्यः कषायः गृह्यते । २ ' जोगपउत्ती लेस्सा कसायउदयाणुरंजिया होइ '
इत्यागमः । ३ उदयः प्रादुर्भावः ।

इति पीठिका-विचारणं ।

भावा खड्यो उवसम मिस्तो पुण पारिणामिओदइओ ।
एदेसं(सिं)भेदा णव दुग अडदस तिण्णि इगिवीसं ॥२१॥

भावाः क्षायिक औपशमिको मिश्रः पुनः पारिणामिक औदयिकः ।
एतेषां भेदा नव द्वौ अष्टादश त्रय एकत्रिंशतिः ॥

कम्मक्खए ह्यु खड्यो भावो कम्मवसमम्मि उवसमियो ।
उदयो जीवस्स गुणो खओवसमिओ हवे भावो ॥ २२ ॥
कर्मक्षये हि क्षयो भावः कर्मोपशमे उपशमकः ।

उदयो जीवस्य गुणः क्षयोपशमको भवेत् भावः ॥

कारणणिरवेक्खभवो सहावियो पारिणामिओ भावो ।
कम्मदयजकम्मगुणो ओदयियो होदि भावो ह्यु ॥ २३ ॥

कारणनिरपेक्षभवः स्वाभाविकः पारिणामिको भावः ।
कर्मोदयजकर्मगुणः औदयिको भवति भावो हि ॥

केवलणाणं दंसण सम्मं चरियं च दाण लाहं च ।
भोगुवभोगवीरियमेदे णव खाइया भावा ॥ २४ ॥

केवलज्ञानं दर्शनं सम्यक्त्वं चारित्रं च दानं लाभश्च ।
भोगोपभोगवीर्यं एते नव क्षायिका भावाः ॥

उवसमसम्मं उवसमचरणं दुण्णेव उवसमा भावा ।
चउणाणं तियदंसणमण्णाणतियं च दाणादी ॥ २५ ॥

उपशमसम्यक्त्वमुपशमचरणं द्वात्रैव उपशमौ भावौ ।
चतुर्ज्ञानं त्रिदर्शनं अज्ञानत्रिकं च दानादयः ॥

वेदग सरागचरियं देसजमं विणवमिम्मभावा ह्यु ।
जीवत्तं भव्वत्तमभव्वत्तं तिण्णि पारिणामोभा ॥ २६ ॥

वेदकं सरागचरितं देशयमं द्विनवमिश्रभावा हि ।

जीवत्वं भव्यत्वमभव्यत्वं त्रयः पारिणामिकाः ॥

ओदइओ खलु भावो गदिलेस्सकसायलिंगमिच्छत्तं ।

अण्णाणमसिद्धत्तं असंजमं चेदि इगिवीसं ॥ २७ ॥

औदयिकः खलु भावो गतिलेस्याकषायलिंगमिध्यात्वं ।

अज्ञानमसिद्धत्वं असंयमश्चेति एकविंशतिः ॥

पंचैव मूलभावा उत्तरभावाः हवंति तेवण्णा ।

एदे सव्वे भावा जीवस्वरूवा सुणेयव्वा ॥ २८ ॥

पंचैव मूलभावा उत्तरभावा भवन्ति त्रिपंचाशत् ।

एते सर्वे भावा जीवस्वरूपा मन्तव्याः ॥

उक्तं च—

मोक्षं कुर्वन्ति मिश्रौपशमिकक्षायिकाभिश्चाः ।

वन्धमौदयिको भावो निष्क्रियाः पारिणामिकाः ॥ १ ॥

वन्धमौक्षौ न कुर्वन्ति (इत्यर्थः) ।

मिच्छतिगज्यदचउक्के उवसमचउगम्हि खवगचउगम्हि ।

वेसु जिणेषु विसुद्धे णायव्वा मूलभावा ह्नु ॥ २९ ॥

मिध्यात्वत्रिकायतचतुष्के उपशमचतुष्के क्षपकचतुष्के ।

द्वयोर्जिनयोः विशुद्धा ज्ञातव्या मूलभावा हि ॥

खविगुवसमगेण विणा सेसतिभावा ह्नु पंच पंचैव ।

उवसमहीणाचउरो मिस्सुवसमहीणतियभावा ॥ ३० ॥

क्षपकोपशकाभ्यां विना शेषत्रिभावा हि पंच पंचैव ।

उपशमहीनाश्चत्वारः मिश्रौपशमहीनत्रिकभावाः ॥

खयिगो ह्नु पारिणामियभावो सिद्धे हवंति णियमेण ।

इत्तो उत्तरभावो कहियं जाणं गुणट्टाणे ॥ ३१ ॥

क्षायिको हि परिणामिकभावः सिद्धे भवतः नियमेन ।

इत उत्तरभावं कथितं जानीहि गुणस्थाने ॥

अयदादिषु सम्मत्तति-सण्णाणतिगोहिदंसणं देसे ।

देसजसो छट्टादिषु सरागचरियं च मणपज्जो ॥ ३२ ॥

अयदादिषु सम्यक्त्वत्रिसज्ज्ञानत्रिकावधिदर्शनं देशे ।

देशयमः पष्ठादिषु सरागचारित्रं च मनःपर्ययः ॥

संते उवसमचरियं खीणे खाइयचरित्त जिण सिद्धे ।

खाइयभावा भणिया सेसं जाणेहि गुणठाणे ॥ ३३ ॥

शान्ते उपशमचरितं क्षीणे क्षायिकचरितं जिने सिद्धे ।

क्षायिकभावा भणिताः शेषं जानीहि गुणस्थाने ॥

ओदइया चक्खुदुगं ऽण्णाणति दाणादिपंच परिणामा ।

तिण्णेव सव्व मिलिदा मिच्छं चउतीसभावा हु ॥ ३४ ॥

औदयिकाः चक्षुर्द्विकं अज्ञानत्रिकं दानादिपंच परिणामाः ।

त्रय एव सर्वे मिलिता मिथ्यात्वे चतुर्द्विशद्भावाः स्फुटं ॥

दुंग तिग णम छ दुग णम ति णम विगं-त्ति दुग दुण्णि-

तेरं च । इगि अट्ठेदो भावस्स ऽजोगिअंतेसु ठाणेषु ॥ ३५ ॥

द्विक-त्रिक-नभः-पट्ट-द्विक-नभः-त्रि-नभः-द्वित्रिक-द्विका-द्वौ-

त्रयोदश च । एकः अष्टौ छेदः भावस्यायोग्यत्वेऽपि स्थानेषु ॥

मिच्छे मिच्छमभव्वं साणे अण्णाणतिदयमयदग्धि ।

क्किण्हादितिण्णि लेस्सा असंजससुरणिरयगदिच्छेदां ३६ ॥

१ परिणामिकाः । २ उक्तसंख्याकमेव चतुर्दशसु गुणस्थानेषु भावानां वस्तु-
च्छेदो ज्ञातव्य इत्यर्थः । ३ अतिद्वित्रिगुणभावात्तत्र द्वौ भावौ सचेदोच्छेदश्च तत्र
वेदभागान्ते त्रयाणां वेदानां चचेदभावात्तत्र त्रयाणां वेदानां त्रयोदशसंख्या-
व्युच्छेदः इत्यर्थः ।

मिथ्यात्वे मिथ्यात्वमभव्यत्वं साणेऽज्ञानत्रितयमयते ।

कृष्णादितिस्रो लेश्याः असंयमसुरनरकगतिच्छेदः ॥

देसगुणे देसजमो तिरियगदी अप्पमत्तगुणठाणे ।

तेऊपम्मालेस्सा वेदगसम्मत्तमिदि जाणे ॥ ३७ ॥

देशगुणे देशयमस्तिर्यग्गतिः अप्रमत्तगुणस्थाने ।

तेजःपद्मलेश्ये वेदकसम्यक्त्वमिति जानीहि ॥

अणियट्टिदुंगदुभागे वेदतियं कोह माण मायं च ।

सुहमे सरागचरियं लोहो संते दु उवसमौ भावा ॥ ३८ ॥

अनिवृत्तिद्विकद्विभागे वेदत्रिकं क्रोधो मानो माया च ।

सूक्ष्मे सरागचारित्रं लोभः शान्ते तु उपशमौ भावौ ॥

स्त्रीणकसाए णाणचउक्कं दंसणतियं च अण्णाणं ।

पण दाणादि सजोगे सुक्कलेसे गवो छेदो ॥ ३९ ॥

क्षीणकपाये ज्ञानचतुष्कं दर्शनत्रिकं चाज्ञानं ।

पंच दानादयः सयोगे शुक्कलेश्याया गतः छेदः ॥

दाणादिचऊ भव्वमसिद्धत्तं मणुयगदि जहक्खादं ।

चारित्तमजोगिजिणे वुच्छेदो हांति भावे दो ॥ ४० ॥

दानादिचतुः भव्यत्वमसिद्धत्वं मनुष्यगतिः यथाख्यातं ।

चारित्रमयोगिजिने व्युच्छेदः भवतः भावौ द्वौ ॥

केवलणाणं दंसणमणंतविरियं च खइयसम्मं च ।

जीवत्तं चेदं पण भावा सिद्धे हवंति फुडं ॥ ४१ ॥

केवलज्ञानं दर्शनमनन्तवीर्यं च क्षायिकसम्यक्त्वं च ।

जीवत्वं चैते पंच भावा सिद्धे भवन्ति स्फुटं ॥

चदुतिगदुगच्छतीसं तिसु इगितीसं च अडडपणवीसं ।

दुगइगिवीसं वीसं चउद्दस तेरस भावा हु ॥ ४२ ॥

चतुस्त्रिकद्विकषट्त्रिंशत् त्रिषु एकात्रिंशच्च अष्टाष्टपंचविंशतिः ।

द्विकैकविंशतिः विंशतिः चतुर्दश त्रयोदश भावा हि ॥

उणइगिवीसं वीसं सत्तरसं तिसु य होंति वावीसं ।

पणपणअट्टावीसं इगदुगतिगणवयतीसतालसमभावा ॥४३॥

एकान्नैकविंशतिः विंशतिः सप्तदश त्रिषु च भवन्ति द्वाविंशतिः

पंचपंचाष्टाविंशतिः एकद्विकत्रिकनवकात्रिंशच्चत्वारिंशद्भावाः ॥

गुणस्थानत्रिभङ्गी समाप्ता ।

सुयमुणिविणमियचलणं अणंतसंसारजलहिमुत्तिण्हं ।

णमिऊण वड्डमाणं भावे वोच्छामि वित्त्यारे ॥ ४४ ॥

श्रुतमुनिविनतचरणं अनन्तसंसारजलधिमुत्तीर्णं ।

नत्वा वर्धमानं भावान् वक्ष्यामि विस्तारे ॥

आदिमणिरए भोगजतिरिए मणुवेसु सग्गदेवेसु ।

वेदग्खाइयसम्मं पज्जत्तापज्जत्तगाणमेव हवे ॥ ४५ ॥

आदिमनरके भोगजतिरश्चि मनुजेपु स्वर्गदेवेपु ।

वेदकक्षायिकसंन्यक्त्वं पर्याप्तापर्यप्तकानामेव भवेत् ॥

पढमुवसमसम्मत्तं पज्जते होदि चादुगदिगाणं ।

विदिउवसमसम्मत्तं णरपज्जत्ते सुरअपज्जत्ते ॥ ४६ ॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वं पर्याप्ते भवति चातुर्गतिकानां ।

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं नरपर्याप्ते सुरापर्याप्ते ॥

सकरपद्भुदीणरये वगजोइसभवणदेवदेवीणं ।

सेसत्थीणं पज्जत्तेसुवसम्मं वेदगं होइ ॥ ४७ ॥

शर्कराप्रभृतिनरके वाणज्यातिष्कभवनदेवदेवीनां ।

शेषस्त्रीणां पर्याप्तेषु उपशमं वेदकं भवति ॥

कम्मभूमिजतिरिक्खे वेदगसम्मत्तसुवसम्मं च हवे ।

सव्वेसिं सण्णीणं अपजत्ते णत्थि वेभंगो ॥ ४८ ॥

कर्मभूमिजतिरश्चि वेदकसम्यक्त्वमुपशमं च भवेत् ।

सर्वेषां संज्ञिनां अपर्याप्ते नास्ति विभंगः ॥

णिरये इयरगदी सुहलेसतिथीपुंससरागदेशजमं ।

मणपज्जवसमचरियं खाइयसम्मूणखाइया ण हवे ॥ ४९ ॥

नरके इतरगतयः शुभलेश्यात्रयस्त्रीपुंससरागदेशयमं ।

मनःपर्ययशमचारित्रं क्षायिकसम्यक्त्वोनक्षायिका न भवन्ति ॥

पढमदुगे कावोदा तदिए कावोदनील तुरिय अइनीला ।

पंचमणिरये नीला क्किण्णा य सेसगे क्किण्हा ॥ ५० ॥

प्रथमद्विके कापोता तृतीये कापोतनीले तुर्येऽतिनीला ।

पंचमनरके नीला कृष्णा च शेषके कृष्णा ॥

विदियादिसु छसु पुढविसु एवं णवरि असंजदट्टाणे ।

खाइयसम्मं णत्थि हु सेसं जाणाहि पुवं व ॥ ५१ ॥

द्वितीयादिषु पट्सु पृथिवीषु एवं णवरि असंयतस्थाने ।

क्षायिकसम्यक्त्वं नास्ति हि शेषं जानीहि पूर्ववत् ॥

सामण्णारयाणमपुणाणं घम्मणारयाणं च ।

वेभंगुवसमसम्मं ण हि सेसअपुण्णगे दु पढमगुणं' ॥५२॥

सामान्यनारकाणामपूर्णां घम्मानारकाणां च ।

वेभंगोपशमसम्यक्त्वं न हि शेषापूर्णेके तु प्रथमगुणस्थानं ।

इति नरक-रचना ।

सांसणठिअऽणाणदुगं असंजदठियकिण्हनीललेसदुगं ।

मिच्छमभंवं च तहा मिच्छाइट्ठिमि बुच्छेदो ॥ ५३ ॥

सासादनस्थिताज्ञानद्विकं असंयतस्थितकृष्णनीललेश्याद्विकं ।

मिथ्यात्वमभव्यत्वं च तथा मिथ्यादृष्टौ व्युच्छेदः ॥

कम्मभूमिजतिरिक्खे अण्णगदीतिदयखाइया भावा ।

मणपज्जवसमचरणं सरागचरियं च णेवत्थि ॥ ५४ ॥

कर्मभूमिजतिरश्चि अन्यगतित्रितयक्षायिका भावाः ।

मनःपर्ययशमचरणं सरागचारित्रं च नैवास्ति ॥

तेसिमपज्जत्ताणं सण्णाणतिगोहिदंसणं च वेभंगं ।

वेदगमुवसमसम्मं देसचरित्तं च णेवत्थि ॥ ५५ ॥

तेषामपर्याप्तानां सज्ज्ञानत्रिकावाधिदर्शनं विभंगः ।

वेदकमुपशमसम्यक्त्वं देशचारित्रं नैवास्ति ॥

१ अस्या अग्नेऽयं पाठः । विद्यादिषु ह्यु पुटवीसु अपञ्जत्तपेरइयाणं मम-
सम्ममिच्छाइट्ठिगुणद्वानभावेसु वेभंगमवणीयं । तं जहा—वंसा जोगं २३ ।
नेषा २४ । अंजणा २३ । अरिहा २४ । मघवीमाघवी जोगं २३ । मव्वत्थ-
मिच्छाइट्ठिगुणद्वानमेगमेव । २ भोगभूमिजतिरिद्धत्तिर्वृत्तपर्याप्तस्य नासादनगुण-
तत्परमतिश्रुताज्ञानद्वयस्य असंयतस्थितकृष्णनीललेश्याद्विकस्य च व्युच्छेदः ।
इत्यस्याः पूर्वार्धनाथाया भावः ।

एवं भोगजतिरिए पुण्णे किण्हतिलेस्सदेसजमं ।

थीसंदं ण हि तेसिं खाइयसम्मत्तमत्थित्ति ॥ ५६ ॥

एवं भोगजतिरश्चि पूर्णे कृष्णत्रिलेइयादेशसंयमं ।

स्त्रीषण्ढं न हि तेषां क्षायिकसम्यक्त्वमस्ताति ॥

णिव्वत्तिअपज्जत्ते अवणिय सुहलेस्स किण्हतिहजुत्ता ।

वेभंगुवसमसम्मं ण हि अयदे अवरकावोदा ॥ ५७ ॥

निर्वृत्यपर्याप्ते अपनीय शुभलेइयाः कृष्णत्रिकयुक्ताः ।

विभंगोपशमसम्यक्त्वं न हि अयते अवरकापोता ॥

लद्धिअपुण्णतिरिक्खे वामगुणट्टाणभावमज्झम्मि ।

थीपुंसिदरगदीतिग सुहतियलेस्सा ण वेभंगो ॥ ५८ ॥

लब्धव्यपूर्णातिराश्चि वामगुणस्थानभावमध्ये ।

स्त्रीपुंसितरगतित्रिकं शुभत्रिकलेइया न विभंगः ॥

भोगजतिरिइत्थीणं अवणिय पुंवेदमित्थिसंजुत्तं ।

तासिं वेदगसम्मं उवसमसम्मं च दो चैव ॥ ५९ ॥

भोगजतिर्यक्स्त्रीणां अपनीय पुंवेदं स्त्रीसंयुक्तं ।

तासां वेदकसम्यक्त्वं उपशमसम्यक्त्वं च द्वे चैव ॥

तासिमपज्जत्तीणं किण्हातियलेस्स हवंति पुण ।

ण सण्णाणतिगं ओही दंसणसम्मत्तजुगलवेभंगं ॥ ६० ॥

तासामपर्याप्तीनां कृष्णत्रिकलेइया भवन्ति पुनः ।

न सज्ज्ञानत्रिकं अवधिदर्शनसम्यक्त्वयुगलविभंगं ॥

मणुवेसिदरगदीतियहीणा भावा हवंति तत्थेव ।

णिव्वत्तिअपज्जत्ते मणदेसुवसमणदुगं ण वेभंगं ॥ ६१ ॥

मनुष्येष्वितरगतित्रिकर्हीना भावा भवन्ति तत्रैव ।

निर्वृत्यपर्याप्तं मनोदेशोपशमनद्विकं न विभंगं ॥

साणे श्रीसंदच्छिर्दा मिच्छे साणे असंजदपमत्ते ।

जोगिगुणे दुगचदुचदुरिगिगीसं णवच्छिर्दा कमसो ॥ ६२ ॥

सासादने स्त्रीपंडच्छित्तिः मिथ्यात्वे सासादने असंयतप्रमत्ते ।

योगिगुणे द्विकचतुःचतुरेकविंशतिः नवच्छित्तिः क्रमशः ॥

लद्धिअपुण्णमणुस्से वामगुणट्टाणभावमज्झिम्मिह ।

थीपुंसिदरगदीतियमुहतियलेस्सा ण वेभंगो ॥ ६३ ॥

लब्धव्यपूर्णमनुष्ये वामगुणस्थानभावमव्ये ।

स्त्रीपुंसितरगतित्रिकशुभत्रिकलेस्या न विभंगं ॥

मणुसुव्व दव्वभापित्थी पुंसंदखाइया भावा ।

उवसमसरागचरणं मणपज्जवणाणमवि णन्थि ॥ ६४ ॥

मनुष्यवदद्रव्यभावस्त्रीषु पुंपण्डक्षायिका भावाः ।

उपशमसरागचरणं मनःपर्ययज्ञानमपि नास्ति ॥

तासिमपज्जत्तीणं वेभंगं णन्थि मिच्छगुणठाणे ।

सासादणगुणठाणे पवट्टणं होदि नियमेष ॥ ६५ ॥

तासामपर्याप्तानां विभंगं नास्ति मिथ्यात्वगुणस्थाने ।

सासादनगुणस्थाने प्रवर्तनं भवति नियमेन ॥

उवसमखाइयसम्मं तियपरिणामा खओवसमिणसु ।

मणपज्जवदेसजमं सरागचरिया ण सेन हवे ॥ ६६ ॥

उपशमक्षायिकसम्बन्धं त्रिकपरिणानाः क्षयं पदामिकेष्टु ।

मनःपर्ययदेशपमं सरागचारित्रं न दोषा भवन्ति ॥

भवनत्रिकसौधर्मद्विके तेजोजघन्यं तु मध्यमं तेजः ।

सनत्कुमारयुगले तेजोवरं पद्मावरं खलु ॥

ब्रह्माच्छक्रे पम्मा सदरदुगे पम्मसुकुलेस्सा हु ।

आणदतेरे सुक्का सुक्कुक्कसा अणुदिसादीसु ॥ ७३ ॥

ब्रह्मपट्के पद्मा सतारद्विके पद्मशुक्लेश्ये हि ।

आनतत्रयोदशसु शुक्ला शुक्लोत्कृष्टा अनुदिशादिषु ॥

पुंवेदो देवाणं देवीणं होदि श्रीवेदं ।

भुवणतिगाण अपुण्णे असुहतिलेस्सेव णियमेण ॥ ७४ ॥

पुंवेदो देवानां देवीनां भवति स्त्रीवेदः ।

भुवनत्रिकानां अपूर्णे अशुभत्रिलेश्या एव नियमेन ॥

कप्पित्थीणमपुण्णे तेउलेस्साए मज्झिमो होदि ।

उभयत्थ ण वेभंगो मिच्छो सासणगुणो होदि ॥ ७५ ॥

कल्पस्त्रीणामपूर्णे तेजोलेश्यायाः मध्यमो भवति ।

उभयत्र न विभंगं मिध्यात्वं सासादनगुणो भवति ॥

सोहम्मादिसु उवरिमगेविज्जंतेसु जाव देवाणं ।

णिव्वत्तिअपुण्णाणं ण विभंग पढमविदियतुरियठाणा ॥ ७६ ॥

सौधर्मादिषु उपरिमग्रैवेयकान्तेषु यावद्देवानां ।

निर्वृत्यपूर्णानां न विभंगं प्रथमद्वितीयतुर्यस्थानानि ॥

अणुदिसु अणुत्तरेसु हि जादा देवा हवंति सद्विद्वी ।

तम्हा मिच्छमभव्वं अण्णाणतिगं च ण हि नेसिं ॥ ७७ ॥

अनुदिशेषु अनुत्तरेषु जाता देवा भवन्ति सदृष्टयः ।

तस्मान्निध्यात्वमभव्यत्वं अज्ञानत्रिकं च न हि तेषां ॥

11-11-11 11:11:11

11

वेगूर्वे नो सन्ति हि मनःपर्ययशमसरागदेशयमाः ।

क्षायिकसम्यक्त्वोनाः क्षायिकभावाश्च तिर्यग्मनुजगती ॥

वेगुच्चं वा मिस्त्रे ण विभंगो किण्हदुगच्छिदी साणे ।

संढं णिरियगदिं पुण तम्हा अवणीय संजदे खयऊ ॥ ८४ ॥

विगूर्ववत् मिश्रे न विभंगं कृष्णाद्विकच्छित्तिः साने ।

पंढं नरकगतिं पुनः तस्मादपनीय असंयते क्षियतु ॥

आहारदुगे होंति ह्य मणुयगदी तह कसायसुहतिलेस्मा ।

पुंवेदमसिद्धत्तं अण्णाणं तिण्णि सण्णाणं ॥ ८५ ॥

आहारद्विके भवन्ति हि मनुष्यगतिः तथा कसायसुभ्रित्तिदयाः ।

पुंवेदो सिद्धत्वं अज्ञानं त्रीणि सम्यग्ज्ञानानि ॥

दाणादियं च दंसणातिदयं वेदगसरागचारिचं ।

खाइयसम्मत्तमभव्व ण परिणामाय भावा ह्यु ॥ ८६ ॥

दानादिकं च दर्शनत्रिकं वेदकसरागचारित्रम् ।

क्षायिकसम्यक्त्वमभव्यत्वं न पारिणामिके भावा हि ॥

कम्मइये णो संति ह्य मणपज्जसरागदेशचारिचं ।

वेभंगुवसमचरणं साणे धीवेदवोच्छेदो ॥ ८७ ॥

कर्मणे नो सन्ति हि मनःपर्ययसरागदेशचारित्रानि ।

विभंगोपशमचरणे साने व्विद्वेषुच्छेदः ॥

विदियगुणे णिरियगदी णन्धि ह्यु ना अन्धि अन्धिदे टाणे ।

दुत्तिउणतीसं णवयं मिच्छादिमु चउमु वोच्छेदो ॥ ८८ ॥

द्वितीयगुणे नरकगतिः नास्ति ह्यु ना अन्धि अन्धिदे टाणे ।

द्वितीयेशाकत्रिसत् नवकं निष्पादित् चहुर्द वुच्छेदः ।

केवलज्ञानं दर्शनं क्षायिकदानादिपंचकं च पुनः ।

कुमतित्रिकं मिथ्यात्वमभव्यत्वं संज्ञानत्रिके नो सन्ति ॥

मणपज्जे मणुवगदी पुवेदसुहतिलेस्सकोहादी ।

अण्णाणमसिद्धत्तं नाणति दंसणति च दाणादी ॥ ९५ ॥

मनःपर्यये मनुष्यगतिः पुवेदशुभत्रिलेश्याक्रोधादयः ।

अज्ञानमसिद्धत्वं ज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं च दानादयः ॥

वेदगखाइयसम्मं उवसमखाइयसरागचारित्तं ।

जीवत्तं भव्वत्तं इदि एदे संति भावा हु ॥ ९६ ॥

वेदकक्षायिकसम्यक्त्वं उपशमक्षायिकसरागचारित्रं ।

जावत्वं भव्यत्वमित्येते सन्ति भावा हि ॥

केवलणाणे खाइयभावा मणुवगदी सुक्कलेस्साइ ।

जीवत्तं भव्वत्तमसिद्धत्तं चेदि चउदसा भावा ॥ ९७ ॥

केवलज्ञाने क्षायिकभावा मनुष्यगतिः शुक्कलेश्या ।

जावत्वं भव्यत्वमसिद्धत्वं चेति चतुर्दश भावाः ॥

ओदइया भावा पुण णाणति दंसणतिथं च दाणादी ।

सम्मत्तति अण्णाणति परिणामति य असंजमे भावा ॥९८॥

औदायिका भावाः पुनः ज्ञानत्रिकं दर्शनत्रिकं च दानादयः ।

सम्यक्त्वत्रिकं अज्ञानत्रिकं पारिणामिकत्रिकं च असंयमे भावाः ॥

देसजमे सुहलेस्सतिवेदतिणरतिरियगदिकमाया हु ।

अण्णाणमसिद्धत्तं णाणतिदंसणतिदंसदाणादी ॥ ९९ ॥

देशयमे शुभलेश्यात्रिवेदत्रिनरकार्तिर्यगतिकमाया हि ।

अज्ञानमसिद्धत्वं ज्ञानत्रिकदर्शनत्रिकदेशदानादयः ॥

जीवत्तं भव्यत्तं सम्मत्तितियं सामाङ्ग्यदुगे एवं ।

तिरियगदिदेशहीणा मणपञ्जवसरागजमसहियं ॥ १०० ॥

जीवत्वं भव्यत्वं सम्यक्वत्रिकं सामायिकद्विके एवं ।

तिर्यगतिदेशहीना मनःपर्ययसरागयमसहिताः ॥

एवं परिहारे मण-पञ्जवथ्रीसंढहीणया एवं ।

सुहमे मणजुद हीणा वेदतिक्रोहतिदयतेयदुगा ॥ १०१ ॥

एवं परिहारे मनःपर्ययस्त्रीषंढहीनका एवं ।

सूक्ष्मे मनोयुक्ता हीना वेदत्रिकक्रोधत्रितयतेजोद्विकाः ॥

जहखाङ्ग्ये वि एदे सरागजमलोहहीणभावा हु ।

उवसमचरणं खाङ्ग्यभावा य हवंति णियमेण ॥ १०२ ॥

यथाख्यातेऽपि एते सरागयमलोभहीनभावा हि ।

उपशमचरणं क्षायिकभावाश्च भवन्ति नियमेन ॥

चक्षुजुगे आलोए खाङ्ग्यसम्मत्तचरणहीणा दु ।

सेसा खाङ्ग्यभावा णो संति हु ओहिदंसणे एवं ॥ १०३ ॥

चक्षुर्युगे आलोके क्षायिकसम्यक्त्वहीनास्तु ।

शेषाः क्षायिकभावा नो सन्ति हि अवधिदर्शने एवं ॥

तेसिं मिच्छमभवं अण्णाणतियं च णत्थि णियमेण ।

केवलदंसण भावा केवलणाणेव णायच्चा ॥ १०४ ॥

तेषां मिथ्यात्वं अभव्यत्वं अज्ञानत्रिकं च नास्ति नियमेन ।

केवलदर्शने भावा केवलज्ञानवत् ज्ञातव्याः ॥

क्लिण्हतिये सुहलेस्सति मणपञ्जुवसमसरागदेशजमं ।

खाङ्ग्यसम्मत्तूणा खाङ्ग्यभावा य णो संति ॥ १०५ ॥

कृष्णात्रिके शुभलेद्यात्रिकमनःपर्ययशमसरागदेशयमाः ।

क्षायिकसम्यक्त्वोनाः क्षायिकभावाश्च नो सन्ति ॥

ण हि णिरयगदी किण्हति सुक्कं उवसमचरित्त तेउदुगे ।
खाइयदंसणणाणं चरित्ताणि हु खइयदाणादी ॥ १०६ ॥

न हि नरगतिः कृष्णत्रिकं शुक्लं उपशमचारित्रं तेजोद्विके ।
क्षायिकदर्शनज्ञानं चारित्रं हि क्षायिकदानादयः ॥

णो संति सुक्कलेस्से णिरयगदी इयरपंचलेस्सा हु ।
भव्वे सव्वे भावा मिच्छट्टाणम्मिह अभव्वस्स ॥ १०७ ॥

नो सन्ति शुक्कलेश्यायां नरकगतिः इतरपंचलेश्या हि ।
भव्ये सर्वे भावा मिध्यदृष्टिस्थाने अभव्यस्य ॥

मिच्छरुचिम्मिह य जी(भा)वा चउतीसा सासणम्मिह व्रत्तीसा ।
मिस्सम्मिह दु तिच्चीसा भावा पुव्वत्तपरिणामा ॥ १०८ ॥

मिथ्यारुचौ च भावा चतुस्त्रिंशत् सासने द्वात्रिंशत् ।
मिश्रे तु त्रयस्त्रिंशत् भावाः पूर्वोक्तपरिणामाः ॥

मिच्छमभव्वं वेदगमणाणतियं च खाइया भावा ।
ण हि उवसमसम्मत्ते सेसा भावा हवंति तहिं ॥ १०९ ॥

मिध्यात्वमभव्यं वेदकमज्ञानत्रिकं च क्षायिका भावाः ।
न हि उपशमसम्यक्त्वे शेषा भावा भवन्ति तत्र ॥

उवसमभावूपेदे वेदगभावा हवंति एदेसिं ।
अवणिय वेदगमुवसमजमखाइयभावसंजुत्ता ॥ ११० ॥

उपशमभावोना एते वेदकभावा भवन्ति एतेषां ।
अपनीय वेदकं उपशमयमक्षायिकभावसंयुक्ताः ॥

खाइयसम्मत्तेदे भावा ससहम्मि ? केवलं पाणं ।
दंसण खाइयदाणादिया ण हवंति णियसेण ॥ १११ ॥

क्षायिकसम्यक्त्वे एते भावाः संज्ञिनि केवळे ज्ञानं ।
दर्शनं क्षायिकदानादिका न भवन्ति नियमेन ॥

अथ संदृष्टि-रचना ।

गुणस्थान रचना ।

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अपृ.	म.	अ.	वृ.	उप.	धी.	म.	अयो.
२	३	०	६	२	०	३	०	३	३	२	२	१३	१	८
३४	३२	३३	३६	३५	३५	३५	२८	८	२५	२२	२१	२०	१४	१३
१९	२९	२०	२७	२२	२२	२२	२५	२५	२८	३१	३२	३३	३९	४०

सामान्य नरका-रचना नारकापर्याप्त धम्मा अपर्याप्त ।

३३

३१

३१

२९

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	५
२६	२६	२५	२८
७	९	८	५

मि.	अ.
६	३
२५	२५
६	६

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	३
२४	२२	२३	२६
७	९	८	५

मि.	अ.
४	३
२३	२५
६	४

वंशा

मेघा

अंजना

२०

३६

३०

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	३
२४	२२	२३	२५
६	८	७	५

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	४
२५	२३	२४	२६
६	८	७	५

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	३
२४	२२	२३	२५
६	८	७	५

अरिष्टा

मघवी-माघवी

पणारकापर्याप्त

३१

३०

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	४
२५	२३	२४	२६
६	८	७	५

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	३
२४	२२	२३	२५
६	८	७	५

मि.
०
२३
०

कर्मभूमिजतिर्यग्

तदपर्याप्ता

भोगभूमिजतिर्यग्

३८

३०

३३

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.
२	३	०	४	२
३१	२९	३०	३२	२९
७	९	८	६	९

मि.	सा.
२	२
३०	२८
०	२

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	२
२६	२४	२५	२८
७	९	८	५

तदपर्याप्त

ल. अ.

भोगभूमिजतिरश्ची

तदपर्याप्त

३१

२५

३२

२५

मि.	सा.	अ.
२	४	३
२५	२३	२५
६	८	६

मि.
०
२५
०

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	२
२६	२४	२५	२७
६	८	७	५

मि.	सा.
२	२
२५	२३
०	२

मनुष्य-रचना

५०

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	स.	अ.
२	३	०	४	१	०	३	०	३	३	२	२	१३	१	८
३१	२९	३०	३३	३०	३१	३१	२८	२८	२५	२२	२१	२०	१४	१३
१९	२१	२०	१७	२०	१९	१९	२२	२२	२५	२८	२९	३०	३६	३७

निवृत्तिमनुष्य

मनुष्य-स्त्री

म. अपर्याप्तः

अ. म.

२५

३६

२८

२५

मि.	सा.	अ.	प्र.	स.
६	४	४	२१	९
३०	२८	३०	२७	१४
१५	१७	१५	१८	३१

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.
२	३	०	४	१
२९	२७	२८	३०	२७
७	९	८	६	९

मि.	सा.
२	२
२८	२६
०	२

मि.
०
२५
०

भोगभूमिमनुष्य

तदपर्याप्त

भोगभूमिज-स्त्री

त. प.

३३

३१

३२

२५

मि.	सा.	मि.	अ.
६	३	०	१
२६	२४	२५	२८
७	९	८	५

मि.	सा.	अ.
३	४	२
२५	२३	२५
६	८	६

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	१
२६	२४	२५	२७
६	८	७	५

मि.	सा.
२	२
२५	२३
०	०

सामान्यदेव

भवनत्रिकल्पस्त्री

भ. स्त्री. अ.

क. स्त्री. अ.

३३

३०

२५

२३

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	२
२६	२४	२५	२८
७	९	८	५

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	२
२४	२२	२३	२५
६	८	७	५

मि.	सा.
२	२
२५	२३
०	२

मि.	सा.
२	२
२३	२१
०	२

सौधर्मैशानदेव

तदपर्याप्त

सानत्कुमारमाहेन्द्र

तदपर्याप्त

३१

३०

३२

३१

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	२
२४	२२	२३	२६
७	९	८	५

मि.	सा.	अ.
२	२	२
२३	२१	२६
७	९	४

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	२
२५	२३	२४	२७
७	९	८	५

मि.	सा.	अ.
२	२	२
२४	२२	२७
७	९	४

ब्रह्मादिषट्

तदपर्याप्त

शतारसहस्रार

तदपर्याप्त

३१

३०

३२

२९

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	२
२४	२२	२३	२६
७	९	८	५

मि.	सा.	अ.
२	२	२
२३	२१	२६
७	९	४

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	२
२५	२३	२४	२७
७	९	८	५

मि.	सा.	अ.
२	२	२
२२	२०	२४
७	९	४

आनतादिरचना १३, तदपर्याप्त अनु. १४, एकद्वित्रीन्द्रिय, च.

२१

२०

२६

२४

२५

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	२
२४	२२	२३	२६
७	९	८	५

मि.	सा.	अ.
२	२	२
२३	२१	२६
७	९	४

अ.
०
२६
०

मि.	सा.
२	०
२४	२२
०	२

मि.	सा.
२	०
२५	२३
०	२

पंचेन्द्रियेषु त्रसकायेषु च

पृ. अ. व.

५३

२४

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	म.	अ.
२	३	०	६	२	०	३	०	३	३	२	२	१३	१	८
३४	२२	२३	३६	३५	३५	३५	३५	२८	२८	२५	२२	२१	२०	१४
१५	२१	२०	१७	२२	२२	२२	२५	२५	२८	३१	३२	३३	३५	४०

मि.	सा.
२	२
२४	२२
०	२

ते. दा.

औदारिककाययोगेषु

२४

५१

मि.
२
२४
०

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	म.
२	३	०	४	२	०	३	०	३	३	२	२	१३	९
२२	२०	२१	३४	३५	३५	३५	३५	२८	२८	२५	२२	२१	२०
१५	२१	२०	१७	२०	२०	२०	२३	२३	२६	२०	३०	३१	३५

औदारिक-मिश्र

वैक्यिक-योग

तदपर्याप्त आ० योग ।

४५

३९

३८

२७

मि.	सा.	अ.	स.
२	४	२५	९
३१	२९	३१	१४
१४	१६	१४	३१

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	६
३२	३०	३१	३४
७	९	८	५

मि.	सा.	अ.
२	४	०
३१	२७	३२
७	११	६

प्र.
६
२७
०

कार्मणयोग.

सत्यानुभय-मनोवचन ।

४८

५१

मि.	सा.	अ.	स.
२	३	२९	९
३३	३०	३५	१४
१५	१८	१३	३४

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	स.
२	३	०	६	२	०	३	०	३	३	२	२	१३	९
३४	३२	३३	३६	३१	३१	३१	२८	२८	२५	२२	२१	२०	१४
१९	२१	२०	१७	२२	२२	२२	२५	२५	२८	३१	३२	३३	३९

असत्योभयमनोवचन ।

४६

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.
२	३	०	६	२	०	३	०	३	३	१	२	१३
३४	३२	३३	३६	३१	३१	३१	२८	२८	२५	२२	२१	२०
१२	१४	१३	१०	१५	१५	१५	१८	१८	२१	२४	२५	२६

ध्रुवेदरचना ।

४९

मि.	सा.	मि.	अ.	द.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.
२	३	०	५	२	०	३	०	१	३
१	२९	३०	३३	२९	२९	२९	२६	२६	२५
१०	१२	२१	८	१२	१२	१२	१५	१५	१६

स्त्रीवेदरचना ।

४०

मि.	सा.	मि.	अ.	द.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.
२	३	०	५	२	०	३	०	१	३
३१	२९	३०	३३	२९	२८	२८	२५	२५	२४
९	११	१०	७	११	१२	१२	१५	१५	१६

नपुंसकवेदरचना ।

४०

मि.	सा.	मि.	अ.	द.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.
२	३	०	५	२	०	३	०	१	३
३१	२९	३०	३३	२९	२८	२८	२५	२५	२४
९	११	१०	७	११	१२	१२	१५	१५	१६

क्रोधमानमायारचना ।

४०

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.
२	३	०	६	२	०	३	०	३	१
३१	२९	३०	३३	२८	२८	२८	२५	२५	२२
९	११	१०	७	११	१२	१२	१५	१५	१६

लोभरचना ।

४१

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.	सू.
२	३	०	६	२	०	३	०	३	०	२
३१	२९	३०	३३	२८	२८	२८	२५	२५	२२	२२
१०	१२	११	८	१३	१३	१३	१६	१६	१९	१९

अज्ञानत्रय

३४

मि.	सा.
२	३
३४	३२
०	२

सम्यग्ज्ञानत्रय

४१

अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.
६	२	०	३	०	३	३	२	२	१३
३६	३१	३१	३१	२८	२८	२५	२२	२१	२०
५	१०	१०	१०	१३	१३	१६	१९	२०	२१

मनःपर्यय

३०

केवल

१४

असंयम

४१

देश

३१

प्र	अ	अ.	अ.	म.	सू.	उ.	क्षी.
०	३	०	१	३	२	१	१३
२८	२८	२५	२५	२४	२१	२०	२०
२	२	५	५	६	९	१०	१०

स.	अ.
१	०
१४	१३
०	१

मि.	सा.	मि.	अ.
२	३	०	६
३४	३२	३३	३३
७	९	८	५

दे.
०
३१
०

सामायिक छे० परिहार सूक्ष्म० यथाख्यात

३१

२८

२२

२९

प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.
०	३	०	३	३
३१	३१	२८	२८	२५
०	०	३	३	६

प्र.	अ.
०	३
२८	२८
०	०

सू.
०
२२
०

उ.	क्षी.	स.	अ.
२	१३	१	८
२१	२०	१४	१३
८	९	५	१६

चक्षुरचक्षुदर्शन

४६

सि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.
२	३	०	६	२	०	३	०	३	३	२	२	१३
३४	३२	३३	३६	३१	३१	३१	२८	२८	२५	२२	२१	२०
१२	१४	१३	१०	१५	१५	१५	१८	१८	२१	२४	२५	२६

अवधिदर्शन

४१

केवलदर्शन

१४

अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.
६	२	०	३	०	३	३	२	२	१३
३६	३१	३१	३१	२८	२८	२५	२२	२१	२०
५	१०	१०	१०	१३	१३	१६	१९	२०	२१

सू.	अ.
१	८
१४	१३
०	१

कृष्णत्रय

३८

मि.	सा.	मि.	अ.
२	४	०	५
३१	२९	२९	३२
७	९	९	६

पीतपद्म

३९

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.
२	३	०	२	२	०	३
२९	२७	२८	३१	३०	३०	३०
१०	१२	११	८	९	९	९

शुक्ललेश्या

४७

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	स.
२	३	०	२	२	०	१	०	३	३	२	२	१३	९
२८	२६	२७	३०	२९	२९	२८	२८	२५	२२	२१	२०	१४	१४
१९	२१	२०	१७	१८	१८	१९	१९	२२	२५	२६	२७	३३	३३

भव्य

५३

अभव्य

३४

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	स.	अ.
२	३	०	६	२	०	३	०	३	३	२	२	१३	१	८
३४	३२	३३	३६	३१	३१	३१	२८	२८	२५	२२	२१	२०	१४	१३
१९	२१	२०	१७	२२	२२	२२	२५	२५	२८	३१	३२	३३	३९	४०

मि.
०
३४
०

मि. सा. मि.

३४ ३२ ३२

उपशम

३८

मि.	सा.	मि.
०	०	०
३४	३२	३३
०	०	०

अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.
६	२	०	२	०	३	३	२
३४	२९	२९	२९	२७	२४	२१	२०
४	९	९	९	११	१४	१७	१८

वेदक
३७

अ.	दे.	प्र.	अ.
६	२	०	३
३४	२९	२९	२९
३	८	८	८

धायिक
४६

अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.	मू.	उ.	क्षी.	स.	अ.
६	२	०	२	०	३	३	२	१	१३	१	८
३४	२९	२९	२९	२७	२७	२४	२१	२०	२०	१४	१३
१२	१७	१७	१७	१९	१९	२२	२५	२६	२६	३२	३३

संक्षिरचना.
४६

असंक्षिर.
२७

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.	मू.	उ.	क्षी.
२	३	०	६	२	०	३	०	३	३	२	२	१३
३४	२९	३३	३६	३१	३१	३१	२८	२८	२५	२२	२१	२०
१२	१४	१३	१०	१५	१५	१५	१८	१८	२१	२४	२५	२६

मि.	सा.
२	२
२७	२५
०	२

आहारकरचना.
३३

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.	मू.	उ.	क्षी.	म.
२	३	०	६	२	०	३	०	३	३	२	२	१३	१
३४	२९	३३	३६	३१	३१	३१	२८	२८	२५	२२	२१	२०	१४
१२	१४	१३	१०	१५	१५	१५	१८	१८	२१	२४	२५	२६	३२

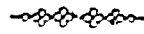
अनाहरक.
४६

मि.	सा.	अ.	म.
२	३	२९	९
३३	२०	३५	१६
१५	१८	१३	३४

इति संक्षेप रचना समाप्तः ।

इति भाव-त्रिभङ्गी समाप्ता ।

श्री-श्रुतमुनि-विरचिता
आस्रव-त्रिभङ्गी ।



संवाष्टि-साहिना ।

पणमिय सुरेदपूजियपयकमलं वडूमाणममलगुणं ।

पचयसत्तावण्णं वोच्छे हं गुणह भवियजणा ॥ १ ॥

प्रणव्य सुरेन्द्रपूजितपदकमलं कर्ममानं उभयगुणं ।

प्रत्ययसप्तपंचाशत् वक्ष्येऽहं नृश्रुत भव्यवनाः ! ॥

मिच्छत्तं अविरमणं कमाय जोगा य आमवा होंति ।

पण चारस पणवीसा पण्णग्ना होंति तवभेया ॥ २ ॥

मिध्यात्वमविरमणं कमाया योगाश्च आन्ववा भवन्ति ।

पंच द्वादश पंचविंशतिः पंचदश भवन्ति तद्भेदाः ॥

मिच्छोदयेण मिच्छत्तमसहृषं तु तच्चअव्ययं ।

एयंतं विवरीयं दिणयं संनयिदमग्गारं ॥ ३ ॥

मिध्यात्वोदयेन मिध्यात्वमसहृषं तु तच्चअव्ययं ।

एकान्तं विवरीयं दिणयं संनयित्तमग्गारं ॥

छस्सिदिणसुअविदी छस्सिदि तह य अविदी चेष ।

इंदियसाणासंजम दुदसं होदिचि सिदिदिं ॥ ४ ॥

अणमप्पच्चक्खाणं पच्चक्खाणं तहेव संजलणं ।
कोहो माणो माया लोहो सोलस कसायेदे ॥ ५ ॥

अनमप्रत्याख्यानः प्रत्याख्यानः तथैव संज्वलनः ।

क्रोधोऽमानोऽमाया लोभः षोडश कषाया एते ॥

हस्स रदि अरदि सोयं भयं जुगंछा य इत्थिपुंवेयं ।
संढं वेयं च तहा णव एदे णोकसाया य ॥ ६ ॥

हास्यं रतिः अरतिः शोकः भयं जुगुप्सा च स्त्री-पुंवेदौ ।

पंढो वेदः च तथा नवैते नोकषायाश्च ॥

मणवयणाण पउत्ती सच्चासच्चुभयअणुभयत्थेसु ।
तण्णामं होदि तदा तेहिं दु जोगा हु तज्जोगा ॥ ७ ॥

मनोवचनानां प्रवृत्तिः सत्यासत्योभयानुभयार्थेषु ।

तन्नाम भवति तदा तैस्तु योगाद्धि तद्योगाः ॥

ओरालं तंमिस्सं वेगुव्वं तस्स मिस्सयं होदि ।
आहारय तंमिस्सं कम्मइयं कायजोगेदे ॥ ८ ॥

औदारिकं तन्मिश्रं वैक्रियिकं तस्य मिश्रकं ।

आहारकं तन्मिश्रं कार्मणकं काययोगा एते ॥

मिच्छे खलु मिच्छत्तं अविरमणं देससंजदो त्ति हवे ।
सुहुमो त्ति कसाया पुणु सजोगिपेरंत जोगा हुं ॥ ९ ॥

१ अनन्तानुबन्धि । २ इति यावदर्थे ।

३ चतुपच्चइगो मिच्छे बंधो पटमे णंतरतिगे तिपच्चइगो ।

मिस्सगविदियं उवरिमदुगं च देसेक्कदेसम्मि ॥ १ ॥

उवरिल्लपंचये पुण दुपच्चया जोगपच्चओ तिण्हं ।

सामण्णपच्चया खलु अट्टण्हं होति कम्मणं ॥ २ ॥

मिध्यात्वे खलु मिध्यात्वं अविरमणं देशसंयतमिति भवेत् ।

सूक्ष्ममिति कप्रायाः पुनः सयोगिपर्यन्तं योगा हि ॥

मिच्छदुग्धविरदृष्टाणे मिस्सदुकम्मइयकायजोगा य ।

छटे हारदु केवल्लिणाहे ओरालमिस्सकम्मइया ॥ १० ॥

मिध्यात्वद्विकाविरतस्थाने मिश्रद्विककर्मणकाययोगाथ ।

पष्टे आहारद्विकं केवल्लिनाथे औदारिकमिश्रकर्मणाः ॥

पंचं चदु सुण्ण सत्त य पण्णर दुग्ध सुण्ण छक्क छक्केयकं ।

सुण्णं चदु सगसंखा पच्चयविच्छित्ति णायव्या ॥ ११ ॥

पंच चतुः शून्यं सप्त च पंचदश द्वौ शून्यं पदकं पदककं एकं ।

शून्यं चतुः सप्तसंख्या प्रत्ययविच्छित्तिः ज्ञानव्या ॥

मिच्छे हारदु सासणसम्मि मिच्छत्तपंचकं णन्थि ।

अण दो मिस्सं कम्मं मिस्से ण चउत्थए सुणह ॥ १२ ॥

मिध्यात्वे आहारकाद्विकं सासादनसम्यक्त्वे मिध्यात्वपंचकं नास्ति ।

अनैः द्वे मिश्रे कर्म मिश्रे न चतुर्थे शृणुत ॥

दो मिस्स कम्म खित्तय तन्नवह वेणुव्व तन्न मिम्मं च ।

ओरालमिस्स कम्ममपच्चवखाणं तु ण हि पंचे ॥ १३ ॥

द्वे मिश्रे कर्म क्षिप, त्रसवधो वैद्विधिकं तस्य मिश्रं च ।

औदारिकमिश्रं कर्माप्रत्याख्यानं ह न द्वि पंचमे ॥

इत्तो उवरिं सगसगविच्छित्तिअणासवाण संजोगे ।
उवस्वरिं गुणठाणे होंतित्ति अणासवा णेया ॥ १४ ॥

इतः उपरि स्वस्वविच्छित्यास्रवाणां संयोगे ।

उपर्युपरि गुणस्थाने भवन्तीति अनास्रवा ज्ञेयाः ॥

मिंच्छे पणमिच्छत्तं साणे अणचारि मिस्सगे सुण्णं ।
अयदे विदियकसाया तसवह वेगुव्वजुगलच्छिदी ॥ १५ ॥

मिथ्यात्वे पंचमिथ्यात्वं, साने अनचतुष्कं मिश्रके, शून्यं, ।

अयते द्वितीयकपायाः त्रसवधवैक्रियिकयुगलच्छित्तिः ॥

अविरयएक्कारह तियचउकसाया पमत्तए णत्थिं ।
अत्थि हु आहारदुगं हारदुगं णत्थि सत्तट्टे ॥ १६ ॥

अविरत्यैकादश तृतीयचतुष्कपायाः प्रमत्तके न संति ।

अस्ति हि आहारद्विकं, आहारद्विकं नास्ति सप्तमे, अष्टमे ॥

छण्णोकसाय णवमे ण हि दसमे संदमहिलपुंवेयं ।
कोहो माणो माया ण हि लोहो णत्थि उवसमे खीणे ॥ १७ ॥

१ अत्र सुखावबोधार्थं केशववर्णिनोक्तं गाथापंचकमुद्ध्रियते—

मिच्छे पणमिच्छत्तं, पढमकसायं तु सासणे, मिस्से ।

सुण्णं, अविरदसम्मे विदियकसायं विगुव्वदुगकम्मं ॥ १ ॥

ओरालमिस्स तसवह णवयं, देसम्मि अविरदेक्कारा ।

तादियकसायं पण्णार, पमत्ताविरदम्मि हारदुग छेदो ॥ २ ॥

सुण्णं पमादरहिदे, पुव्वे छण्णोकसायवोच्छेदो, ।

अणियट्टिम्मि य कमसो एक्केकं वेदतियकसायतियं, ॥ ३ ॥

सुहमे सुहमो लोहो, सुण्णं उवसंतगेषु, खीणेषु ।

अलीयुभयवयणमणचउ, जोगिम्मि ये सुणह वोच्छामि ॥ ४ ॥

सच्चणुभायं वयणं मणं च ओरालकायजोगं च ।

ओरालमिस्सकम्मं उवयारेणेव सबभावो, ॥ ५ ॥

पण्णोकपायाः, नवमे ' नैहि ' दशमे पंडमहिलपुंवेदाः ।

क्रोधो मानो माया ' नैहि ' लोभो, नास्ति उपशमे, क्षीणे ॥

अलियमणवयणमुभयं णत्थि जिणे अन्थि सच्चमणुभयं ।

मिस्सोरालियकम्मं अपच्चयाऽज्जोगिणो होंति ॥ १८ ॥

अर्थाकमनोवचनं उभयं नास्ति, जिने अस्ति सत्यमनुभयं ।

मिश्रौदारिककर्मणा, अप्रत्यया अयोगिनो भवन्ति ॥

पच्चयसत्तावण्णा गणहरदेवेट्ठिं अक्खिया सम्मं ।

ते चउयंधणिमित्ता वंधादो पंचसंसारं ॥ १९ ॥

प्रत्ययसप्तपंचाशत् गणधरदेवैः कथिताः सम्यक् ।

ते चतुर्वन्धनिमित्ताः बन्धतः पंचसंसारं ॥

पणवण्णं पण्णासं तिदाल छादाल नत्ततीमा य ।

चउवीस दुवावीसं सोलसमेसूय जाव पव नत्ता ॥ २० ॥

पंचपंचाशत् पंचाशत् त्रिचत्वारिंशत् पट्चत्वारिंशत् सप्त त्रिंशत् ।

चतुर्विंशतिः द्विहाविंशतिः शोडश एकोनं यावन्व नव ॥

दुग्गं सग चदुरिगिदसयं वीसं त्रियसणदुमद्विचतीसं च ।

इगिग्गअडअडदालं पण्णाना होंति नगवणा ॥ २१ ॥

द्वौ सप्त चतुरेकदशकं विंशतिः त्रिकपंच-द्विसहितत्रिंशच्च ।
एकसप्ताष्टाष्टचत्वारिंशत् पंचाशत् भवन्ति सप्तपंचाशत् ॥

गुणस्थान-रचना ।

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	२	३	४	५	६	सू.	उ.	क्षी.	स.	अ.
५	४	०	७	१५	२	०	६	१	१	१	१	१	१	१	०	४	७	०
५५	५०	४३	४६	३७	२४	२२	२२	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	९	७	०
२	७	१४	११	२०	३३	३५	३५	४१	४०	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४८	५०	५७

तिसु तेरं दस मिस्से सत्तसु णव छट्ठयम्मि एक्कारा ।

जोगिम्हि सत्तजोगा अजोगिठाणं हवे सुण्णं ॥ २२ ॥

त्रिषु त्रयोदश दश मिश्रे सप्तसु नव पष्ठे एकादश ।

योगिनि सप्तयोगा अयोगिस्थानं भवेच्छून्यं ॥

योग-रचना

मि. सा. मि. अ. दे. प्र. अ. अ. अ. सू. उ. क्षी. स. अ.
१३ १३ १० १३ ९ ११ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ७ ०

दुसु दुसु पणइगिवीसं सत्तरसं देससंजदे तत्तो ।

तिसु तेरं णवमे सग सुहमेगं होंति हु कसाया ॥ २३ ॥

द्वैयोः द्वैयोः पंचैकविंशतिः सप्तदश देशसंयते ततः ।

त्रिषु त्रयोदश नवमे सप्त सूक्ष्मे एकः भवन्ति हि कषायाः ॥

कषाय-रचना

मि. सा. मि. अ. दे. प्र. अ. अ. अ. सू.
२५ २५ २१ २१ १७ १३ १३ १३ ७ १

इति गुणस्थान-त्रिभंगी समाप्ता ।

१ प्रथमद्वितीयगुणस्थाने पंचविंशतिः । २ तृतीयचतुर्थगुणस्थाने एकविंशतिः
इत्यर्थः ।

विजितचउघाङ्कस्मे केवलणाणेण णादसयलत्थे ।
वीरजिणे वंदित्ता जहाकमं मग्गणासवं वोच्छे ॥ २४ ॥

विजितचतुर्घातिकर्माणं केवलज्ञानेन ज्ञातसकलार्थं ।
वीरजिनं वन्दित्वा यथाक्रमं मार्गणाग्रामान्त्रवान् वक्ष्ये ॥

मिस्सत्तियकम्मपूणा पुण्णाणं पञ्चया जहाजोगा ।
मणवयणचउ-सरीरत्तयरहिदा पुण्णगे होंति ॥ २५ ॥

मिश्रत्रिककर्मणोनाः पूर्णानां प्रत्यया यथायोग्यः ।
मनोवचनचतुः-शरीरत्रयगतिना अद्भुतके भवन्ति ॥

इत्थीपुंवेददुगं हारोरालियदुगं च वज्जिणा ।
णोरइयाणं पट्ठमे इगिवण्णा पञ्चया होंति ॥ २६ ॥

स्त्रीपुंवेदद्विकं आहरेकौडागिकद्विकं वर्ययिन्त्या ।
नारकाणां प्रथमे एकपञ्चाशत्प्रत्यया भवन्ति ॥

विदियंणुणे णिरसगदि ण यादि इदि तस्स णन्धि कम्मइयं ।
वेगुण्वियमिस्सं च हु ते होंति हु अविग्दे टाणे ॥ २७ ॥

द्वितीयगुणेन नादागति न याति इति तस्मिन् नमित्तं कर्मदं ।
वैद्विषिकमिश्रं च तु तौ भवन्ते हि अविग्दे टाणे ।

सवकारपट्टदिसु एवं अविग्देटाणे ण होइ कम्मइयं ।
वेगुण्वियमिस्सो वि य तेमि निच्छेव वोच्छेदां ॥ २८ ॥

प्रथमनरक-रचना

मि.	सा.	मि.	अ.
५	४	०	८
५१	४४	४०	४२
०	७	११	९

द्वितीयादिनरक-रचना

मि.	सा.	मि.	अ.
७	४	०	६
५१	४४	४०	४०
०	७	११	११

वेगुञ्चाहारदुगं ण होइ तिरियेसु सेसतेवण्णा ।

एवं भोगावणिजे संढ विरहिऊण वावण्णा ॥ २९ ॥

वैक्रियिकाहारद्विकं न भवति तिर्यक्षु शेषत्रिपंचाशत् ।

एवं भोगावनीजेषु षंढं विरह्य द्वापंचाशत् ॥

लद्धिअपुण्णतिरिक्खे हारदु मणवयण अट्ट ओरालं ।

वेगुञ्चदुगं पुंवेदित्थीवेदं ण वादालं ॥ ३० ॥

लब्ध्यपूर्णतिर्यक्षु आहारकद्विकं मनवचनाष्टकं औदारिकं ।

वैक्रियिकाद्विकं पुंवेदस्त्रीवेदौ न द्वाचत्वारिंशत् ॥

कर्मभूमितिर्यग्रचना

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.
५	४	०	७	१५
५३	४८	४२	४४	३७
०	५	११	९	१६

भोगभूमिजतिर्यग्र

मि.	सा.	मि.	अ.
५	४	०	७
५२	४७	४१	४३
०	५	११	९

लब्ध्यपर्याप्त

मि.
०
४२
०

मणुवेसु ण वेगुञ्चदु पणवण्णं संति तत्थ भोगेसु ।

हारदुसंढविवज्जिद दुवण्णऽपुण्णे अपुण्णे वा ॥ ३१ ॥

मनुजेषु न वैक्रियिकद्विकं पंचपंचाशत् सन्ति तत्र भोगेषु ।

आहारद्विकषंढविवाजितं द्विपंचाशत् अपूर्णे अपूर्णे इव ॥

मनुष्य-रचना ।

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	२	३	४	५	६
५	४	०	५	१५	२	०	६	१	१	१	१	१	१
५३	४८	४२	४४	३७	२४	२२	२२	१६	१५	१४	१३	१२	११
२	७	१३	११	१८	३१	३३	३३	३९	४०	४१	४२	४३	४४

भोगजमनुष्य-रचना । अ. र. ।

मू.	उ.	धी.	स.	अ.	मि.	सा.	मि.	अ.	मि.
१	०	४	७	०	५	४	०	७	०
१०	९	९	७	०	५२	४७	४१	४३	४२
४५	४६	४६	४८	५५	०	५	११	९	०

देवे हारोराँलियजुगलं संढं च णत्थि तन्थेव ।

देवाणं देवीणं णेवित्थी णेव पुंवेदो ॥ ३२ ॥

देवेषु आहारकौदारिकयुगले पंढं च नास्ति तत्रैव ।

देवानां देवीनां नैव स्त्री नैव पुंवेदः ॥

भवणतिकप्पिर्त्थीणं असंजदठ्ठाणे ण होइ कम्मइयं ।

वेगुव्वियमिस्सो वि य तेमि पुणु सामणे छेदो ॥३३॥

भवनत्रिकल्पस्त्रीणां असंयतस्थाने न भवति कर्मणं ।

दैन्यापिकमिभ्रमपि च तयोः पुनः ज्ञानादने व्युच्छेदः ॥

एवं उपरि णवपणअणुदिमणुत्तरविभागजादा ज्ञे ।

ते देवा पुणु सग्ग्मा अविरदठ्ठाणुव्व णायव्वा ॥३४॥

एवं उपरि नवपंचानुदिमानुत्तग्ग्भिमानजाता दे ।

भवनत्रि-कल्पस्त्री । सौधर्मादि-त्रैवेयकान्त । अनुदिशानुत्तर

मि.	सा.	मि.	अ.	मि.	सा.	मि.	अ.	अ.
५	६	०	६	५	४	०	८	०
५२	४७	४१	४१	५१	४६	४०	४२	४२
०	५	११	११	०	५	११	९	०

इति गतिमार्गणा समाप्ता ।

पुंवेदित्थिविगुच्वियहारदुमणरसणचदुहि एयक्खे ।

मणचदुवयणचदुहि य रहिदा अडतीस ते भणिदा ॥३५॥

पुंवेदस्त्रीवैक्रियिकाहारकट्टिकमनोरसनाचतुर्भिः एकाक्षे ।

मनचतुर्वचनचतुर्भिश्च रहिता अष्टात्रिंशत्ते भणिताः ॥

एयक्खे जे उत्ता ते कमसो अंतभासरसणेहिं ।

घाणेण य चक्खूहिं य जुत्ता वियलंदि ए णेया ॥३६॥

एकाक्षे ये उक्तास्ते क्रमशः अन्तैर्भाषारसनाभ्यां ।

घ्राणेन च चक्षुर्भ्यां च युक्ता विकलेन्द्रिये ज्ञातव्याः ॥

इगविगलंदि यजणिदे सासणठाणे ण होइ ओरालं ।

इणमणुभयं च वयणं तेसिं मिच्छेव वोच्छेदो ॥ ३७ ॥

एकविकलेन्द्रियजाते सासादनस्थाने न भवति औदारिकं ।

एषामनुभयं च वचनं तयोः मिथ्यात्वे एव व्युच्छेदः ॥

एकेन्द्रिय-रचना । द्वीन्द्रिय-२० । त्रीन्द्रिय-२० । चतुरिन्द्रिय २०

मि.	सा.	मि.	सा.	मि.	सा.	मि.	सा.
६	४	७	४	७	४	७	४
३८	३२	४०	३३	४१	३४	४२	३५
०	६	०	७	०	७	०	७

१ मनोरसनाघ्राणचक्षुःश्रोत्राविरतिभिः । २ अनुभयभाषा । ३ द्वीन्द्रिये अनु-
भयवचनरसनेन्द्रियाभ्यां युक्ताः, त्रीन्द्रिये ताभ्यां सह घ्राणेन सहिताः चतुरिन्द्रिये
तैःसह चक्षुरिन्द्रियेण युक्ताः ।

पंचेन्द्रियजीवाणं तसजीवाणं च पञ्चया सञ्चे ।

पृथ्वीआदिषु पञ्चसु एङ्दिय कहिद अडतीसा ॥ ३८ ॥

पंचेन्द्रियजीवानां तसजीवानां च प्रत्ययाः सर्वे ।

पृथिव्यादिषु पञ्चसु एकेन्द्रिये कथिता अष्टात्रिंशत् ॥

[तसजीव-पंचेन्द्रियजीवरचना गुणस्थानवत् । पृथिव्यवत्तस्वरनिष्काररचना
केन्द्रियकथितप्रथमद्वितीयगुणस्थानवत् । तेजीवानाद्य-रचना (एकेन्द्रिय-
कथित) प्रथमगुणस्थानवत् ।]

हारदुर्गं वज्रित्ता जोगाणं नेर्यागमेगेगं ।

जोगं पुणु पक्खित्ता नेदाला इदरयोग्या ॥ ३९ ॥

आहारद्विकं वर्जयित्वा योगानां प्रयोगानां एकेके ।

योगं पुनः प्रक्षिप्य त्रिचयानिषत् इदमयोग्याः ॥

अस्त्योभयमनोवचन-रचना ।

प.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	३	३	४	४	६	६	६	६	६	६
५	४	०	५	५५	०	०	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
३	३०	३४	३४	३९	५८	५४	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०	६०
६	५	९	९	९८	२९	२९	२९	३५	३६	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०

स्त्यानुभयमनोवचनैर्द्वारिह-रचना ।

ओरालमिस्स साणे संढत्थीणं च वोच्छिदी होदि ।

वेगुव्वमिस्स साणे इत्थीवेदस्स वोच्छेदो ॥ ४० ॥

औदारिकमिश्रस्य सासादने पंढस्त्रियोश्च व्युच्छित्तिः भवति ।

वैक्रियिकमिश्रस्य सासादने स्त्रीवेदस्य व्युच्छेदः ॥

तेसिं साणे संढं णत्थि हु सो होइ अविरदे ठाणे ।

कम्मइए विदियगुणे इत्थीवेदच्छिदी होइ ॥ ४१ ॥

तेषां सासादने पंढं नास्ति हु स भवति अविरते स्थाने ।

कार्मणे द्वितीयगुणे स्त्रीवेदच्छित्तिः भवति ॥

संजलणं पुवेयं हस्सादीणोकसायच्छकं च ।

णियएक्कजोग्गसहिया वारस आहारगे जुम्मे ॥ ४२ ॥

संज्वलनं पुंवेदं हास्यादिनोकषायषट्कं च ।

निजैकयोगसहिता द्वादश आहारके युग्मे ॥

पुंवेदे थीसंढं वज्जित्ता सेसपच्चया होंति ।

इत्थीवेदे हारदु पुंसंढं च वज्जिदा सव्वे ॥ ४३ ॥

पुंवेदे स्त्रीषंढाभ्यां वर्जिता शेषप्रत्यया भवन्ति ।

स्त्रीवेदे आहारद्विकेन पुंषंढाभ्यां च वर्जिता सर्वे ॥

औदारिकमिश्र-रचना । वैक्रियिक-रचना । तन्मिश्र-रचना । आहा०

मि.	सा.	अ.	स.	मि.	सा.	मि.	अ.	मि.	सा.	अ.	प्र.
५	६	३१	१	५	४	०	६	५	५	६	०
४३	३८	३२	१	४३	३८	३४	३४	४३	३७	३३	१२
०	५	११	४२	०	५	९	९	०	६	१०	०

कार्मण-रचना ।

पुंवेद-रचना ।

मि.	सा.	अ.	स.	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	२	३
५	५	३२	१	५	४	०	९	१५	२	०	६	०	०	१
४३	३८	३३	१	५३	४८	४१	४४	३५	२२	२०	२०	१४	१४	१४
०	५	१०	४२	२	७	१४	११	२०	३३	३५	३५	४१	४१	४१

स्त्रीवेद-रचना ।

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	२
५	७	०	६	१५	०	०	६	०	१
५३	४८	४१	४१	३५	२०	२०	२०	१४	१४
०	५	१२	१२	१८	३३	३३	३३	३९	३९

मिस्सदुकम्मइयच्छिदी सांणे संढे ण होइ पुरसिच्छी ।

हारदुगं विदियगुणे ओरालियमिस्स वोच्छेदो ॥ ४४ ॥

मिश्रद्विककर्मणच्छित्तिः सासादने, पंढे न भवतः पुरुषस्त्रियौ ।

आहारद्विकं द्वितीयगुणे औदारिकमिश्रस्य व्युच्छेदः ॥

तेमिं अवणिय वेगुन्वियमिस्स अविरदे हु णिकखेवे ।

क्रोहचउक्के माणादिवारसहीण पणदाला ॥ ४५ ॥

तेपां अपनीय वैक्रियिकमिश्रं अविरते हि निक्षिपेत ।

क्रोधचतुष्के मानादिद्वादशहानिः पंचत्वारिंशत् ॥

नपुंसकवेद-रचना ।

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.
५	५	०	८	१५	०	०	३	१
५३	४७	४१	४३	३५	२०	२०	२०	१४
०	६	१२	१०	१८	३३	३३	३३	३९

क्रोधचतुष्क-रचना ।

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	२	३	४
५	५	०	६	१२	०	०	६	१	१	१	१
४३	३८	३४	३७	३१	२१	१५	१५	१३	१०	१३	१०
०	७	११	८	१४	२४	२३	२३	३३	३३	३८	३५

माण्णादितिये एवं इद्रकसाएहिं विरहिदा जाणे ।
कुमदिकुसुदे ण विज्जदि हारदुगं होंति पणवण्णा ॥ ४६ ॥

मानादित्रिके एवं इतरकपायैः विरहितान् जानीहिं ।

कुमतिकुश्रुतयोः न विद्यते आहारद्विकं भवन्ति पंचपंचाशत् ॥

वेभंगे वावण्णा कमणमिस्सदुगहारदुगहीणा ।

णाणत्तिये अडदालं पणमिच्छाचारिअणरहिदा ॥ ४७ ॥

विभंगे द्विपंचाशत् कार्मणमिश्रद्विकाहारद्विकहीनाः ।

ज्ञानत्रिके अष्टचत्वारिंशत् पंचमिथ्यात्वचतुरनरहिताः ॥

कुमतिकुश्रुत । विभंग ।

मि. सा. मि. सा.

५ ४ ५ ४

५५ ५० ५२ ४७

० ५ ० ५

सज्ज्ञानत्रय-रचना ।

अ. दे. प्र. अ. अ. अ. २ ३ ४ ५ ६ सू. पु. क्षी.

९ १५ २ ० ६ १ १ १ १ १ १ १ ० ४

४६ ३७ २४ २२ २२ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९ ९

२ ११ २४ २६ २६ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ३९

मणपज्जे संढित्थीवज्जिदसगणोकसाय संजलणं ।

आदिमणवजोगजुदा पच्चयवीसं मुणेयव्वा ॥ ४८ ॥

मनःपर्यये षण्ढस्त्रीवर्जितसप्तनोकषायाः संज्वलनाः ।

आदिमनवयोगयुक्ताः प्रत्ययविंशतिः ज्ञातव्या ॥

ओरालं तंमिस्सं कम्मइयं सच्चअणुभयाणं च ।

मणवयणाण चउक्के केवलणाणे सगं जाणे ॥ ४९ ॥

औदारिकं तन्मिश्रं कामणं सत्यानुभवानां च ।

मनोवचनानां चतुष्कं केवलज्ञाने मत्त जानीहि ॥

मनःपर्यय-रचना ।

केवलज्ञाने-रचना ।

प्र.	अ.	अ.	अ.	२	३	४	५	६	मू.	उ.	श्री.	म.	र.
०	०	६	०	०	१	१	१	१	१	०	१	०	०
२०	२०	२०	१४	१४	१४	१३	१२	११	१०	०	९	०	०
०	०	०	६	६	६	७	८	९	१०	११	११	०	०

अष्टमणवयणोरालं हारदृगं षोडशाय संजल्यं ।

सामाध्यच्छेदेसु य चउर्वाया पञ्चया द्वौति ॥ ५० ॥

अष्टमनोवचनौटागिका ध्याताःत्रिंशः संजल्यः सप्तःशतः ।

सामायिकच्छेदयोश्च चतुर्दशभिः प्रथमा संश्लिः ॥

विंशतिः परिहारे संहिन्धीहान्दृगवत्रिया एदे ।

सुक्ष्मे णवआदिमजोगा संजल्यणलोहदुदा ॥ ५१ ॥

विंशतिः परिहारे प्रहस्त्री-आद्यःत्रिंशः संजल्यः प्रथमा ।

सुक्ष्मे नवादिमयोगा संजल्यणलोहदुदा ।

एदे पुण जहरसादे कम्मणओगलनिष्पसंजुता ।

संजल्यणलोहहीणा एणादसपञ्चया पञ्चा ॥ ५२ ॥

आहारयदुगरहिया पणवण्ण असंजमे दु चक्खुदुगे ।

सन्वे णाणतिकहिदा अडदाला ओहिदंसणे णेया ॥ ५४ ॥

आहारकट्टिकरहिताः पंचपंचाशदसंयमे तु, चक्षुर्दिकेः।

सर्वे, ज्ञानत्रिककथिता अष्टचत्वारिंशत् अवधिदर्शने ज्ञेयाः ॥

सामायिक-छेदोपस्थापना ।

परिहार ।

सूक्ष्मसांपराय ।

प्र.	अ.	अ.	अ.	२	३	४	५	६	प्र.	अ.	सू.
२	०	६	१	१	१	१	१	१	०	०	०
२४	२२	२२	१६	१५	१४	१३	१२	११	२०	२०	१०
०	२	२	८	९	१०	११	१२	१३	०	०	०

यथाख्यात चरित्र ।

देशसंयम ।

असंयम-रचना ।

उ.	क्षी.	स.	अ.	दे.	मि.	सा.	मि.	अ.
०	४	७	०	०	५	४	०	९
९	९	७	०	३७	५५	५०	४३	४६
२	२	४	११	०	०	५	१२	९

चक्षुरचक्षुदर्शन ।

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	२	३	४	५	६	सू.	उ.	क्षी.
५	४	०	९	१५	२	०	६	१	१	१	१	१	१	१	०	४
५५	५०	४३	४६	३७	२४	२२	२२	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	९
३	७	१४	११	२०	३३	३५	३५	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४८

[अवधिदर्शन-रचना-अवधिज्ञानवत् ।]

सगजोगपच्चया खलु केवलणाणव्व केवलालोए ।

किण्हतिए पणवण्णं हारदुर्गं वज्जिऊण हव्वे ॥ ५५ ॥

सप्तयोगप्रत्ययाः खलु केवलज्ञानवत् केवलालोके ।

कृष्णत्रिके पंचपंचाशत् आहारद्विकं वर्जयित्वा भवेत् ॥

किण्वदुग्माणे वेगुच्चियमिन्सच्छिदी हवेइ तेउतिए ।

मिच्छदुटाणे ओरालियमिस्सो णत्थि अविरदे अत्थि ॥५६॥

कृष्णद्विकसासादने वैक्रियिकमिश्रच्छित्तिः भवेत् तेजस्त्रिके ।

मिथ्यात्वद्विस्थाने औदारिकमिश्रं नास्ति अविरतेऽस्ति ॥

[केवलदर्शन-रचना केवलज्ञानवत् ।]

कृष्णनील-रचना । कापोतरचना । पीतपद्म-रचना ।

मि. सा. मि. अ.	मि. सा. मि. अ.	मि. सा. मि. अ. दे. प्र. अ.
५ ५ ० ८	५ ८ ० ९	५ ४ ० ९ १५ २ ०
५५ ५० ४३ ४५	५० ५५ ४३ ४६	५४ ४९ ४३ ४६ ३७ २४ २२
० ५ १० १०	० ५ १२ ९	३ ८ १४ ११ २० ३३ ३५

सुहृत्सन्तिये भव्ये नव्येऽभव्ये ण होदि हाग्दुगं ।

पणवणुवसमसम्मे ते मिच्छोरागमिन्सअणरहिदा ॥ ५७ ॥

सुभलेष्यात्रिक भव्ये सर्वे अभव्ये न भवाप्याहागदिकं ।

पंचपंचाशदुपशमस्यवत्त्वे ते मिथ्याऔदारिकमिश्रानगदिताः ॥

[शुक्ललेखा-भव्यसामाना-रचना सुनस्थानवत् ।]

उपशमस्यवत्त्व-रचना ।

वेदक-सम्यक्त्व ।

मिथ्या, सासा, मिश्र ।

अ. दे. प्र. अ.

मि. सा. मि.

९	१५	२	०	[क्षायिक-रचना गुणस्थानवत् ।]	०	०	०
४६	३७	२४	२२		५५	५०	४३
२	११	२४	२६		०	०	०

सण्णिस्स होंति सयला वेगुव्वाहारदुग्मसण्णिस्स ।

चदुमणमादितिवयणं अणिंदियं णत्थि पणदाला ॥ ५९ ॥

संज्ञिनः भवन्ति सकला वैक्रियिकाहरद्विकमसंज्ञिनः ।

चतुर्मनांसि आदित्रिवचनानि अनिन्द्रियं न संति पंचचत्वारिंशत् ॥

संज्ञि-रचना ।

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	२	३	४	५	६	स.	उ.	क्षी.
५	४	०	९	१५	२	०	६	१	१	१	१	१	१	१	०	४
५५	५०	४३	४६	३७	२४	२२	२२	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	९
२	७	१४	११	२०	३३	३५	३५	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४८

असंज्ञि-रचना ।

मि. सा.

८ ४

४५ ३८

० ७

कम्मइयं वज्जित्ता छपण्णासा हवंति आहारे ।

तेदाला णाहारे कम्मइयरजोगपरिहीणा ॥ ६० ॥

कार्मणं वर्जयित्वा पट्टपंचाशद्भवन्त्याहारे ।

त्रिचत्वारिंशदनाहारे कार्मणेतरयोगपरिहीणाः ॥

१ कार्मणं विहाय इतरैः चतुर्दशयोगैर्हाना इत्यर्थः ।

आहारक-रचना ।

मि.	ना.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	२	३	४	५	६	स.	उ.	क्षी.	स.	
५	४	०	७	१५	२	०	६	१	१	१	१	१	१	१	१	०	४	६
५४	४९	४३	४५	३७	२४	२०	२२	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	९	६	
३	७	१३	११	१९	३२	३४	३४	४०	४१	४२	४४	४४	४५	४६	४७	४७	५०	

अनाहारक-रचना ।

मि.	सा.	अ.	स.
५	६	३०	१
४३	३८	३३	१
०	५	१०	१०

इदि मग्गणासु जोगो पच्चयभेदो मया समासेण ।

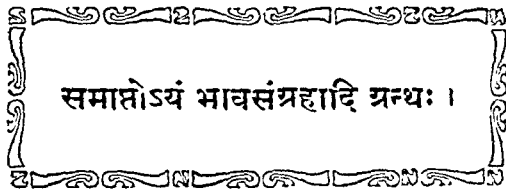
कहिदो सुदसुणिणा जो भावइ नो जाइ अप्पमुहं ॥ ६१ ॥

इति मार्गणासु योग्यः प्रत्ययभेदो मया समासेन ।

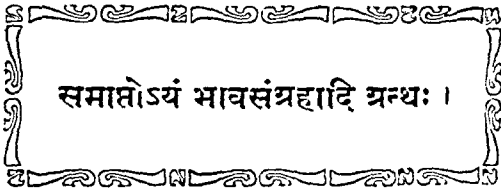
वधितः श्रुतमुनिना यो भावयति स याति आत्ममुखं ॥

पथवमलजुयलविणामियविणयत्तणक्यमुपूयमाहप्पो ।

णिज्जियमयणपहावो नो वालिदो चिरं जयउ ॥ ६२ ॥

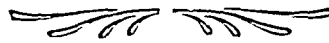


समाप्तोऽयं भावसंग्रहादि ग्रन्थः ।



समाप्तोऽयं भावसंग्रहादि ग्रन्थः ।

प्राकृत-भावसंग्रहस्य वर्णानुक्रमणिका ।



अ	गा० सं०	पृष्ठम्		गा० सं०	पृष्ठम्
अइउत्तमसंहणणो	९९	२७	अमयक्खरे णिवेसउ	४३०	९५
अउदइऊपरिणामिउ	८	३	अल्लिउंविणहिं पुज्जइ	४७३	१०३
अकइयणियाणसम्मो	४०५	९०	अविरयसम्मादिद्वी	३४९	८०
अच्छरतिलोत्तमाए	२१०	५०	” ”	४९८	१०८
अज्ज वि सा वल्लि	१५९	३९	अवि सहइ तत्थ	५८	१८
अज्जावयगुणकुतो	३७८	८५	अल्लिऊण मंसगासं	६९	२०
अट्टज्जाणपउत्तो	३६०	८२	अमुहकम्मसस णासो	३६८	८३
अट्टरउद्दासुडो	१६८	४१	अमुहमुहसस विवाओ	३६९	८३
अट्टरउद्दं झाणं	३५७	८१	अमुहसस कारणेहिं	३९७	८८
अट्टरउद्दं झायइ	२०१	४८	अमुहे अमुहं झाणं	६८५	१४४
अट्टगुणाणं लद्धी	६३८	१३४	अहउट्टुतिरियलोए	३७०	८४
अट्टविहअच्चाणए	४५५	१००	अह एउणवणासे	४६६	१०२
अट्टविहचण काउं	५६९	१०२	अह लुहिकुण मउयरो	२२५	५३
अणिमा महिसा लहि	४१०	९१	अह टिकुलवा ज्ञाणं	३८६	८६
अणुकूलं परियणयं	४१३	९२	अहव सुणंतो छंडइ	६०७	१२८
अण्णकाए गुणदोसे	३६	१०	अहवा एदं वयनं	९६	२७
अण्णम्मि भुंजमाणे	३२	९	अहवा एसो धम्मो	४१	१५
अण्णणधम्मलसो	१८६	४६	अहवा गिणउ सेहा	४३५	९६
अण्णणाओ मोक्खं	१६४	४०	अहवा जइ अम्मन्थो	४६२	१०१
अण्णणि य रइदादं	२५६	६०	अहवा जइ कल	२३१	५६
अण्णं हस णिहुणिल्लर	४६	१३	अहवा जइ कइव	१६९	६१
अण्णं जं हस उत्तं	११६	३१	अहवा जइ भण्ण	२६३	५७
अण्णि जिणायदि वहि	४९	२०२	अहवा जिदं विट्ठं	५८१	१२३
अण्णि हु अणाइभूदो	३३६	७५	अहवा तरणी मरिहा	५८८	१२४
अण्णपदानं पटमं	४८९	१८६	अहवा पल्लिहवणं	५६	९७

गा० सं०	पृष्ठम्	गा० सं०	पृष्ठम्		
अहवा वत्थुसद्वावो	३७३	८४	इय चित्तंतो पसरइ	४१८	९३
अह विक्रिकरिओ रइयो	२२०	५२	इय जाणिकुण णूणं	२४०	५६
अंगे णासं किच्चा	४३६	९६	” ” ”	५८५	१२४
अंतरमुहुत्तकालो	६७८	१४३	इय णाऊण विसेसं	४८७	१०५
अंतरमुहुत्तमज्जे	४०६	९०	इय णाऊं परमप्पा	८३	२४
आ.			इय बहुकालं सग्गे	४२०	९३
आऊचउप्पयारं	३३५	७६	इयरो वित्तरदेवो	१५७	३९
आयमचाए चत्तो	६०८	१२८	इयरो संघाहिवइ	१५४	३८
आयाराइसत्थं	५२४	११२	इय विलवंतो हम्मइ	६१	१८
आलिहउ सिद्धचक्कं	४४३	९७	इय विवरीयं उत्तं	५७	१७
आवरणाण विणासे	६६६	१४१	इय विवरीयं कहियं	६२	१९
आवासयाइं कम्मं	६१०	११८	इय संखेवं कहियं	४४७	९८
आवाहिकुण संघं	१४६	३६	इलयाइथावराणं	३५२	८०
” देवे	४३९	९७	इह लोए पुण मंता	४५७	१००
आसणठाणं किच्चा	४२८	९५	इंदियविसयवियारा	६३०	१३२
आसवइ जं तु कम्मं	३२१	७३	इ.		
आसवइ सुहेण सुहं	३२०	७३	इंहारहिया किरिया	६७१	१४२
आसि उज्जेणियरे	१३८	३५	उ		
आहारमओ देहो	५१९	१११	उग्गतवतवियगतो	३७९	८५
आहारसणे देहो	५२१	११२	उच्चारिकुण मंते	४४१	९७
इ.			उट्टाविकुण देहं	४३४	३६
इत्थीणिहत्थवग्गे	८७	२५	उत्तमकुले महंतो	४२१	९३
इत्थेव तिण्णि भावा	६००	१२७	उत्तमछित्ते वीयं	५०१	१०८
इय अट्टभेयअच्चण	४७८	१०४	उत्तमपत्तं णिंदिय	५५४	११८
इय अण्णाणी पुरिसा	१९०	४६	उत्तमरयणं सु जहा	५०४	१०९
इय उप्पत्ती कहिया	१६०	३९	उदयाभाओ जत्थ	२६८	६७
इय एयंतविणडीओ	७०	२०	उप्पज्जंति मणुस्सा	५३५	११४
इय एयंतं कहियं	७२	२१	उप्पणो कणयमए	४१२	१२

	गा० सं०	पृष्ठम्		गा० सं०	पृष्ठम्
उत्तरंतड उत्तरंतड	२५५	५९	एयं तु दन्वच्छकं	३१६	७२
उवगूहणगुणजुतो	२०३	६५	एरिसगुणअट्टजुयं	२८४	६५
उवयरणं तं गहियं	१९८	३३	एरिसपत्तम्मि वरे	५१२	११०
उववज्जइ दिवलोए	१८३	१०५	एसो अट्टपयारो	२९४	६८
उववासो य अलाभे	१४८	३७	एसो पमत्तविरओ	६१३	१२९
उवसंतखीणमोहो	११	३	एसो पचडीबंधो	३४०	७७
ऊ			एसो सम्मामिच्छो	२५८	६०
ऊसरखित्ते धीयं	५३२	११४	एवं जंतुदारं	४५४	९९
ए.			एवं पाऊण फुडं	१९१	४६
एइंदियाइंपहुइ	१६७	४१	,, ,, ,,	५७७	१२२
एए उत्ते देवे	२५६	६०	एवं पाऊण मया	६०९	१२८
एए जंतुदारं	४७८	१०२	एवं तं मालंबं	३८०	८५
एए णरा पत्तिद्धा	५४०	११५	एवं दुविहो कप्यो	१३२	३४
एए तिण्णि वि भावा	२६०	६१	एवं धम्मउज्जाणं	६३९	१३४
एए विसयासत्ता	१८०	४३	एवं पत्तविसेमं	५५६	११८
एए सत्तपयारा	३४८	७९	एवं पंचपदारं	१६५	२०
एएसिं सत्तण्हं	२६७	६२	एवं भगंति केइ	३९	११
एक्कसमएण दद्धं	३२८	७५	,, ,, ,,	२३५	५५
एक्कं एक्कम्मि खणे	६७३	१४२	,, ,, ,,	२४१	५६
एक्कं पुण संतिणामो	१४१	३५	एवं सिच्छादिट्ठी	१९४	५६
एगो वि अणंताणं	६९३	१४६	एवं वटंताणं	१४५	३६
एण विहाणेण फुडं	४८२	१०५	एव विहिमा जुने	५२९	११३
एदम्मि गुणट्टाणे	६४०	१३५	ओ.		
एयदरस्स न उदए	१९५	४७	ओसद्दामेण परो	४९६	१०६
एयपयमक्खरं वा	२२७	१३२	क.		
एयम्मि गुणट्टाणे	१९६	४७	वउत्तादरियो अक्खइ	१७२	४२
एदारसंगधारी	१२२	३३	वहुवं मण्णइ महुरं	१४	४
एयंतमिच्छदिट्ठी	६३	१९	कत्तिने पुण हुविहं	२९८	५७

गा० सं०	पृष्ठम्		गा० सं०	पृष्ठम्
कम्पूरतेल्लपयलिय	४७५	१०३	किं दहवयणो सीया	२३० ५४
कम्मफलछाइओ	२९७	६८	किं दाणं ज्ञे चिण्णो	४१७ ९३
कयपावो णरयगओ	३४	१०	किं पट्टवेइ देव	२२९ ५४
कलसचउक्कं ठाविय	४३८	९६	किं बहुणा उत्तमिसे	४६१ १०१
कस्स थिरा इह लच्छी	५६०	११९	किं सो रज्जणिमित्तं	२०९ ५०
कहियाणि दिट्ठिवादे	३८३	८६	किं हट्टमुंडमाला	२४७ ५७
कालस्स य अणुहवं	५१३	११०	ख.	
कालेण उवाएण य	३४५	७९	खइएण उवसमेण	६४८ १३७
कालं काठं कोई	६५८	१३९	खयउवसमं च खइयं	२६५ ६२
किच्चा काउस्सगं	४७९	१०४	खयउवसमं पउतं	२६९ ६२
किडि कुम्ममच्छरुवं	४१	१२	खवएसु उवसमेसु	६४३ १३५
किण्णो जइ धरइ जयं	२५४	५३	खवएसु य आहडा	१०७ २९
किविणेण संचियधणं	५५९	११९	खंधेण वहंति णरं	५७१ १२१
कुच्छिगयं जस्सणं	५११	११०	ग.	
कुच्छियगुरुकयसेवा	११८	४६	गम्भाई मरणंतं	१७४ ४२
कुच्छियपत्ते किंचि	५३३	११४	गयरुवं जं क्षेयं	६३२ १३३
कुणइ सराहं कोई	२२	९	गहभूयडायणोओ	४५८ १००
केई गयसीहमुहा	५३८	११५	गिरिणिगउणइवाहो	३१९ ७३
केई पुण गयतुरया	५४४	११६	गिरिसरिसायरदीवो	२०८ ५०
केई पुण दिवलोए	५४५	११६	गिहतखर वरगेहे	५८८ १२४
केई समसरणगया	५९५	१२६	गिहलिगे वटंतो	१०० २८
केवलभुत्ती अरुहे	१०३	२८	गिहवावाररयाणं	३६३ ८२
कोई पमायरहियं	६५७	१३९	गिहवावारविरतो	३९६ ८८
कोहचउकं पढमं	२६६	६२	गुत्तित्तयजुत्तस्स	१०४ २८
को हं इह कस्साओ	४१६	९२	गेहे गेहे भिक्खं	९० २५
कंवलि वत्थं दुद्धिय	११७	३१	गेहे वटंतस्स य	३९१ ८७
किं किंचिवि वेयमयं	५०५	१०९	गोदं कुलालसरिसं	३३७ ७७
किं जं सो गिहवंतो	३८४	८६	गंगाजलं पविट्ठा	२५० ५८

क्र. गा० सं०	पृष्ठम्	गा० सं०	पृष्ठम्	
धरत्रावारा केई	३८५	८६	जइ गिहवंतो सिज्जइ १०२	२८
धाइत्र उक्कविणासे	६६५	१४०	जइ चेषणा अणिचा	६८
च.			जइ जलणहाणपउत्ता	१८
चउविहदाणं उत्तं	५२२	११२	जइ णक्कलो महप्पा	२३८
चत्तं रिसिआयरणं	१४४	३६	जइ तप्पइ उग्गतवं	९२
चंदणमुअधलेओ	४७१	१०३	जइ तिजवपालगत्ये	२३१
चम्पं रुहिरं मसं	४०७	९०	जइ तुप्पं णवणीयं	२५६
चलणं वलणं चिंता	६९७	१४६	जइ ने होति ममत्था	७८
चित्तणिरोंहे षाणं	६१९	१३०	जइ ती वग्गुग्गुओ	२१९
चित्तपडं व विचित्तं	३३६	७७	जइ देवय उइ मुयं	७९
चित्तं विनं पत्तं	५६२	११९	जइ देवो हगिज्जं	४३
चित्तइ किं एवहुं	४१५	९२	जइ पुग्गइ ओ विणरो	४४९
चंडालहंवधीवर	२०६	४९	जइ पुनदिग्गदाणं	३३
चंडालभिह्छिपिय	५४३	११६	जइ फलइ कह वि दाणं	४०२
छ.			जइ वंभो कुग्गइ जयं	२०४
छट्टमए गुणठाणे	६०६	१२८	जइ भग्गइ को वि एवं	३८९
छत्तीसगुणममग्गो	३७७	८५	जइया दहरइपुत्तो	२२६
छत्तीसे वरिससए	१३७	३५	जइ वि सुजायं वीयं	४०१
छट्टव्वणव यत्था	३६७	८३	जइ सग्गंओ सुक्कं	८८
छिज्जइ भिज्जइ	१७८	४३	जइ सव्वदेवयाओ	८२
छंटिय णियवट्टं	२११	५०	जइ संति तस्म दोमा	१०९
ज.			जक्खदणादाइणं	७५
जइ उवरत्थं तिजयं	२२८	५४	जत्थ ण करणं चिंता	६२९
जइ एवं तो पिपरो	३५	१०	जत्थ ण कंडयसंग्गो	१२०
,, ,, ,, इती	९७	२७	जन्हा वंउपहाना	७१
जइ कहइ तत्थ निग्गइ	५९	९८	जम्मि भवे जं देइ	२९५
जइ कह इ हु एयइ	१७१	४१	जरउदेसवअंउय	२०५
जइ खामयत्ता जीवा	६४	१९	जरतो व वाहिवेसण	५९२

गा० सं०	पृष्ठम्	गा० सं०	पृष्ठम्		
जलवरिणसवा याई	१२२	३२	जिणवरसासणमतुलं	५९९	१४७
जस्स गुरु सुरहिसुओ	२५१	५८	जीवकम्माण उहयं	३२४	७४
जस्स ण गया ण चवकं	२७६	६४	जीवपएम्पच्चयं	६२२	१३१
जस्स ण गोरी गंगा	२७६	६३	जीवपएसेक्केक्के	३२५	७४
जस्स ण णहगामितं	६११	१५९	जीवस्स होंति भावा	२	१
जस्स ण तवो ण	५३१	११४	जीवाण पुग्गलाणं	३०६	७०
जह अणियट्टि पउत्तं	६५२	१३८	जीवो अणाइण्चो	२८६	६६
जह कणयमज्जकोद्दव	१५	४	जीवो सया अकत्ता	१७९	४३
जह कोसुंभयवत्थं	६५४	१३८	जे कयकम्मपउत्ता	२७	८
जह गिरिणई तलाए	३९२	८८	जे तियरमणासत्ता	२३	७
जह गुद्धधादइजोए	१७३	५२	जे पुण भूसियगंधा	१३५	३४
जह चिरकालोलग्गइ	६४७	१३६	जे पुणु मिच्छादिद्वी	५९४	१२५
जह जह वड्डइ लच्छी	५६८	१२१	जे संसारी जीवा	४	२
जहजायलिंगधारी	१९२	४७	जेसिं आउसमाणं	६७७	१४३
जह णावा णिच्छिदा	५०९	११०	जेहिं ण दिण्णं दाणं	५६९	१२१
जह णीरं उच्छुगयं	५०३	१०८	जो इंदियाइं दंडइ	१७६	४३
जह तं अउव्वणामं	६४५	१३७	जो उवसमइ कसाए	६५५	१३८
जाणइ पिच्छइ सयलं	६९५	१४६	जोएहिं तीहिं वियरइ	६४६	१३६
जाणंतो पिच्छंतो	६७४	१४२	जो कत्ता सो भुत्ता	२९६	६८
जह पाहाणतरंडे	१८७	४६	जो कुणइ जयमसेसं	२१५	५१
जह भंडियारि पुरिसो	३३८	७७	जो कुणइ पुण्णपावं	३८	११
जह रयणाणं वःरं	५२६	११३	जो खवयसेटिह्ठो	६६०	१३९
जह सुद्धफलियभायणि	६६२	१४०	जो जत्य कम्ममुक्को	६९०	१४५
जाम ण छंइ मेहं	३९३	८८	जो जेमइ सो सोवइ	११४	३०
जारिसओ देहत्थो	६२३	१३१	जो डदइ एयगामं	२४३	५१
जाव पमाए वट्टइ	६०५	१२७	जो ण जाणइ जो ण	२३२	५४
जा संकप्पवियप्पो	३२२	७४	जो ण तरइ णियपावं	२५२	५८
जा संकप्पो चित्ते	६१२	१२९	जो ण हि मण्णइ एवं	२७०	६३

गा० सं०	पृष्ठम्	गा० सं०	पृष्ठम्
जो तसवहाउ विरओ ३५१	८०	ज्ञाणं ज्ञाऊण पुणो	४८१ १०४
जो तिलोत्तम जो ति २१६	५१	ज्ञाणं सजोइकेवलि	६८३ १४४
जो देओ होऊणं २३३	५५	ज्ञायइ धम्मज्जाणं	६०३ १२७
जो पढइ सुणइ भावइ ७००	१४७	ज्ञायारो पुण ज्ञाणं	६१६ १३०
जो परमहिलाकजे २२२	५३	ज्ञेयं तिविहपयारं	६३१ १३३
जो पुज्जइ अणवरयं ४५६	१००		
जो पुण गोणारिपमुहे २४५	४७	ठ.	
जो पुण चैयणवंतो ४२	१२	ठिदिकरणगुणपठत्तो	२८२ ६५
जो पुण हुंतइ धणकण ५१६	१११	ठिदिकारणं अधम्मो	३०७ ७०
जो पुणु बट्टारो ४४८	९८	ण.	
जो भणइ वो वि एवं २८०	८६	ण उ होइ भविर	११८ ३१
जो वोळइ अप्पाणं ५५५	११८	णट्टचउपाइकम्मं	४८० १०४
जो हणइ एयगावी २४४	५७	णट्टकम्मबंधण	६९८ १८६
जं उप्पजइ दव्वं ५७८	१२२	णट्टकम्मबंधो	३७६ ८५
जं कम्मं दिढबद्धं १९	६	णट्टपयडि बंधो	६८७ १४५
जं जं सयमायरियं १३६	३४	णट्टा किरयपविती	६८१ १४६
जं णत्थि रायदोसो ६७०	१४१	णट्टासेसपनाओ	६१४ १२९
जं पुण हवीदव्वं ३१७	७२	णट्टे मणसंक्खे	३२३ ७८
जं पुण संपइ गहियं १५०	३७	णट्टे असेसलोए	२४२ ५७
जं पुणु वि णिरालंबं ३८१	८६	ण तिलोत्तनाए	२७७ ६८
जं रयणत्तरहियं ५३०	११३	णत्थि धरा आयासं	२१७ ५०
जं सुद्धो तं अप्पा ४३३	९६	णत्थि वयनीलसंजम	५५१ ११७
		ण सुणइ इय जो	३९८ ८९
झ.		ण सुणइ जिण	१६३ ८०
झाणस्त फलं तिविहं ६३३	१३३	ण सुणइ मयं	१८१ ८८
झाणस्स य मत्तीए ६३४	१३३	ण य वितइ देहत्थं	६२८ १३२
झाणाणं संताणं ३८७	८७	ण य देह पेय	५५८ ११९
झाणं तेण तस्स १०५	२९	ण लइति फलं	५५० ११७
झाणहि तेहि पावं ३६४	८२	ण वि होइ तस्य	७७ २३

	गा० सं०	पृष्ठम्		गा० सं०	पृष्ठम्
णहृदंतसिरणहार	४०८	९१	णहृवर्णं काऊण पुणो	४४२	९७
ण हु अस्थि तेण	९५	२७	णहाणाओ विय सुद्धि	२२	७
ण हु एवं जं उत्तं	९१	२६	त.		
ण हु वेयइ तस्स	३७	१०	तइए समए गिण्हइ	३०१	३९
णाऊण तस्स दोसं	५४६	११६	तज्झाणजायकम्मं	६०४	१२७
णाणाकुलाइं जाइ	२०७	५०	तणुपंचस्स य णासो	६३७	१३४
णाणाण दंसणाण	३३०	७५	ततो परं ण गच्छइ	२७८	६४
णाणावरणं कम्मं	३२१	७६	तत्थ चुया पुण संता	५४२	११६
णावा जह सच्छिद्दा	५४८	११७	तत्थ ण बंधइ आऊ	२००	४०
णाणेण तेण जाणइ	६७२	१४२	तत्थ वि गयस्स जायं	१४२	३६
णाणं जइ खण	६६	२०	तत्थ वि विविहे भोए	४२२	९३
णिगंथं दूत्तिता	१५६	३८	तत्थ वि मुहाइं भुत्तं	५९७	१२६
णिगंथं पव्वयणं	१५२	३७	तत्थेव हि दो भावा	३५३	१३८
णिगंथो जिणवसहो	१३४	३४	तम्हा इत्थापज्जय	९८	२७
णिच्चाणिच्चं दव्वं	७१	२१	तम्हा इंदियमुक्खं	१७५	४२
णियभासाए जंपइ	६०	१८	तम्हा कवलाहारो	११५	३०
णिव्विदिग्गिच्छो राया	२८१	६५	तम्हा ण होइ कत्ता	२२१	५२
णिसुणंतो थोत्तस्सए	४१४	९२	तम्हा ण होइ कत्ता	२३४	५५
णिससेसकम्ममुक्खो	३४६	७९	तम्हा सम्मा दिट्ठी	४२४	९६
णिससेसमोहखीणे	६६१	१३९	तम्हा सयमेव सुओ	८०	२३
णिससंगो णिमोहो	६१८	१३०	तम्हा सो सालंबं	३८८	८७
णिहओ सिंगेण मुओ	२४९	५८	तवयरणं वयवरणं	६५	१५
णिहलावयं च खंधा	३०४	७०	तस्सुपण्णो पुतो	२१४	५१
णो इंदिएमु विरओ	२६१	६१	तह वि ण सा बंध	२४८	५८
णोकम्मकम्महारो	११०	२९	तह संसारममुदे	५१०	११०
” ” ”	१११	३०	ता णिसइं जहयारं	४६७	१०३
” ” ”	११३	३०	ता देहो ता पाणा	५२०	११२
णो वम्हा कुणइ जयं	२५३	५९	ता रुत्तिऊण पइओ	१५३	८३

गा० सं०	पृष्ठम्		गा० सं०	पृष्ठम्	
ता संतिणा पडत्तं	१५०	३७	दायारो वि य	४९४	१०७
तित्थयरत्तं पत्ता	६७५	१२४	दायारेण पुणो वि	५१५	१११
तिण्हं खलु पढमाणं	३४१	७८	दित्तिविदिस्सिपच्च	३५४	८१
तिरियगई उववण्णा	२८	९	दीवे क्कहिं पि मणुया	५३७	११५
तिवहं भणंति पत्तं	४९७	१०७	दुक्खेण लहइ वित्तं	५६१	११९
तीसमुहुत्तो दिवसो	३१४	७२	दुद्धरतवस्स भग्गा	१३३	३४
तूरंगा वरतूरे	५९०	१२५	दुविहतवे उज्जमणं	१२६	३३
तैं क्कहियधम्मलग्गा	१९३	४७	दुविहो जिणेहिं	११९	३१
ते चिय पज्जायगया	९	३	दुविहं तं पुण भणियं	२६४	६२
तेणत्तणवपयत्था	२७८	६४	देवयणाविहाणं	६२६	१३२
ते धण्णा लोयतिए	५६६	१२०	देवाण होइ देहो	४११	९१
ते पुण जीवाजीवा	२८५	६५	देवे भुवइ तियाले	३५५	८१
तेभिं पि य समयाणं	३१२	७१	देवे वद्विक्कण गुणा	४८	१८
तं दव्वं जाइ समं	५८२	१२३	देमावहिं परमावहिं	२९२	६७
तं दुव्वभेयपडत्तं	६४२	१३५	देहत्यो झाइज्जइ	६२१	१३१
तं पि हु पंचपयारं	१६	५	देहो पाणा रुवं	५१७	१११
तं पुण केवलणाणं	१०८	२९	दोसा हुहाइ भणिया	२७३	६३
तं पंचभेयउत्तं	३३९	७७	दंटे दुद्धिय चेलं	८६	२५
तं पुणु दुविहं भणियं	३७४	८४	दंत्तण आवरणं पुण	३३७	७६
तं लहज्जण णिमित्तं	१४३	३६			
तं वयणं सोज्जणं	१४७	३६	ध		
तं सम्मानं उत्तं	२७७	६३	धम्मज्जानं भणियं	३६६	८३
			धम्मज्जानाणासा	३०५	७०

गा० सं०	पृष्ठम्		गा० सं०	पृष्ठम्	
वंभो करेइ तिजयं	२०३	४९	मसयरपूरणमुरिणो	१६१	४०
भ			मा मुक्कपुण्णहेइं	३९४	८८
भणियं सुयं वियक्कं	६४५	१३६	मायापमायपउरा	९३	२६
भत्ती तुट्टी य खमा	४९६	१०७	मायाए तं सव्वं	४४६	९८
भद्दस्त लक्खणं पुण	३६५	८३	मिच्छत्तरसपउत्तो	१३	४
भमइ णग्गउ भमइ	२५४	५९	मिच्छत्तस्सुदएग	१२	४
भावइ अणुव्वयाइं	४८८	१०६	मिच्छत्तेजाच्छग्गो	१६६	४०
भावेण कुणइ पावं	५	२	मिच्छादिट्ठीपुण्णं	४००	८९
भावेण तेण पुण	३२७	७५	मिच्छादिट्ठी पुरिमो	४९९	१०८
भीएहिं तस्स पूआ	१५८	३९	मिच्छा सासणनिस्सो	१०	३
भुवखसमा ण हु	५१८	१११	मुक्कं धम्मज्जागं	३७१	८४
भुवखाकयमरणभयं	५२३	११२	मुणिभोवणेण दव्वं	५६७	१२०
भूमीसयणं लोचो	१४९	३७	नेहुणमग्गासुद्धो	३९०	८७
म.			मोहस्स सत्तरि खलु	३४२	७८
महसुइउवहिविहंगा	२९०	६६	मोहेइ मोहणीयं	३३३	७६
महसुइओहीणाणं	६३५	१३४	मंसात्तिणो ण पत्तं	३१	९
महणाणं सुहणाणं	२९१	६७	मंसेण पियदरवग्गो	२६	८
मज्जे धम्मो गंते	१८४	४५	र		
मज्जिमपत्ते मज्जिम	५००	१०८	रक्खंति गोगवाइं	५७३	१२२
मज्जे अरिहं देवं	४५०	९९	रत्ताभता कंता	१८३	४४
मणपज्जवं च हुविहं	२९३	६८	रद्धो कुरो पुणरवि	२३७	५६
मणवयणकायसुद्धी	५२८	११३	रवणनिदानं छंइइ	८९	२५
मणसहियाणं क्षाणं	६८४	१४५	रवणिदिणं मत्ति	५९१	१२५
मणइ जलेण	१७	५	रविनेरुचंइमायर	६५६	१४६
मणकोहलोहणहिओ	५५२	११८	राग्गिहे पित्तंइओ	२८०	६४
मत्तिओ वेही तिइं	२०	६	रिउत्तिदम्मं अरामं	३१५	७२
महुमउज्जसत्त विरे	३५३	८९	रइं हत्तायनदिणं	३६१	८२
महुत्तिउत्तमहरिणं	३३४	७६	रत्तायं पुण हुत्तिं	६२४	१३६

	गा० सं०	पृष्ठम्		गा० सं०	पृष्ठम्
रंडा मुंडा थंडी	१८२	४४	वंकेण जह सताओ	३०	९
ल			वंदइ गोजोणि सया	४९	१४
लवणे अडयालीसा	५३४	११४	स		
लद्धं जइ चरमतणु	४२३	९४	सई ठाणाओ भुळइ	५८३	१२३
लहिऊण संपया जो	५२७	११९	सक्काईईदत्तअह	६३६	१३४
लहिऊण सुक्कझाणं	४८६	१०५	सगयं तं रुवत्थं	६२५	१३१
लहिऊण देससंजम	५९६	१२६	सत्तप्पयाररेहा	४५३	९९
लोगगसिहरखित्तं	६८८	१४५	सत्तमयं गुणठाणं	६४१	१३५
लोहमए कुतरंडे	५४९	११७	सत्तुस्सासे थोओ	३१३	७२
व			सत्थाइं विरयाइं	१५५	३८
वट्टणकालो समओ	३११	७१	सत्भावेणुडुगई	२९९	६९
वडवाए उप्पणो	१९९	४८	सम्मत्तणाणदंमण	६९४	१४६
वत्तणगुणजुत्ताणं	३०९	७१	सम्मत्तगुदवएहिं	३१८	७३
वत्तावत्तपमाए	६०१	१२७	सम्मादिट्ठीपुण्णं	४०४	९०
वत्थंगा वरवत्थे	५८९	१२४	सम्मादिट्ठी पुरिसो	५०२	१०८
वयणियमसील	२५	८	सम्मादिट्ठी पुरिसो	१९८	४८
वयभट्टुंठरुद्धे	१८९	४६	सम्मुग्घाइकिरिया	६७६	१४३
वरिससहस्सेण	१३१	३३	समुदाएण विहारो	१२९	३३
वत्तियरणं आइट्ठी	४५९	१००	सव्वगओ जइ विण्हू	४०	११
वामदिसाइ णयारं	४६४	१०१	” ” ”	४५	१३
वारसय वेयणीए	३४३	७८	सव्वस्सेण ण तित्ता	२४	८
विकहा तहय कसा	५०२	१२७	सव्वासु जीवरात्तिपु	४७	१८
विग्घविणासे पावइ	६६७	१४१	सव्वे उवरिं सरिसा	६९२	११५
विणयादो इह मोक्खं	७४	२२	सव्वे भोए दिव्वे	५९३	१२५
विरहेण रुवइ विल	२२७	५३	सव्वे मंदकसाया	५४१	११५
वेओ किल सिद्धंतो	५०६	१०९	सव्वेपिं जीवाणं	४९०	१०६
वेणइयमिच्छदिट्ठी	७३	२२	सव्वेपिं दव्वाणं	३०८	११
वेणइयं मिच्छतं	८४	२४	ससमुक्क कलिकण्णाओ	५३५	११५

	गा० सं०	पृष्ठम्		गा० सं०	पृष्ठम्
सायारो अणयारो	२८९	६६	सो सयणो सो बंधु	५६५	११०
सिद्धं सरूवरुवं	५९८	१२६	सो सोत्तियो भणिज्जइ	५५	१७
सिररेहभिण्णमुण्णं	४६३	१०१	संकाइदोसरहियं	२७९	६४
स्तिरिविमलसेण	७०१	१४७	संखो पुण मणइ	१७७	१३
सिल्लहारसअयक	४७६	१०३	संते आयुसि जीवइ	८१	२३
सुइअमलो वर	४०९	८१	संपत्तवोहिलाहो	४८५	१०५
सुवकज्झाणं पटमं	६५६	१३८	संविनीए वि तथा	१०६	२९
सुवकज्झाणं वीयं	६६३	१४०	संवेओ जिंवेओ	२६३	६१
सुवकं तत्थ पउत्तं	६५०	१३७	संमयमिन्छादिट्ठी	८५	२५
सुज्झइ जीवो तवसा	२१	७	संसारचक्कवाले	४०३	९०
सुद्धो खाइयभावो	६६८	१४१	संदणगस्स गुणेण	१२७	३३
सुपरिविखऊण तम्हा	२२३	५३	संहणं अइणीयं	१३०	३३
सुयदाणेण य लच्चइ	४९१	१०६			
सुरहीलोयस्सग्गे	५२	१७	ह		
सुहदुक्खं भुंजंतो	३०२	६९	हमिऊण पोडछेलं	४४	१२
सुहमापज्जत्ताणं	९४	२६	हयगयगोदाणाइं	५२५	११२
सुहमो भमुत्तिवंतो	२९८	६९	हरिरइयसमवमरणो	३७५	८४
सेथो सुद्धा भावो	६	२	हवट चउत्थं टाणं	२५९	६०
सेसा जे वे भावा	७	२	” ” ज्ञाणं	३६२	८२
” ” ” ”	५८०	१२३	हसिओ सुरेहिं	२१२	५०
सोऊण इमं दयणं	१४०	३५	हिनाददोमज्जतो	५५३	११८
सो कह सयणो भण्णइ	५६४	१००	हिनारट्टिए धम्मे	२६२	६१
सोत्तिय गव्हुइटा	५४	१७	हिस विरइ सच्चं	३५३	८०
सो दायध्वो पत्ते	५२७	११३	हुंति अमिअट्ठियो ते	६५१	१३७
सो पुण दुदिहो	२७४	६३	होऊण चक्कवटो	४८४	१०४
” ” ” ”	३४७	७९	होइइ इइ दुअिमक्खं	१३९	३५
सोलइलक्कमत्तमउदो	४४४	९८	होऊण जीमोहो	६६८	१४०
सोलसद्वेसु सोलइ	४५१	९९	हेट्टिट्ठियो हु चेट्टइ	६५९	१३५
सोलससरेहि वेट्टहु	४४५	९८	होति अज्जावा दुविहा	३०३	३०

इति गाथा-सूची ।

संस्कृतभावसंग्रहस्याकाराद्यनुक्रमणिका ।



अ	श्लो० सं०	पृष्ठम्		श्लो० सं०	पृष्ठम्
अकृत्रिमेषु	५५९	२०६	अथैतत्कथ्यते	२६३	१७५
अक्षसौख्याय	१५१	१६४	अथोर्ध्व स्वम	१८७	१६८
अक्षार्थेषु विं	२१८	१७१	अथौदासीन्ययु	२२३	१७१
अक्षेषु विरतो	३२४	१८२	अदत्तपरवित्त;	४५४	१९४
अक्षर्मनोवधिं	३४६	१८४	अदेवे देवता	२७	१५१
अक्षोर्निमीलनं	१५८	८२	अधर्मः स्थिति	३६४	१८५
अचेतनानि	१४७	१६४	अधिकाराः स्युः	५१०	२००
”	२५३	१६५	अनन्तमुख	७३१	२२३
अज्ञानत्वेन	१६	१५०	अनन्यसंभवी	१२४	१६५
अणुव्रतानि	५३१	२०२	अनादिकालसं	२९४	१७८
अतस्तत्क्षणिकै	१४५	१६४	अनिच्छन्तीं ति	९७	१५९
अतिसूक्ष्मश	७५५	२२६	अनिवृत्तिगुण	७०८	२२१
अतो देशव्रता	४४१	१९३	अनिष्टयोग	४३३	१९२
अतोपूर्वादि	६७१	२१७	अनेन हेतुना	१२१	१६१
अतो वक्ष्ये गुण	६२०	२१२	अन्तरात्मा त्रिधा	३५४	१८४
अतो वक्ष्ये समा	६८७	२१८	अन्तरायान् विना	२३७	१७३
अतः सासादनं	२९२	१७८	अन्तरे श्वेत	२०८	१७०
अत्यन्तस्वल्प	७५८	२२६	अन्तमुद्धर्तका	७२	१५७
अथ चेन्निश्चलं	६०९	२११	अन्तमुद्धर्तमा	१९९	१५९
अथ मिश्रगुण	३०४	१८०	अन्तर्वायतपो	६३५	२१३
अथवा जिन	६४३	२१४	अन्ते तद्धान	७५२	२२५
अथवा सिद्ध	४९४	२९८	अन्ते लोकतरं	७६७	२२७
अथ स्त्रीणां	२४०	१७३	अन्त्यदृष्टिचतु	७२३	२२२
अथायोगिगुण	७५३	२२५	अत्रस्याहार	५६७	२०७
अथैके प्रवद	५४	१५४	अन्यचक्षणि	१४०	१६३

	श्लो० सं०	पृष्ठम्		श्लो० सं०	पृष्ठम्
अन्यस्य पुण्य	५१	१५१	असंयतगुण	३२२	१८१
अन्ये चैवं वद	६१	१५६	,, ,,	४४०	१९३
अन्ये धीवर	१२३	१६४	असंयतो निजा	४३८	१९३
अन्येषां नाधि	४६६	१९६	अस्तित्वात्तो	६४५	२१४
अन्ये स्थविर	२७०	१७६	अस्तित्वात्सू	६७३	२१७
अन्यः कौपीन	५४५	२०४	अस्तु वा तस्य	२३५	१७२
अपात्रे विहितं	५९५	२०९	अष्टाविंशति	२७१	१७६
अपानद्वारमा	६९६	२१९	अष्टोत्तरशतैः	४९३	१९८
अपायश्चिन्त्यते	६४०	२१४	अष्टौ मध्यक	७१२	२२१
अपूर्णैश्चभ्रजी	२९९	१७९	अहिंसालक्षणो	३०६	१८०
अपूर्वकरणा	२२	१५१	आ.		
अपृथक्त्वमदी	७१७	२२२	आकर्ष्यत्यप्रजः	१९८	१६९
अप्रमत्तगुण	६५२	२१५	आत्मस्वरन्दात्म	७४६	२२५
अप्रमत्तादयः	३५५	१८४	आत्मा देहस्थितो	६६३	२१६
अप्रमत्तं गुण	६७०	२१७	आत्माननात्म	७६०	२२५
अप्रासुकेन सं	५२२	२०१	आद्यमंहननो	२५४	१७४
अर्धो निमज्ज	५९६	२०९	,, ,,	२६६	१७५
अभयं प्राणसं	५६६	२०६	आद्यो दर्शति	४४५	१९४
अभव्यत्वं च भ	१७	१५०	आद्योऽवशममन्थ	२९६	१७९
अमूर्तमजम	६६६	२१६	,, ,,	२९७	१७९
अयं गृहस्थ	२८३	१७७	आद्यो विदधते	५४४	२०४
अयं बन्धुः पिता	१८२	१६७	आद्यो ह्युपश	७	१४९
अर्चयित् परया	३११	१८०	आद्यं विना चतु	१९	१५०
अर्थादधन्तिरे	७०४	२२०	आत्मरामयती	३२७	१८२
अदरेः प्राक्	२७६	१७६	आगेरिति ततः	६७५	२१७
अदस्थानेदती	३५२	१८४	,, ,,	७१५	२११
अपुरा आकृती	७४	१५७	आयुर्वन्दविही	६८८	२१९
अर्धो संतिष्ठते	११५	१६६	आयुर्वन्दे चतु	४२९	१९०

	श्लो० सं०	पृष्ठम्		श्लो० सं०	पृष्ठम्
आर्तैरौद्रं भवे	४३२	१९२	इत्येतस्मिन्	६६९	२१६
” ”	५५०	२०४	इत्येतन्मत	२८४	१७७
आहारकद्वयं	३००	१७९	इत्येवं गन्ध	७००	२२०
आहारं भक्तितो	५२७	२०१	इत्येवं निगद	१५२	१६४
आहारदानमेक	५६३	२०६	इत्येवं पात्र	५३०	२०२
आर्तध्यानवशा	४३४	१९२	इत्येवं पंचधा	१८६	१३८
आसंसारं चतु	६८६	२१८	” ”	२९१	१७८
आहारासन	६५७	२१५	इत्येवं लब्ध	७७०	२२७
आहोस्वित्कव	२२९	१७२	इत्येवं सप्त	३९२	१८८
	इ			ई	
इच्छाकारवचः	५०३	१९९	ईदृक्पुराण	१३१	१६२
इति त्रयात्मकं	७०६	२२०	ईदृक्स्थविर	२८२	१७७
इति हेतोजि	२३१	१७२	ईदृक्विधापि	८८	१५८
इति हेतोर्न	६७	१५६	ईदृक्विधं पदं	६१८	२१२
इदानींतनमा	२०२	१६९	ईदृशं भेदस	४३९	१५३
इन्द्राद्यष्टदि	४८१	१९७	” ”	३७	१५३
इन्द्रियविषया	३७	१५३	ईदृशं शास्त्र	२११	१७०
इन्द्रियाणि वि	६६५	२१६		उ	
इत्यादिषु प्र	६३३	२१३	उत्कृष्टमध्यम	५१४	२००
इत्यायनेकधा	६८	१५७	उत्कृष्टसंयमं	२४७	१७४
इत्यासां प्रकृती	३९७	१८९	उज्जयिन्या पुरी	१८९	१६८
इत्येकत्वमवी	७२१	२२२	उत्पद्यन्ते सदा	२४५	१७३
इत्येकमुपवा	५३६	२०२	” ततो	५९३	२०९
इत्येकादशधा	४९२	१९८	उदितास्ते क्षयं	३९९	१८९
इत्येकेनैव सं	४२३	१९१	उद्दिष्टं विक्रया	५२१	२०१
इत्येतद्वर्तन	३१३	१८०	उपयोगो हि साक्षा	३४१	१८३
इत्येतद्विपरी	१३३	१६३	उपवामः मरु	६०१	२१०
इत्येतद्विधान	७२२	२२२	उपशान्तकृपा	६८३	२१८
			उपशान्तगुण	६८४	२१८

	श्लो० सं०	पृष्ठम्		श्लो० सं०	पृष्ठम्
उपान्त्यसमये	७६१	२२६	एवं सुवर्णगर्भं	११३	१६१
	ऊ		एवं संक्षेपतः	६१९	२१२
ऊर्ध्वमेकं च्युतौ	६८२	२१८	एवं स्नानत्रयं	४७१	१९६
ऊर्ध्वाभूता व	७७२	२२७	एवं स्युर्व्यूत	५८७	२०८
	ए.		ऐ.		
एकविंशतिभे	६५५	२१७	ऐहिकानामरि	३३२	१८२
एकस्थानम	२००	१६९	ऐहिकानावशि	१०१	१८९
एकादशजिने	२३२	१७२		क	
एकेन्द्रियत्व	७११	२२१	कतिचिद्दिनेषु	७३६	२२३
एकेन्द्रियेषु	२३०	१७२	कथंविन्द्यमुतां	४१	११६
एवोरुका गु	५८८	२०८	कथंविन्दमानुषं	२८८	१३८
एतत्कर्मरि	७२४	२२२	करोति चान्तरा	२३९	१३३
एतत्संसार	४०१	१८९	कर्तृत्वं द्विविधं	१०८	१६०
एतत्त्ववाग्	९१	१५९	कर्मभयाय यो	३९१	१८८
एतानि दश	६९०	२१९	कर्मन्नावदय	६०२	२१०
एतैश्चयवता	२४	१५१	कर्मण्येनानि	७१४	२२१
एवमनेकाधा	२२७	१७२	कर्मण्येनानि	३	१६९
” ”	२९०	१७८	कर्मण्येनानि	३८९	१८८
एवमाहाभ	३३५	१८३	कर्मदेवाद्भुवो	९	११०
एवमात्मप्र	७४०	२२४	कर्मणादिविनि	१६२	१६०
एवमष्टादश	४१८	१९१	कर्मण्येनानि	५२७	२०४
एवमाशुद्धितो	५६२	२०६	कर्मणां कर्म	१७२	१६६
एवं द्रव्यादि सं	३९४	१८८	कर्मण्येनानि	६४	११६
एवं अरंति सं	८५	१५८	कर्मणां कर्म	६२१	२१२
एवं विरहमन्त्रो	६३	१५६	कर्मण्येनानि	६३४	१११
एवं वैमर्दिनि	१७३	१६६	कर्मणां कर्म	६२६	१११
एवं शक्यं	५०७	१९१	कर्मणां कर्म	६८२	१८८
एवं सागामिह	७०५	१९९	कर्मणां कर्म	६११	१८८

श्लो० सं०	पृष्ठम्	श्लो० सं०	पृष्ठम्
काकतालीयक	२८९	१७८	खरशूकर
किमेवं क्रियते	२३३	१७२	७०
किमत्र बहुनो	७७७	२२८	ग
क्रियत्काले गते	१९६	१६९	गतिः श्वाश्री च
क्रियते गन्ध	५९८	२१०	७१०
कुदेवः कुमता	४०८	१९०	गतिस्त्रिकथक
कुन्तककचशू	७६	१५७	७७१
कुमतिः कुश्रुत	३४२	१८३	गतिहेतुर्भवे
कुम्भवत्कुंभ	४६८	२२०	३६३
कुर्यात्संस्थापनं	४८०	१९७	गतोऽनुमार्गत
कुलीनः संयमी	२५१	१७४	१२८
कृत्वा कालावधि	४६०	१९५	गर्भादिमरण
कृत्वा पूजां नम	५०१	१९९	१४९
कृत्वा संख्यानमा	४५९	१९५	गर्भाद्विनिस्तृता
कृत्वेर्यापथसं	४७२	१९६	८४
केचित्छ्रुतार्णवो	२७५	१७६	गिरीन्द्र इव नि
क्षणिके स्वीकृते	१३५	१६३	६५८
क्षणिकैकान्त	१३४	१६३	गुणपर्यायवद्
क्षपकः क्षपय	६७६	२१७	३७३
क्षयोपशमस	४३०	१९२	गुणस्थानस्य
क्षयं नीत्वाथ	७६९	२२७	७०९
क्षायिकीःक्	४२१	१९१	६०७
क्षारोष्णतीत्र	८१	१५८	२११
क्षीणमोहं	२३	१५१	६०८
क्षुत्पिपासाद	२३४	१७२	१९१
क्षेत्रं गृहं धनं	६२५	२१२	१६९
स्त्र			४४८
खनित्रविषय	४६१	१९५	१९१
			२८१
			३०९
			८६
			३४
			४३७
			५५१
			६२६
			७
			३२८
			६३०
			७१
			४९०

श्लो० सं०	पृष्ठम्	श्लो० सं०	पृष्ठम्
च.		जीवसामान्यतो	२४३ १७३
चक्षुर्देशनमा	३४५ १८४	जीवाजीवास्रवा	३८४ १८७
चक्रिणामह	७७५ २२७	जीवितो दशभिः	३३९ १८३
चतस्रो गतयो	१५ १५०	जीवो नित्यस्तु	१४४ १६३
चतुर्णामनुयो	५९९ २१०	जीवो हि सोपयो	३३८ १८३
चतुर्गतिभवो	३९५ १८८	जोषे तृणे सुव	२७३ १७६
चतुर्वारं शम	६८५ २१८	जनभावा वद	३१० १८०
चतुर्विंशति	५८६ २०८	ज्ञातारोऽस्ति	७७३ २२१
चतुष्कोणस्थि	४८५ १९७	ज्ञाता दृष्टावदा	१७४ १६१
चतुष्पयावर्त	५३२ २०२	ज्ञानदृष्ट्यावृते	७३० २२३
चराचरमिदं	११४ १६१	ज्ञानं पूजा तपो	४०७ १९०
” ”	७३२ २२३	ज्ञानं भक्तिः धर्मा	५१२ २००
चरुभिः सुखसं	४८९ १९८	ज्ञानं यदि क्षण	१३८ १६३
चेतनालक्षणो	३८५ १८८	ज्ञानं विना न	१८१ १६१
चैत्यभवत्या	४९७ १९८	त.	
” ”	५३३ २०२	तच्छरीराश्रया	७५९ २२६

श्लो० सं०	पृष्ठम्		श्लो० सं०	पृष्ठम्	
तर्किं न क्रियते	६२	१५६	तस्मादावलि	३७२	१८६
तत्तावत्प्राप्ति	६९	१५७	तस्मादावश्य	६५०	२१५
तत्पापत् स्वत	१२७	१६२	तस्मान्निर्गत्य	८३	१५८
तत्फलं च स्वयं	३४८	१८४	” ”	२८७	१७८
तत्र निवृत्ति	७५४	२२५	तस्मान्मत्स्यादि	५७	१५५
तत्रादौ शोषणं	४७३	१९६	तस्य मतानुमा	१७५	१६६
तत्रायं यद्गुण	२५	१५१	तस्याङ्गे देवताः	८९	१५८
तत्रायं शुक्ल	६७९	२१७	तस्या जीवो न	२४२	१७३
तत्रानुभूय सत्	६१३	२११	तापसा प्रवद	१६०	१३५
तत्रापूर्वगुण	६७२	२१७	तावत्प्रातः स	४६८	१९६
” ”	६७४	२१७	तावत्सं वर्धते	१५६	१६५
” ”	६९२	२१९	तिरश्ची गौरृणा	८७	१५८
तत्राप्यभून्महा	१९३	१६८	तिलोत्तमेति वि	१००	१५९
तत्रास्त्यौदयिको	२६	१५१	तिष्ठन्त्येकैक	३६७	१८६
तत्रौषमिको	३२३	१८१	तिष्ठभिः शान्ति	४९१	१९८
तथागुरुलघु	७६४	२२६	तिर्थगायुःक्षयं	६८९	२१८
तथा धर्मद्वये	३१७	१८१	तीर्थांभुस्नानतः	३८	१५३
तथापि क्वला	२३९	१७३	तीत्रमिथ्यात्व	७२	१५७
तदङ्गे चेन्न वि	६०	१५५	तेचापितप्रदा	५७२	२०७
तद्व्यानयोगतो	६८०	२१८	तेजोमूर्तिमय	७२८	२२३
तद्यंत्रगंधतो	४९६	१९८	तेषां वन्धो विना	१३७	१६३
तद्रोपात्पापि	२०४	१६९	तोयैः कर्मरजः	४८८	११८
तन्मिथ्यात्वं	३१	१५२	तोयैः प्रक्षान्त्य	४८४	११७
तपसा जायते	३९	१५३	तं कालाणुं ममु	३७१	१८३
तप्सायःपिंड	७८	१५७	त्यक्तग्रन्थेषु	६२७	२१३
तस्मादनुमतो	४४७	१९८	त्यक्तपुण्यस्य	६११	२११
तस्माच्छुद्धिं प्र	४२	१५३	त्यक्त्वा स्थूलं	४४८	२२५
तस्मादायंय	६४७	२१४	त्यजध्वं कुम्भिता	१९३	१६९

श्लो० सं०	पृष्ठम्	श्लो० सं०	पृष्ठम्
दग्धरज्जुसमं	२१५	१७०	द्रव्याण्यनाद्यन
दण्डाकारं कपा	७३९	२२४	द्वौ नवाष्टादशैक
ददात्यनुमतिं	५४२	२०३	द्रव्याद्द्रव्यान्तरं
दर्शनत्रयमाद्यं च	१३	१५०	घण्टादिविभे
दर्शनाज्ज्ञानतो	४१५	१९०	द्वादशाङ्गुलपर्यं
दर्शानिवाः प्रकृ	४५०	१९४	
दशागर्भाश्रितं	१२०	१६१	धनधान्यादिव
दशाष्टदोष	२२१	१७१	धर्मध्यानं तु
दशाधा प्रमथ	५२१	२०३	धर्मार्थैकतो
दहत्येकतरं	१२३	१६२	धृत्वा जनेश्वरं
दिग्देशानर्थद	४५८	१९५	ध्यातुं प्रियेवने
दग्धोहक्षय	४१९	१९१	ध्यानधेयवर्ति
दशिरुवस्तदिनी	७८०	२२८	ध्यानद्रव्येऽत्र मा
दृष्ट्वा तान् क्षुभि	९९	१५९	ध्यातव्यं फल
दृष्ट्वा तिलोत्तमा	९६	१५९	ध्यानस्य चित्त
दृष्ट्वा मंत्रादिस्ता	४०६	१९९	ध्यानात्मनस्मी
देसं दानं यथा	५०४	१९९	ध्यातव्यं गौत
देवदग्धनसंघा	७६२	२२६	न जातु विद्वे
देहलीनेहरत्ना	४०३	१८९	नन्देइनेतु दे
देहारिन्तवेऽस्त्य	७५६	२५६	न दग्धिनं नन्वा
दाता शान्तो विदु	५११	२००	न दग्धमृगं
दानमाहारिणे	५६१	२०६	नद्विदिं विदिः
दानं च कुम्भिते	५९२	२०९	न दग्धा नैः विदि
दानं हि दामद	७७५	२०७	न दग्धं दर्शिते
दोषदोषेण	४८३	१९०	न दग्धुं विदि
दग्धपानवसा	३६५	१८६	न दग्धोऽप्यन
दग्धमणि दग्धक	३३७	१८३	न दग्धना दग्धना

श्लो० सं०	पृष्ठम्
३७८	१८७
१०	१५०
७०५	२२१
३५९	१८५
६९७	२१९
ध.	
४१६	१९५
६३८	२१३
३८३	१८७
६२९	२१३
७४५	२२६
७५१	२१५
६६६	२१६
७७८	२२८
६९३	२११
२१३	१७१
६३७	२१३
न	
५८९	२०३
५७८	२०५
२१०	२३०
६५३	२१६
५२७	२०७
६३	२०५
५०३	२०७
६३५	२१३
५०७	२०७
५०६	२०७

	श्लो० सं०	पृष्ठम्		श्लो० सं०	पृष्ठम्
नष्टाशेषप्रमा	६५४	२१५	नृगतिश्वातु	७६८	२२७
न सन्ति चेन्मता	२५०	१७४	नृपैर्मुकुटत्र	५१६	२०५
न ह्येवं चीवरं	२५५	१७४	नैवं परिप्रहा	२६२	१७१
न ह्येवं सुप्र	३१५	१८१	नैवं स्यान्मांस	६६	१५६
नानावाग्भिर्ब	४२०	१९१	नो कर्मकर्मनामा	२२६	१७१
नास्ति क्षुधासमो	५६४	२०६	" " "	२२८	१७२
नास्ति क्षुधां विना	२१३	१७०	नोद्विष्टां सेवते	५४३	२०४
नास्ति जीव इति	१५९	१६५	नोपचारो विना	३३९	१८६
नास्ति त्रिकाल	५४७	२०४	न्यस्याव्हानादि	४८२	१९७
निग्रन्था यतयो	३०८	१८०			
निजशुद्धात्म	७१९	२२२	परमात्मा द्विधा	३५६	१८५
निजात्मद्रव्य	७२०	२२२	परिच्छिन्ता पदा	३२६	१८२
निजात्मानं नि	६०४	२१०	परिणामः पदा	३६८	१८६
निद्रा स्नेहो हृषी	६२३	२१२	परितः स्नान	४७८	१९७
निधयो नव	५१५	२११	पर्यायादीनां घटा	१०५	१६७
निन्द्यासु भोग	५७७	२०७	पर्यायाः प्रभव	३७५	१८६
नित्या चतुर्मुखा	५५४	२०५	पश्चात्स्नानविधिं	४७०	१९६
निमित्तज्ञानतः	१९०	१६८	पश्य सम्यक्त्व	३०२	१५५
निरालंबं तु य	६०६	२१०	पात्रे दानं प्रक	५३५	२०५
निर्वापितं समु	५२४	२०१	पात्रे यत्पतितं	१४१	१६३
निशम्येति वच	१९१	१६८	पात्रं त्रिविधं	५१३	२००
निश्चीयते पदा	३३६	१८३	पादयोः कंठकं	२६५	१७५
निष्कलो मुक्ति	३५७	१८५	पिंडस्थं च पद	६६०	२१६
निधप्रकम्पं विधा	६९४	२१९	पिंडो देह इति	६६१	२१६
निःशल्या निरहं	६३४	२१३	पुण्यहेतुं परि	६१०	२११
निःशल्यो निरहं	३३३	१०३	पुण्यहेतुस्ततो	६१२	२११
निःसार्धते ततो	६९९	२२०	पुण्योपपन्नतमा	५७६	२०६
नीचसंहननं	२७९	१७७	पुत्रेणापिददानेन	५०	१५६

	श्लो० सं०	पृष्ठम्		श्लो० सं०	पृष्ठम्
पुरोक्तलक्षणो	३९३	१८८	वाचं देवाविधे	६२४	२१२
पुस्तकं च यथा	२८०	१७७	बुभुक्षा भोज	२१७	१७१
पुंवेदश्च ततः	७१३	२२१	द्रव्यवर्धमचे	१९९	१६९
पूजापात्राणि	४७५	१९७	भ		
पूजा दानं गुरु	५२३	२०५	भद्रनिध्यादयो	५७१	२०१
पूर्वभावाजिता	१६७	१६६	भव्यवोदयता	३०१	१७९
पूर्वाकारान्यथा	३८०	१८७	भव्यात्मा पूजकः	४६५	१९५
पूर्वापरविर	३३०	१८२	भग्ममाहुरस्ते	१२२	१६२
पूर्वापरदिने	५३५	२०२	" "	६१७	२१२
पृथ्वी तोयं तथा	३६२	१८५	भावनामिद्रिपु	४२७	१९१
पंचभूताग्निवै	१५६	१६५	भावा लोचपरी	३	१४९
पंचविधेऽत्र	३५०	१८४	भावास्ते पंचभा प्रोक्ता	६	१४९
पंचाक्षविषयाः	१८३	१६७	भावास्त्वो भवे	३८६	१८८
पंचाग्निना तपो	५९१	२०९	भावेऽत्र क्षत्रिकः	७२६	२२३
पंचानां सङ्गुः	६६२	२१६	भीतिन तस्य गा	२०६	१७०
प्रत्याख्यानीदय	४४२	१९३	भुक्तिमात्रप्रदा	१६६	१६६
प्रभवत्पुपक्षम	६७७	२१७	भुक्तेऽन्तेऽन्तितर	४९	१५४
प्रदागारितवय	४२४	१९१	भुक्त्वा मेव्यज्यते	५०८	२००
प्राग्निनां रक्षणं	६००	२०९	भूतयोऽस्तिष्ठा	१८८	१६१
प्राग्निप्राणतयसे	६४	१५६	भूवाथ क्षीण	२००	१७१
प्रातिहार्याणो	७३४	२२३	" "	७१६	२२०
प्राप्य द्रव्यादि	३५१	१८४	भुक्तदिपेव	१०७	१६०
			भुक्तिवृत्तं च	४८६	१९७
फ			भुक्तद्रव्यमन्त	७७१	२२८
			भेदाभेदकथा	६३६	२१३
पल्लुलाम्हु	५३७	२०३	भक्त्यु प्राणः	१०६	१६३
व					
वचनानां द्विव	४६	१५४			
व्यसने वरी	३८५	१८८			
वाटरवायवो	७४७	२२५	भक्तिः क्षुण्णवर्ती	३१३	१८३

श्लो० सं०	पृष्ठम्		श्लो० सं०	पृष्ठम्	
मत्स्यकूर्मवरा	५६	१५५	मुक्त्वात्र कुत्सितं	५१८	२०१
मद्यमोहाद्यथा	२९	१५२	मुक्त्वा निर्ग्रन्थ	२५२	१७४
मधुरं जायते	२८	१५१	मुख्यवृत्त्या भव	६५६	२१५
मधुवाद्याङ्ग	५७३	२०७	मुख्यकालस्य	३७०	१८६
मध्यमं पात्र	५१५	२००	मुख्यत्वेनेह	६९१	२१९
मनोवाक्काय	५३८	२०३	मुनयोऽनियता	१६९	१७६
महोत्सवमिति	५६०	२०६	मुनीनामनुमार्गे	५४६	२०४
महास्कन्धस्य	१३२	१६२	मूलशीलगुणै	६२२	२१२
माक्षिकामिप	४४९	१९४	मृत्युं न लभते	२१९	१८१
मातृवत्परनारी	४५५	१९५	मृत्वा जीवोऽथ	५२	१५४
मायेयं तस्य	११८	१६१	मृत्वायमभवत्	१५७	१६५
मानुपोत्तरबा	५७६	२०७	मोहमूलं भवेद्	२१६	१७०
मासं प्रति चतु	५०६	१९९	मोहार्त्तः कुरुते	३१२	१६०
मासं प्रत्यष्टमी	५३४	२०२			
मांसाशिनो न	४८	१५४	य		
मांसेन पितृव	४३	१५३	यक्षादिवलिज्ञे	५२५	२०१
मिथ्यातमस्त्व	४१७	१९०	यज्ञादावामिपं	५९	१५५
मिथ्यात्वज्वर	२२४	१७१	यज्ञार्दा निहताः	७५	१५७
मिथ्यात्वभावना	५९४	२०९	यत्कालान्तरि	१८१	१६७
मिथ्यान्वालम्बना	२८६	१७८	यत्र स्थित्वा	१०६	१६०
मिथ्यादित्रिषु मिथ्रा	१८	१५०	यथा गौः प्रभ	९०	१५६
मिथ्यादृष्टेर्न रोचेत	३०	१५२	यथावद्वस्तुनो	६५३	२१६
मिथ्या सासादनं	२१	१५१	यदर्जितं पुरा	३६	१५२
मिश्रौदारिकयो	७४३	२२४	यदाद्दन्वपदं	७२९	२२३
मिश्रकर्मोदया	३०५	१८०	यदि पात्रमल	५२३	२०३
मिश्रभावमिमं	३२१	१८१	यदि ब्रह्मा जग	९६	१५६
मुक्तिं गताः पुन	१६९	१६६	यदि वैक्रियिकं	११२	१६१
मुक्त्वेह लौकिकं	१५०	१६४	यदि यः स्वकृतं	१३०	१६२
			यदादारिकम	५२९	२२३

	श्लो० सं०	पृष्ठम्		श्लो० सं०	पृष्ठम्
यद्द्रव्यगुणपर्या	७१८	२२२	स्से रमायने	६३२	२१३
यद्यप्ये यच्च	७७६	२२७	रागोपयुक्तचारित्रं	१४	१५०
यद्यपि कुरुते	२४१	१७३	राजादीनि भवा	५२६	२०१
यद्यपि प्रति	७०७	२२०	रमातीतमिदं	६६७	२१६
यद्यम्युम्नान	३५	१५२	रोगादितभ्रमा	११५	१९०
यद्यंगिनः शिवा	१६१	१६७	संज्ञानामेऽथ	४३६	१९७
यद्येवं मयालं	१०३	१६०			
यद्वैद्यते चला	१००	१८५	व्याप्यभ्रुमपी	६१४	२११
यस्मान्च्छुद्धम	२३६	१७२	व्याप्यभ्रुमपीः	१७२	१९१
यस्य प्रयान	१७१	१६६	व्याप्यभ्रुमपीः	१३१	१९२
यस्य सम्यक्त्व	४२८	१९५	व्याप्यभ्रुमपीः	५७८	२०८
यस्यानन्तसुखं	२१२	१७०	व्याप्यभ्रुमपीः	२५६	१९५
यस्यारित महती	१०१	१६०	व्याप्यभ्रुमपीः	८०	१५८
यस्यास्त्यघाति	७३८	२२४			
यावत्प्रभाद	६८६	२१६	वदन्ति धर्ममा	२७४	१३६
यावद्वहीपात्त्वयो	७८२	२२८	वदन्ति क्रियते	१६५	१६६
ये न संसारिणो	४	१८९	वदन्ति क्रियते	३६६	१८६
ये चान्ये वाष्ट	२९५	१७७	वदन्ति क्रियते	३५८	१८५
ये वदन्ति सह	६०५	२१६	वदन्ति क्रियते	७६३	२२६
योगद्रव्यस्य सं.	४५२	१९४	वदन्ति क्रियते	२६७	१७६
योगकालागतं	५२८	२०१	वदन्ति क्रियते	५५	१५५
यो न वेत्ति परं	१६३	१६६	वदन्ति क्रियते	२५७	१७६
योपिस्वरूप	२४९	१७४	वदन्ति क्रियते	१७०	१६६
यं चिदात्मि	६९५	१९८	वदन्ति क्रियते	३८६	१८५
यः सैवात्मि	५४०	२०३	वदन्ति क्रियते	६१५	२१६
			वदन्ति क्रियते	६४२	२१६
			वदन्ति क्रियते	५८५	२०८
रत्नद्रव्यविरातो	५९६	२००	वदन्ति क्रियते	५८०	२०८
रत्नद्रव्यवद्	४५४	१९०	वदन्ति क्रियते		

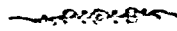
श्लो० सं०	पृष्ठम्		श्लो० सं०	पृष्ठम्	
विधायैवं जिने	५००	१९९	शारीरं मानसं	७९	१५८
विनयो यदि स	१६४	१६६	शुद्धसम्यक्त्व	२६४	१७५
विनाहारैर्वलं	५६५	२०६	शुभभावाश्रयात्	५	१४९
विनाहारं न च	२२५	१७१	शीलव्रतानि त	४५७	१९५
विनयोपकरणै	१०६	१६०	शीलव्रतेषु सं	२७२	१७६
विरतिस्त्रस	४४३	१९३	शैवानार्या वद्	१६८	१६६
विरताविरत	४४४	१९४	श्रद्धानं कुरुते	३२५	१८२
विराजतेष्टाविं	३३१	१८२	श्रीमत्सर्वज्ञपू	७८१	२२८
विरं चिर्जगतः	९३	१५९	श्रीमद्दीरं जिना	१	१४५
विशुद्धा निश्चला	७७४	२२७	श्रुतं चिन्ता वित	७०२	२२०
विशुद्धं दर्शनं	७३३	२२३	श्रुत्वाप्येवं पुराणोक्तं	४७	१५४
विश्वगर्भमन	११९	१६१	इवेताम्बरैः परि	२०७	१७०
विहरन् सकलां	७३५	२२३			
विहाय गमन	७६५	२२६	प		
वीरचर्या न त	५४८	२०५	पदकर्मभिः किम	६०३	२१०
वृत्तमोहोदयं	६८१	२१८	पण्णामायुः स्थिते	७३७	२२१
वृषभस्योपदे	१२९	१६२	स		
वेदनीयस्य सद्भा	२१४	१७०	सकलाणुव्रते	३१८	१८१
वेदवादी वदत्येवं	३३	१५२	सप्रन्थत्वेन	२५३	१७६
वेदान्तं क्षणिकत्वं	३२	१५२	सच्चित्ताहार	१४६	१५५
वेद्यमेकतरं	७६६	२२७	सत्तावबोध	१६६	१६६
वेधायाः पट्टच्छती	५८३	२०८	सत्तात्रं तार	५७०	२०५
व्रतशीलदयाधर्म	४०	१५३	सर्वेश्वरशुद्धता	२१६	१७३
			सद्बुद्धिप्राप्तदा	५६८	२०७
			सद्यः सदीक्षित	१७७	१६७
श			सन्नि शुभादयो	२२७	१७१
शतानि पंच	५८१	२०८	सन्त्यस्मदादयो	१७८	१६७
शब्दो बन्धस्तम	३६०	१८५	सन्मोक्षसाधने	७६८	१७६
शंभोर्न विद्यते	१२५	१६२	सप्तमं नरकं	२४८	१७६
शान्तिनामा गणी	१९२	१६८			

	श्री० सं०	पृष्ठम्		श्री० सं०	पृष्ठम्
सप्रकृतिप्रदे	३८८	१८८	नामादनगुण	३०३	१८३
समता बंदना	६४८	२१४	निद्रयोऽव्यभिमा	६६८	२१६
समभृङ्कुल	२०८	१७०	सिद्धे त्रिवेव	२०	१११
समयादावली	२९८	१७९	सिद्धात्र महिमो	५८२	२०८
सविनर्क मयि	७०१	२२०	सुगमांमाननात्	१४२	१६३
ससम्यक्त्वस्य	२५९	१७५	सूक्ष्मे जितोदिते	३३४	१८२
सहभृता गुणा	३७४	१८७	सूक्ष्मो वाग्वोचरो	३७६	१८५
समीचीनमिदं	४०९	१९०	सूत्रशयैव सं	७७	११५
समीपीकरणं	५२३	२०१	सूत्रसामुच्चि	५९०	२१०
समुत्पन्नेपि	२२०	१८०	सूत्राणां मयि	१०२	१८९
समुत्पादोखि	१११	१६१	सूत्रिनिर्माणे	१०४	१६०
समुत्पातरथ	७४२	२२४	संज्ञाः म	५७५	२०८
समुत्पातानि	७४४	२२४	संज्ञायां च ति	१०४	१८९
समुच्छिन्नक्ति	७५५	२२५	संज्ञेयमानना	११८	१९९
सम्यक्त्वासाद	२९३	१७८	संज्ञिन्सर्वं कृथा	१७९	१६७
सम्यक्त्वं दर्श	१२	१५०	संज्ञवल्लवकपा	३५३	२१९
सम्यग्जिज्ञासने	६५१	२२५	संज्ञव्य वेदक	६१५	१७८
सम्यग्मिध्यात्	३१४	१८०	संज्ञव्य चरणा	१०२	११९
सर्वप्रसर्पका	३२०	१८१	संज्ञति दुःखमे	२७८	१७७
सर्वज्ञः सर्वतो	३९८	१८९	संज्ञतो निद्रयो	१३३	१६३
सर्वेष्वहप्रदे	३९९	१८२	संज्ञतोऽहं हि	२६०	२७५
सपत्त्रिंशो शते	५८	२५५	संज्ञितोऽति	५०९	२०८
स सूक्ष्मे वाच	१८८	१६८	संज्ञितोऽति	६१९	२१४
साक्षात्किं च	७४९	२२५	संज्ञितोऽति	५६५	२०७
सामाजिक प्र	४६९	१९५	संज्ञितोऽति	६९९	२१०
सारथं पांडु	४६३	१९५	संज्ञितोऽति	५३५	२०३
सार्थेऽप्यन	११७	१६१	संज्ञितोऽति	६८७	२१८
	६५५	२४९	संज्ञितोऽति	७७३	२१७

श्लो० सं०	पृष्ठम्		श्लो० सं०	पृष्ठम्	
स्थानेष्कादश	५४९	२०४	स्वभावेनोर्ध्वं	३४९	१८४
स्थापनमासनं	५४९	२०४	स्वभावः कुत्सि	२४६	१७३
स्थूलकालान्तर	३७७	१८७	स्वयं कर्म करो	३४७	१८४
स्थूलस्थूलं तथा	३६२	१८५	स्वशुद्धात्मानु	७०३	२२०
स्थूलहिंसानृत	४५१	१९४	स्वसिद्धान्तोक्त	६३९	२१४
स्नानपीठं दृढं	४७७	१९७	स्वसंवेदनवे	१५४	१६५
स्यात्कर्मापशमे	८	१४९	स्वोत्तमाज्ञं प्रसि	४८६	१९८
स्याद्दर्शनोपयो	३४४	१८३		ह	
स्यादुपशमसम्य	११	१५०	हठात्कारस्व	३९०	१८८
”	६७८	२१७	हस्तशुद्धि विधा	४७५	१९६
स्वकर्मफल	४४	१५४	हास्यादि पदसु	५२८	२१३
स्वकृतपुण्य	५३	१५४	हास्यास्पदीकृतो	९८	२५५
स्वगेहे चैत्य	५५५	२०५	हिमवद्विजया	५८४	२०८
स्वभावमलिने	४१२	१९०	हिंसानन्दो मृगा	४३५	१९२
स्वभावाशुचि	४१	१५३	हेयोपादेयवि	१८०	१६७
स्वभावेतर	३८१	१८७	हेयोपादेयवैक	३५३	१८४

समाप्तमनुक्रमणिका ।

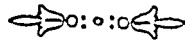
उद्धृतवचनानां सूची ।



	प्रा० पृष्ठ संख्या.	सं० पृष्ठ संख्या.
अत्यन्तमलिनो	६	१५३
अरण्ये निर्जले	७	१५२
अविरयमम्मा	+	१९३
अकाशगामिनो	१४	१५६
आत्मा नदी संयम	६	१५३
आगोपालादि यत्	१४	१५६
चत्वारि दारमुव	+	२१८
जले विष्णुः स्थले	११	१५५
देहात्मिका देह	४६	+
तिलसर्पपमात्रं	१४	१५६
न हि हिराकूते	१४	+
नाभि स्थाने वसेद्	१३	१५५
नासाग्रे च शिवं	१३	१५५
द्राक्ष्यः क्षत्रियो	+	१०६
मत्स्यकर्मो वराह	११	+
" "		+
मनः समर्थाधिगमे	+	११०
मांसं तु रंदिषं	१४	+
यत्तसौ नरकं	७	१५०
सावर्जापेद्	४६	+
स्थावरा जंजना	१४	+

समाप्तं सूची ।

शुद्धयशुद्धिपत्रम् ।



अशुद्धयः	शुद्धयः	पंक्तिः	पृष्ठम्
सुरसन	सुरसेन	३	१
शौच	शौचं	१३	६
प्रमत्ता	प्रमत्ताः	१	८
स्नान्त अपि	स्नान्तोऽपि	२	८
दिवलोकं	द्युलोकं	६	६
भ्रमिष्यन्ति	भ्रमंति	१२	७
आत्मना	आत्मा	४	११
तल्प्यमानः	तातल्प्यमानः	६	१३
तु	तो तु	६	४४
गव्वुव्वुढा	गव्वुव्वूढा	९	१७
संसय	संसयं	१०	२४
इत्थि	इत्थी	९	२७
कंटयभग्गो	कंटय भग्गो	१७	३१
कंटकलमं	कंटकं लमं	१९	३१
५	२	५	३१
६	३	१०	३१
निवृत्तेन	निवृत्तेन	४	६०
जुअसमिला संजोए	जुअसमिलांसंजोए	१२	४१
पंचभूयाणणासे	पंचभूयाण णासे	१०	४२

१ चडप्फडन् इति वा । अस्यार्थः—आकुलव्याकुलः सन् । तावत्ताना इति भाषायां ।

२ युगसमिलासंयोगे । अस्यार्थं भावः—पूर्ववर्णे युगं निक्षिप्तं, पश्चिमतर्णे समिला निक्षिप्ता तस्याः समिलायाः युगविवरे प्रवेशो यथा दुर्जनः तथा मातुष्य चतुरशीतियोनिलक्षमध्ये मनुष्यत्वं दुर्लभमेवेति ।

अशुद्धयः	शुद्धयः	पंक्तिः	वृष्टम्
उपरि स्पृशित्वा	उदरे कृत्वा	९	४९
खरशीर्ष	खरशीर्षः	१	५१
तस्योत्पन्नः	तयोत्पन्नः	९	५१
सउधरो	सउधरे (इत्यनेन भाव्यं)	१३	५३
रपशित्वा शूकरं	कृत्वा स्वोदरे	१५	५३
उपरिस्थितः त्रिजगतः	उदरस्थं त्रिजगद्	५	५४
...वह्निः	उदरवह्निः	१३	५४
तस्योपरि	तरयोदरे	१	५५
जामता	जाम ता	३	५८
यावत्	यावन्तावत्	५	५८
बलत्वेन	बलसेन	६	५८
गौरिभिः	गौराभिः	१३	५९
इसर	ईसर	९०	५९
नाम्नामेव	नाम्ना एव	७	७८
दृष्टुं	दृष्टुं	१३	९६
क्षिपेतु	क्षिपेत्	११	९६
जरणीरं	जर पीरं	२९	९८८
इत्यविरत	इति देशविरत	२९	९९६
दंशणं	दंशणं	१	९८३
यच्छेय	यच्छेय	१०	९८९
घोषशमो	घुषशमो	१३	९८९
ब्राह्मणा	ब्राह्मणो	१८	९८९
च्युद्ध	च्युद्धि	१७	९८३
पि णां	पितृणां	८	९८८
प्रशक्ता	प्रशक्ता	७	९८६
गिरता	गिरताः	१५	९८७
बन्धते	बन्धते	२०	९८८

अशुद्धयः	शुद्धयः	पंक्तिः	पृष्ठम्
भ्रमन्तोऽसौ	भ्रमन्नसौ (इत्यनेन भाव्यं) १९		१५९
बन्धाः	बन्धाः	४	१६६
गता	गताः	१३	१६६
साराष्ट्रां	सौराष्ट्रां	२७	१६८
लिङ्ग	लिङ्गं	२०	१७३
दनागारा	दनगारा	१८	१७६
लक्षणः	लक्षणो	१७	१८८
६६४	३६४	२१	१८९
वेद्या पराङ्गना चौर्यं	वेद्यापराङ्गनाचौर्यं	१२	१९४
सत्पच	सत्पंच	१८	१९८
अधिकापाक	अधिका पाक	१०	२०१
आतैराद्रं	आर्त्तैराद्रं	१६	२०१
(ति)	०	४	२०४
संजम	संजम	१७	२१८
पद्मप्रकरमधुकरः	पद्मप्रकरमधुकरः	१४	२८८
चदुतिगदुग	चदुदुगतिग	३	२३७
पुवेदे	पुंवेदे	५	२४६
८	२८	अनि०	२५४
बालेन्द्रः	बालेन्दुः	१८	२८३

